सभी के लिए
कानून

सभी के लिए कानून

दीपक कुमार महर्षि

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान,
694-बी (निकट अजय मार्केट), चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006
सर्वाधिकार : सुरक्षित / संस्करण : 2022 / मूल्य : तीन सौ रुपए
मुद्रक : आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली ISBN 978-93-83111-71-8

SABHI KE LIYE KANOON (LAW FOR COMMON MAN)
by Shri Deepak Kumar Maharshi ₹ 300.00
Published by **PRATIBHA PRATISHTHAN**
694-B (Near Ajay Market), Chawri Bazar, Delhi-110006

पूज्य दादाजी स्व. श्री रामकुमार शास्त्रीजी
को सादर समर्पित।

अपनी बात

यह पुस्तक आपके हाथों में है, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। देश के जागरूक नागरिक होने के नाते आप अपने अधिकारों और कर्तव्यों को जानने के इच्छुक हैं, यह और भी प्रसन्नता की बात है।

काफी समय से मेरे अंतर्मन से यह आवाज आ रही थी कि मुझे अपने कानूनी ज्ञान से अपने देशवासियों की सेवा करनी चाहिए। अत: मैंने देशवासियों को पूर्ण रूप से विधिक (कानूनी) साक्षर बनाने का संकल्प लिया है। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह संकल्प हिमालय के समान है; क्योंकि जिस देश में सब लोगों को अभी तक अक्षर-ज्ञान भी न हो पाया हो उस देश को विधिक साक्षर करना कितना कठिन है, यह आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में यद्यपि प्रामाणिक एवं सही जानकारी देने का प्रयास किया गया है, लेकिन भूलवश रही किसी भी त्रुटि के लिए लेखक, प्रकाशक एवं मुद्रक किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं होंगे, अत: पाठकगण कृपया सचेत रहें। पाठकों से विशेष अनुरोध है कि उन्हें अपने मामले की कोई भी काररवाई करने से पूर्व किसी योग्य वकील से सलाह अवश्य ले लेनी चाहिए; केवल इस पुस्तक पर निर्भर नहीं रहें। आनेवाले समय में पुस्तक में दिए गए प्रावधान संशोधित हो सकते हैं, इस कारण आपके मामले में संशोधित प्रावधान ही लागू होंगे। पुस्तक के भावी संस्करणों को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझाव सहर्ष आमंत्रित हैं। इस पुस्तक को लिखते समय श्री वीरेंद्र मोहन महर्षि, श्रीमती कांता शर्मा, श्री उमेश कुमार महर्षि एवं कुमारी ज्योति महर्षि ने महत्त्वपूर्ण व उपयोगी सहयोग किया। उन्हें अनेकश: धन्यवाद।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को कानूनी ज्ञान से संपन्न करने में प्रभावी और कारगर सिद्ध होगी।

श्री डूँगरगढ़ महाविद्यालय,
श्री डूँगरगढ़, जिला—बीकानेर (राज.)

—दीपक कुमार महर्षि

विषय-सूची

1.	राष्ट्रीय प्रतीक	11
2.	हमारा कानून	15
3.	हमारा संविधान	31
4.	हमारी अदालतें	43
5.	अपराध	53
6.	पुलिस और एफ.आई.आर.	65
7.	गिरफ्तारी और जमानत	70
8.	अपील	77
9.	चेक अनादरण	81
10.	दहेज-हत्या और मानवाधिकार	85
11.	यातायात चालान और दुर्घटना	95
12.	सड़क दुर्घटना मुआवजा	100
13.	जनहित याचिका	102
14.	भरण-पोषण का अधिकार और महिला आयोग	105
15.	कोर्ट मैरिज	110
16.	तलाक (विवाह-विच्छेद)	112
17.	उपभोक्ता संरक्षण कानून	133
18.	श्रम कानून	172
19.	व्यापारिक कानून	176
20.	संपत्ति अंतरण	179
21.	आय कर	183
22.	बीमा	193
23.	प्रमुख फैसले	197

1

राष्ट्रीय प्रतीक

प्रत्येक देश के राष्ट्रीय प्रतीक होते हैं और इनका सम्मान करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होता है। हमारे देश भारत के निम्नलिखित राष्ट्रीय प्रतीक हैं—

राष्ट्रध्वज	—	तिरंगा	राष्ट्रीय जल-पक्षी	—	हंस
राष्ट्रीय पक्षी	—	मोर	राष्ट्रीय पहाड़	—	हिमालय
राष्ट्रगीत	—	वंदे मातरम्	राष्ट्रग्रंथ	—	गीता
राष्ट्रगान	—	जन-गण-मन	राष्ट्रीय फल	—	आम
राष्ट्रीय पशु	—	बाघ	राष्ट्रीय खेल	—	हॉकी
राष्ट्रीय नदी	—	गंगा	राष्ट्रपिता	—	महात्मा गांधी
राष्ट्रीय लिपि	—	देवनागरी	राष्ट्रीय संवत्सर	—	विक्रमी संवत्
राष्ट्रभाषा	—	हिंदी	राष्ट्रीय वृक्ष	—	अशोक
राष्ट्रीय मंत्र	—	ॐ	राष्ट्रीय पुष्प	—	कमल
राष्ट्रीय चिह्न	—	अशोक स्तंभ	राष्ट्रीय पुरस्कार	—	भारतरत्न
राष्ट्रीय वाक्य	—	सत्यमेव जयते	राष्ट्रीय पंचांग	—	शक संवत्
राष्ट्रीय मुद्रा	—	रुपया	राष्ट्रीय योजना	—	पंचवर्षीय योजना

उपर्युक्त सभी प्रतीक वस्तु न होकर राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक हैं तथा इनको वैधानिक दर्जा प्राप्त है।

राष्ट्रीय ध्वज संहिता

भारतीय राष्ट्रीय ध्वज में तीन समान चौड़ाईवाली आयताकार पट्टियाँ हैं। इनमें ऊपर केसरिया रंग की पट्टी, बीच में श्वेत पट्टी और सबसे नीचे हरे रंग की पट्टी है। श्वेत पट्टी में नीले रंग का 24 धारियों से युक्त अशोक चक्र ध्वज के दोनों ओर अंकित है। ध्वज की लंबाई और चौड़ाई का अनुपात क्रमश: 3 : 2 है। अशोक चक्र को सारनाथ के स्तंभ से लिया गया है।

राष्ट्रीय ध्वज का समय के साथ बदलता स्वरूप

7 अगस्त, 906

22 अगस्त, 1907

जुलाई 1917

जुलाई 1921

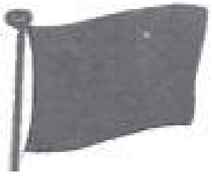

2 अप्रैल, 1931

30 अगस्त, 1931

22 जुलाई, 1947

राष्ट्रीय ध्वज ऐसे स्थान पर फहराया जाना चाहिए, जहाँ से वह स्पष्ट दिखाई दे। राजकीय भवनों पर अवकाश के दिन सहित प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक ध्वज फहराने का नियम है। ध्वज फहराते समय केसरिया रंग की पट्टी हमेशा ऊपर रहनी चाहिए। कटे-फटे, गीले, मैले-कुचैले और बदरंग ध्वज को कभी भी नहीं फहराया जाना चाहिए। विशिष्ट व्यक्तियों की सलामी के लिए ध्वज को कभी भी झुकाया नहीं जाना चाहिए। अन्य कोई ध्वज राष्ट्रीय ध्वज से ऊँचा नहीं लगाया जाना चाहिए। ध्वज-स्तंभ पर कोई प्रतीक चिह्न, माला, पुष्प आदि नहीं लगाने चाहिए। ध्वज का प्रयोग पहनावे के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। रूमाल, मेजपोश, नैपकिन, तकिया-चादर, यूनीफॉर्म आदि के छापे में राष्ट्रीय ध्वज का प्रयोग नहीं होना चाहिए। जब दूसरे देशों के ध्वजों के साथ अपने राष्ट्रीय ध्वज को फहराया जाना हो तो हमारा ध्वज दाहिनी ओर और सबसे आगे होना चाहिए। जब राष्ट्रीय ध्वज को लेकर परेड की जाए तब सभी को ध्वज की ओर मुँह करके सावधान की मुद्रा में खड़े रहना चाहिए। राष्ट्रीय ध्वज को कभी भी जमीन या पानी से स्पर्श नहीं करना चाहिए, बल्कि हवा में लहराना चाहिए। राष्ट्रीय ध्वज का प्रयोग किसी वस्तु को ढकने—शहीद की मूर्ति को ढकने, इमारत को ढकने, वक्ता की मेज को ढकने, ध्वज पर कुछ लिखने, परदे के रूप में प्रयोग करने, किसी विज्ञापन में प्रयोग करने को राष्ट्रीय ध्वज का अपमान माना जाता है। इसलिए प्रत्येक भारतीय नागरिक को उपर्युक्त कृत्यों से बचना चाहिए।

अति गण्यमान्य व्यक्तियों के निधन पर या राष्ट्रीय शोक के दिनों में राष्ट्रीय ध्वज आधा झुकाया जाता है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के निधन पर पूरे देश में ध्वज को झुकाया जाता है। राजकीय या सैनिक या अर्ध-सैनिक बलों के सम्मान में उनकी अरथी राष्ट्रीय ध्वज से ढकी जाती है। परंतु राष्ट्रीय ध्वज शव के साथ जलाया या दफनाया नहीं जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी.एन. खरे और न्यायमूर्ति एस.बी. सिन्हा की पीठ ने कहा कि राष्ट्रीय ध्वज फहराना अनुच्छेद 19-1 (ए) के अंतर्गत नागरिकों का मौलिक अधिकार है। इसी निर्णय के आधार पर 26 जनवरी, 2002 से आम नागरिक को वर्ष भर राष्ट्रीय ध्वज अपने घर पर फहराने की छूट दी गई। इस फैसले में राष्ट्रीय ध्वज प्रदर्शित करने की भी छूट दी गई।

केवल राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल, उपराज्यपाल, कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री, उच्च एवं उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीश ही अपनी मोटरकार पर राष्ट्रीय ध्वज लगा सकते हैं [ध्वज संहिता की धारा IX (3.44) के अनुसार]।

राष्ट्रीय ध्वज के निम्नलिखित मानक आकार हैं—

स्थान	ध्वज का नंबर	माप (मि.मी.)
विशाल भवन	1	6300 × 4200 (12' × 14')
लाल किला	2	3600 × 2400 (12' × 8')
संसद् भवन	2	3600 × 4200 (12' × 8')
राष्ट्रपति भवन	2	3600 × 2400 (12' × 8')
गज कैरिज	2	3600 × 2400 (12' × 8')
अरथी या शव पेटिका	4	1800 × 1200 (6' × 4')
कमरों में प्रदर्शन	5	1350 × 900 (5½' × 3')
क्रॉस	5	1350 × 900 (5½' × 3')
क्रॉस	6	या 900 × 600 (3' × 2')
सामान्य आकार का भवन	3	2700 × 1800 (9' × 6')
राष्ट्रपति का वायुयान और रेलगाड़ी	7	450 × 300 (18'' × 12'')
गण्यमान्य व्यक्तियों की मोटरगाड़ी	8	225 × 150 (9'' × 6'')
मेज का ध्वज	9	150 × 100 (6'' × 4'')

संप्रतीक और नाम (अनुचित प्रयोग का निवारण) अधिनियम 1950 में भारतीय राष्ट्रीय ध्वज को एक संप्रतीक का दर्जा दिया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 'क' (1) के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्र ध्वज, राष्ट्रीय प्रतीकों, संविधान और राष्ट्रगान का सम्मान करे।

राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम 1971 की धारा 2 के अनुसार कोई भी व्यक्ति, जो सार्वजनिक स्थान पर या किसी ऐसे स्थान पर जो सार्वजनिक लगता हो, भारतीय राष्ट्रीय ध्वज या भारत के संविधान या उसके किसी भाग को जलाता है, विकृत करता है, विरूपित करता है, कुचलता है या अपमानित (लिखित या मौखिक शब्दों में या कृत्यों द्वारा) करता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जा सकता है।

□

2

हमारा कानून

भारत के सभी कानूनों का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ। इनका विकास क्रमिक ढंग से हुआ है। भारतीय कानून व्यवस्था को बनाने में अंग्रेजों का बहुत योगदान रहा है तथा भारतीय कानून की अधिकांश व्यवस्थाएँ ब्रिटेन से मिलती-जुलती हैं।

भारतीय कानून के निर्माण में लॉर्ड मैकाले, लॉर्ड रिपन, लॉर्ड कर्जन, जेम्स स्टीफन का विशेष योगदान रहा। इनके द्वारा भारतीय दंड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, सिविल प्रक्रिया संहिता का निर्माण किया गया था। इनके समय में ही बाल-विवाह और सतीप्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध किया गया। भारत में कानून के विकास का इतिहास देखने पर ज्ञात होता है कि भारतीय कानून की उत्पत्ति यकायक नहीं हुई है, बल्कि यह एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम है, जिसका मूल ब्रिटिश भारत के इतिहास में है।

भारत में आधुनिक कानून व्यवस्था की शुरुआत सन् 1600 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ हुई। शुरुआती चार्टरों द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों पर प्रशासनिक अधिकार प्रदान किए गए थे। सन् 1726 में शाही राजपत्र द्वारा कलकत्ता (कोलकाता) तथा मद्रास (चेन्नई) में निगम और मेयर न्यायालय की स्थापना की गई। 12 अगस्त, 1765 को शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी की मंजूरी दी। सन् 1772 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी प्रशासन पर कब्जा कर लिया।

सन् 1773 में ब्रिटिश संसद् ने रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी को नियंत्रित किया। इस ऐक्ट में कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट खोलने का प्रावधान था। इसी अधिनियम के द्वारा कलकत्ता प्रेसीडेंसी को प्रशासनिक नियम, अध्यादेश, विनियम बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। इस ऐक्ट की कमी ऐक्ट ऑफ सेटलमेंट द्वारा पूरी की गई। ईस्ट इंडिया कंपनी पर पूर्ण संसदीय नियंत्रण प्राप्त करने

के लिए पिट्स इंडिया ऐक्ट 1784 पारित किया। इसके तहत एक नियंत्रण बोर्ड का गठन किया गया। इससे कंपनी के निदेशकों का नियंत्रण कंपनी मालिकों के हाथों से निकलकर नियंत्रण बोर्ड के पास आ गया। इस अधिनियम की कमियों को सन् 1793 में एक ऐक्ट द्वारा दूर किया गया। सन् 1813 के एक चार्टर द्वारा कंपनी का कार्यकाल बीस वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।

सन् 1833 के चार्टर द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक अधिकार समाप्त कर दिए गए तथा उसे शासन करने का अधिकार दिया गया। अब कंपनी ब्रिटिश सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में भारत में शासन करने लगी। इसी समय बंगाल के गवर्नर को भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया। उस समय भारत की प्रशासनिक, सैनिक, कानूनी, राजस्व संबंधी शक्तियाँ गवर्नर जनरल के पास थीं। इससे पहले ब्रिटिश भारतीयों के साथ भेदभाव करते थे और इस भेदभाव को हटाने की व्यवस्था इस चार्टर में की गई। सन् 1853 के चार्टर अधिनियम द्वारा भारतीयों के लिए सिविल सर्विस के दरवाजे खोल दिए गए।

सन् 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार अधिनियम 1858 पारित किया। इसके द्वारा महारानी विक्टोरिया ने कंपनी के शासन को समाप्त कर भारत का प्रशासन लॉर्ड क्राउन के अधीन कर दिया। इग्लैंड के एक राज्य मंत्री को भारत का राज्य सचिव नियुक्त किया गया। इस अधिनियम में प्रशासन में भारतीयों को कोई स्थान नहीं दिया गया था। प्रशासन में भारतीयों को स्थान देने के लिए भारतीय परिषद् अधिनियम 1961 पारित किया गया। प्रांतीय विधान परिषदों को विस्तार से अधिकार प्रदान करने के लिए दूसरा भारतीय परिषद् अधिनियम 1892 पारित किया गया। इसके प्रावधानों से असंतुष्ट भारतीयों के लिए भारत सरकार अधिनियम 1909 पारित किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत विधान परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति में निर्वाचन (चुनाव) की प्रक्रिया अपनाई गई।

इन अधिनियमों एवं सुधारों से नाराज भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए मांटेग्यू तथा चेम्सफोर्ड ने भारत की यात्रा की और भारत सरकार अधिनियम 1919 पारित किया। इसके द्वारा भारतीय राज्यों में दोहरे शासन की स्थापना की गई। इस ऐक्ट के तहत महत्त्वपूर्ण विषय गवर्नर व कार्यकारी परिषद् के पास रहे तथा कम महत्त्व के विषय विधान परिषद् को भेजे गए। इसी अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत सन् 1928 में साइमन कमीशन भारत आया। इस कमीशन ने प्रांतों में दोहरे प्रशासन को समाप्त करने, प्रांतों में स्वायत्त शासन की स्थापना करने, केंद्रीय संघीय सभा का निर्माण करने आदि की सिफारिश की; लेकिन यह असफल ही रहा।

सन् 1928 में इंग्लैंड में लेबर पार्टी सत्ता में आई और लॉर्ड इर्विन को भारत बुलाया गया। 31 अक्तूबर, 1929 को लॉर्ड इर्विन ने घोषणा की कि भारत को संप्रभुता प्रदान की जाएगी। सन् 1935 में भारतीयों की आजादी की माँग को देखते हुए ब्रिटिश संसद् ने भारत सरकार अधिनियम 1935 पारित किया। इसमें भारत संघ, संघीय न्यायालय, द्वि-सदनीय संघीय विधायिका, संघीय सूची, प्रांतीय सूची, समवर्ती सूची की स्थापना की गई।

लेकिन उपर्युक्त प्रावधानों से असंतुष्ट भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए क्रमश: अगस्त प्रस्ताव 1940, क्रिप्स मिशन 1942, वावेल योजना 1945 पारित किए गए। अंत में भारत को स्वतंत्रता देने के लिए भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 पारित किया गया।

सन् 1600 से 15 अगस्त, 1947 तक उपर्युक्त अधिनियमों के साथ ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों पर नियंत्रण रखने के लिए अनेक कानून बनाए। इनमें से अनेक अधिनियम ब्रिटेन के समान ही थे। भारत सरकार ने आजादी के बाद उन कानूनों में थोड़ा अनुकूल संशोधन किया और उन्हें लागू कर दिया।

आजादी के बाद भारत सरकार ने भी अनेक कानून बनाए।

भारत में मुख्य रूप से बड़े कानून इस प्रकार हैं, जो सभी नागरिकों पर समान रूप से प्रभावी हैं—

(1) भारतीय संविधान	(2) भारतीय दंड संहिता
(3) दंड प्रक्रिया संहिता	(4) सिविल प्रक्रिया संहिता
(5) साक्ष्य अधिनियम	(6) आय कर अधिनियम।

भारत में कुछ धर्म विशेष पर आधारित कानून भी हैं, जो उस धर्म से संबंधित लोगों पर ही लागू होते हैं। ये पारिवारिक कानून हैं तथा परिवार संबंधी मामलों पर ही लागू होते हैं—

1. हिंदू कानून
2. मुसलिम कानून
3. ईसाई कानून।

भारत सरकार ने इन कानूनों का निर्माण धार्मिक एवं सामाजिक परंपरा के आधार पर किया, ताकि सामाजिक रूढ़ियाँ और परंपराएँ जीवित रहें और लोगों को अजनबीपन महसूस न हो।

प्रत्येक कानून का एक परिक्षेत्र होता है और वह उस परिक्षेत्र पर लागू होता है, जैसे—भारतीय दंड संहिता का परिक्षेत्र संपूर्ण भारत है, अत: यह कानून सभी

भारतीयों पर लागू होता है। इसी प्रकार कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम 1961 का परिक्षेत्र कर्नाटक राज्य है, अत: यह कानून केवल कर्नाटक में लागू होता है। इसको राजस्थान या गुजरात में लागू नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कुछ कानून शहर विशेष पर ही लागू होते हैं, इनको दूसरे शहरों पर लागू नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, बॉम्बे पुलिस ऐक्ट 1951। कुछ कानून एक साथ दो या दो से अधिक राज्यों पर भी लागू हो सकते हैं, जैसे—बिहार एवं उड़ीसा सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1935।

भारत में राज्य कानूनों का निर्माण विधानसभा द्वारा किया जाता है तथा संपूर्ण भारत में लागू होनेवाले कानून संसद् बनाती है। सरकारों के बदलने पर इन कानूनों में समय-समय पर संशोधन भी होते रहते हैं। केंद्र द्वारा बनाए गए कानून सभी राज्यों पर समान रूप से लागू होते हैं तथा राज्य द्वारा बनाए गए कानून केवल उसी राज्य पर लागू होते हैं। यहाँ पर कुछ सेंट्रल तथा स्टेट माइनर (छोटे) ऐक्ट्स की सूची दी जा रही है।

सेंट्रल माइनर ऐक्ट्स

1. हिंदू विवाह अधिनियम 1955
2. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956
3. हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम 1956
4. रेल सेवक (पास) नियम 1986
5. डिप्टी इंजीनियर (इलेक्ट्रिकल) रिक्रूटमेंट रूल्स 1978
6. भारतीय प्रशासनिक सेवा (भरती) नियम 1954
7. केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियम 1972
8. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976
9. रेल अधिनियम 1890
10. विद्युत् (प्रदाय) अधिनियम 1948
11. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963
12. संपत्ति अंतरण अधिनियम 1882
13. माध्यस्थम अधिनियम 1940
14. प्रशासनिक विधि
15. न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971
16. खाद्य निवारण नियम 1955
17. खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954

18. औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947
19. आय कर अधिनियम 1961
20. तस्कर और विदेशी मुद्रा छल साधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम 1976
21. नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम 1976
22. परिसीमा अधिनियम 1963
23. सेना अधिनियम 1950
24. सेना नियम 1954
25. सुखाचार अधिनियम 1882
26. सेवा विधि
27. दंत चिकित्सा अधिनियम 1948
28. केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड नियमावली
29. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948
30. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986
31. आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम 1985
32. आतंकवादी क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम 1984
33. आय और धन स्वेच्छा प्रकटन अधिनियम 1976
34. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986
35. भूमि अर्जन अधिनियम 1894
36. मोटरयान अधिनियम 1939
37. वन (संरक्षण) अधिनियम 1910
38. विद्युत् अधिनियम 1910
39. विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम 1961
40. वित्त अधिनियम 1991
41. विद्युत् विधि (संशोधन) अधिनियम 1991
42. विनियोग अधिनियम 1991
43. कुटंब न्यायालय (संशोधन) अधिनियम 1991
44. रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष संशोधन) अधिनियम 1991
45. एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (संशोधन) अधिनियम 1991
46. चाय कंपनी (रुग्ण चाय यूनिटों का अर्जन और अंतरण) संशोधन अधिनियम 1991

47. सीमा शुल्क (संशोधन) अधिनियम 1991
48. बैककारी विनियमन (संशोधन) अधिनियम 1991
49. जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) उपकर (संशोधन) अधिनियम 1991
50. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान विनियम 1958
51. इंडियन रेलवे एस्टेब्लिशमेंट कोड
52. कानूनों का निर्वचन
53. नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत
54. कंपनी अधिनियम 1956
55. औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946
56. ए.पी. बिल्डिंग्स (लीज, बट ऐंड इक्विशन) कंट्रोल ऐक्ट 1960
57. सोसाइटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1860
58. साक्ष्य अधिनियम 1872
59. व्यवसाय संघ अधिनियम 1926
60. पागलपन अधिनियम 1913
61. विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम 1961
62. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951
63. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (संशोधन) अधिनियम 1976
64. आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955
65. उपदान संदाय अधिनियम 1972
66. प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम 1887
67. कॉटन टेक्सटाइल (कंट्रोल) ऑर्डर 1948
68. उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम 1951
69. केंद्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम 1944
70. स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम 1985
71. हथकरघा (उत्पादनार्थ वस्तु आरक्षण) अधिनियम 1985
72. हथकरघा (उत्पादनार्थ वस्तु आरक्षण) नियम 1986
73. होम्योपैथी (डिप्लोमा पाठ्यक्रम) विनियमावली 1983
74. होम्योपैथी केंद्रीय परिषद् अधिनियम 1973
75. सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम 1975
76. न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971

77. भारतीय न्यास अधिनियम 1882
78. भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934
79. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1947
80. राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951
81. सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1912
82. अंतरराज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956
83. अखिल भारतीय सेवा अधिनियम 1951
84. अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियम 1969
85. भारतीय सेवा आचरण नियम 1968
86. अभियोजन दबाने का सिद्धांत
87. अर्थान्वयन का सिद्धांत
88. अभिधृति विधि
89. अपकृत्य विधि
90. अखिल भारतीय सेवा (मृत्यु और सेवानिवृत्ति सुविधाएँ) नियम 1958
91. आर्म्ड फोर्सेस हेडक्वार्टर्स क्लेरिकल सर्विस रूल्स 1968
92. आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम 1947
93. आयात नियंत्रण आदेश 1955
94. आयात नीति 1980–81
95. आयुध अधिनियम 1959
96. इनामी चिट और धन परिचालन स्कीम (पाबंदी) अधिनियम 1978
97. इमरजेंसी रिस्क्स (फैक्टरी) इंश्योरेंस ऐक्ट 1962
98. उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (सेवा शर्त) अधिनियम 1954
99. उच्चतम न्यायालय नियम 1966
100. उच्चतम न्यायालय (दांडिक अपीली अधिकारिता विस्तारण) अधिनियम 1972
101. उक्षरीकृत पेंशन नियम 1950
102. एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1969
103. कपड़ा उपक्रम (प्रबंध ग्रहण) अधिनियम 1983
104. औषधीय और प्रसाधन निर्मितियाँ (उत्पाद शुल्क) नियम 1956
105. औषधीय और प्रसाधन निर्मितियाँ (उत्पाद शुल्क) अधिनियम 1955
106. औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश 1979

107. औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम 1957
108. ए लोकेशन ऑफ बिजनेस रूल्स 1961
109. एक्सेस प्रॉफिट्स टैक्स ऐक्ट 1940
110. कॉफी अधिनियम 1942
111. कारखाना अधिनियम 1948
112. केंद्रीय स्वास्थ्य सेवा नियम 1982
113. केंद्रीय सचिवालय सेवा नियम 1962
114. किशोर न्याय अधिनियम 1986
115. किराया नियंत्रण और बेदखली विधि 1986
116. काल्टेक्स [काल्टेक्स ऑयल रिफाइनिंग (इंडिया) लिमिटेड के शेयरों तथा काल्टेक्स (इंडिया) लिमिटेड के भारत में उपक्रम का अर्जन] अधिनियम 1977
117. कैंटोनमेंट (एक्सटेंशन ऑफ रेंट कंट्रोल लॉज) ऐक्ट 1957
118. कैंटोनमेंट बोर्ड्स सर्वेंट्स रूल्स 1937
119. गंदी बस्ती क्षेत्र (सुधार एवं उन्मूलन) अधिनियम 1956
120. खान एवं खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम 1957
121. खनिज रियायत नियम 1960
122. कोयलाधारक क्षेत्र (अर्जन और विकास) अधिनियम 1957
123. कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1973
124. छावनी (किराया नियंत्रण विधियों का विस्तार) अधिनियम 1957
125. छावनी अधिनियम 1924
126. चोरबाजारी निवारण एवं आवश्यक वस्तु अधिनियम 1980
127. चिकित्सा न्याय-शास्त्र
128. चिकित्सा कॉलेजों में स्नातकोत्तर डिग्री/डिप्लोमा पाठ्यक्रमों में प्रवेश नियम
129. चलचित्र अधिनियम 1952
130. चलचित्र (प्रमाणीकरण) नियम 1983
131. जाँच आयोग अधिनियम 1952
132. जाँच आयोग (केंद्रीय) नियम 1972
133. जीवन बीमा निगम अधिनियम 1956
134. टेक्सटाइल समिति अधिनियम 1963

135. टेक्सटाइल समिति नियम 1965
136. ट्रेड फेयर अथॉरिटी ऑफ इंडिया एंप्लाइज (कंडक्ट, डिसिप्लिन ऐंड अपील) रूल्स 1977
137. ठेका श्रम (विनियमन और उत्पादन) अधिनियम 1970
138. डाक कर्मकार (नियोजन का विनियमन) अधिनियम 1948
139. डिफेंस ऑफ इंडिया रूल्स 1962
140. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग अधिनियम 1959
141. होटल आमदनी का अधिनियम 1980
142. स्वतंत्रता सेनानी सम्मान पेंशन स्कीम
143. सीमा सुरक्षा बल नियम 1969
144. सीमा सुरक्षा बल अधिनियम 1968
145. सेना अधिनियम 1950
146. सेवा और श्रम विधि
147. सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम 1971
148. स्वदेशी कॉटन मिल्स लिमिटेड अधिनियम 1986
149. स्वर्ण नियंत्रण अधिनियम 1968
150. सीमा शुल्क अधिनियम 1962
151. सड़क परिवहन अधिनियम 1950
152. संयुक्त प्रांत इंजीनियर सेवा (भवन और सड़क शाखा) वर्ग-II नियम 1936
153. शपथ अधिनियम 1969
154. राजभाषा अधिनियम 1963
155. बालक अधिनियम 1960
156. पत्तन अधिनियम 1908
157. बेनामी संव्यवहार (प्रतिवेध) अधिनियम 1988
158. प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1967
159. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948
160. पंचायत विधि।

केंद्र सरकार की तरह राज्य सरकार भी कानूनों का निर्माण करती है। ये कानून केवल उसी राज्य के परिक्षेत्र में लागू होते हैं, जो राज्य इनका निर्माण करता है। कुछ राज्य कानूनों की सूची इस प्रकार है—

1. असम टैक्सेशन ऐक्ट 1954
2. असम पुलिस मैनुअल
3. असम भू-धृति अधिकतम सीमा नियतन अधिनियम 1956
4. असम भूमि और राजस्व विनियम 1986
5. असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (प्रबंध-ग्रहण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1984
6. असम स्थानीय उप-शुल्क विनियम 1879
7. अहमदाबाद नगर निगम चुंगी नियम
8. आंध्र प्रदेश एग्रीकल्चरिस्ट्स रिलीफ ऐक्ट 1938
9. आंध्र प्रदेश सिविल सर्विस रूल्स 1963
10. आंध्र प्रदेश स्टेट जुडिशियल सर्विस रूल्स
11. आंध्र प्रदेश सब-ऑर्डिनेट पुलिस सर्विस रूल्स
12. आंध्र प्रदेश उच्चतर शिक्षा आयोग अधिनियम 1986
13. आंध्र प्रदेश जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट 1957
14. आंध्र प्रदेश टेनेंसी ऐंड एग्रीकल्चरल लैंड्स ऐक्ट 1950
15. आंध्र प्रदेश पुलिस सेवा नियम 1960
16. आंध्र प्रदेश फंडामेंटल रूल्स
17. आंध्र प्रदेश मिनिस्ट्रियल रूल्स
18. आंध्र प्रदेश शेड्यूल्स कमोडिटीज डीलर्स ऑर्डर 1982
19. आंध्र प्रदेश लोक नियोजन नियम 1984
20. आंध्र प्रदेश पुनरीक्षित पेंशन नियम 1980
21. आंध्र प्रदेश मोटर वेहिकल्स रूल्स 1964
22. आंध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) टेनेंसी ऐंड एग्रीकल्चरल लैंड्स ऐक्ट 1950
23. उड़ीसा एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस क्लास-II ऐक्ट 1987
24. उड़ीसा सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्था अधिनियम 1989
25. उड़ीसा एस्टेट्स अबोलिशन ऐक्ट 1951
26. उड़ीसा ग्राम पंचायत ऐक्ट 1964
27. उड़ीसा न्यायिक सेवा नियम 1964
28. उड़ीसा वन उपज (व्यापार नियंत्रण) अधिनियम 1981
29. उड़ीसा लैंड रिफॉर्म्स ऐक्ट 1960
30. उड़ीसा सेवा संहिता
31. उड़ीसा सुपीरियर जूडिशियल सर्विस रूल्स 1963

32. यू.पी. अधिकतम जोत सीमा रोपण अधिनियम 1960
33. यू.पी. अर्बन प्लानिंग ऐंड डेवलपमेंट ऐक्ट 1973
34. उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम 1973
35. यू.पी. राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी सेवा नियम 1981
36. उत्तर प्रदेश मोटरयान विशेष उपबंध 1976
37. उत्तर प्रदेश मूल नियमावली
38. उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम 1952
39. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972
40. उत्तर प्रदेश विद्युत् (शुल्क) अधिनियम 1952
41. उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास
42. उत्तर प्रदेश काश्तकार (विशेषाधिकारों का अर्जन) (संशोधन) और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम 1950
43. उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मंडी अधिनियम 1964
44. उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति और जिला परिषद् अधिनियम 1961
45. उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम 1950
46. उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम 1959
47. उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशंस
48. उत्तर प्रदेश फैक्टरीज रूल्स 1950
49. उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम 1948
50. उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिनियम 1976
51. उत्तर प्रदेश सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) नियमावली 1951
52. कर्नाटक एक्साइज रूल्स 1968
53. कर्नाटक कॉण्ट्रैक्ट कैरिजेज (एक्वीजिशन) ऐक्ट 1976
54. कलकत्ता नगर निगम अधिनियम 1980
55. कलकत्ता ठेका टेनेंसी ऐक्ट 1949
56. कर्नाटक स्लम एरियाज ऐक्ट 1973
57. कर्नाटक स्टेट सिविल सर्विसेज रूल्स 1973
58. कर्नाटक सिनेमाज रूल्स 1971
59. कर्नाटक रेंट कंट्रोल ऐक्ट 1961
60. कर्नाटक म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन ऐक्ट 1976
61. कर्नाटक मेडिकल कॉलेजेज रूल्स 1985

62. कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम 1961
63. केरल स्टेट इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड रेग्यूलेशंस 1966
64. केरल इंटरप्रिटेशन ऐंड जनरल क्लाजेज ऐक्ट
65. केरल एजूकेशन ऐक्ट 1958
66. केरल एजूकेशन रूल्स 1959
67. केरल कोर्ट फीस ऐंड सूट्स वैल्यूएशन ऐक्ट 1959
68. केरल जनरल सेल्स ऐक्ट 1963
69. केरल प्राइवेट फॉरेस्ट्स ऐक्ट 1963
70. गुजरात सेल्स टैक्स ऐक्ट 1969
71. गुजरात सिविल सेवा नियम 1971
72. गुजरात विश्वविद्यालय अधिनियम 1949
73. गुजरात विक्रय कर अधिनियम 1970
74. गुजरात माइनर मिनरल रूल्स 1966
75. गुजरात कृषि भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम 1960
76. गोवा, दमन और दीव कृषि अभिधृति अधिनियम 1976
77. चंडीगढ़ लीज होल्ड साइट्स बिल्डिंग्स रूल्स 1973
78. जम्मू ऐंड कश्मीर संपत्ति अंतरण अधिनियम 1977
79. जम्मू ऐंड कश्मीर मकान और दुकान किराया नियंत्रण अधिनियम 1966
80. जम्मू ऐंड कश्मीर लैंड ग्रांट्स ऐक्ट 1960
81. जम्मू ऐंड कश्मीर कांस्टीट्यूशन
82. जम्मू ऐंड कश्मीर एक्सट्रेक्शन ऑफ रीजिन ऐक्ट 1986
83. जम्मू-कश्मीर आर्बिट्रेशन ऐक्ट 2002
84. तमिलनाडु जनरल क्लॉजेज ऐक्ट 1891
85. तमिलनाडु जनरल सेल टैक्स ऐक्ट 1959
86. तमिलनाडु पंचायत ऐक्ट 1958
87. हिमाचल प्रदेश स्थावर संपत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम 1972
88. हिमाचल प्रदेश अर्बन रेंट कंट्रोल ऐक्ट 1987
89. हरियाणा बोर्ड ऑफ स्कूल एजूकेशन ऐक्ट 1969
90. हरियाणा जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट 1973
91. हरियाणा इंजीनियर सेवा वर्ग-II लोक निर्माण विभाग (सड़क और भवन) नियम 1960

92. हरियाणा इंजीनियरिंग सेवा वर्ग-I लोक निर्माण विभाग (लोक स्वास्थ्य शाखा) नियम 1961
93. हरियाणा नगरीय किराया नियंत्रण और बेदखली अधिनियम 1973
94. सिक्किम राज्य सिविल सेवा नियम 1979
95. वेस्ट बंगाल एंटरटेनमेंट्स ऐंड लक्जरीज (होटल ऐंड रेस्टोरेंट्स) टैक्स ऐक्ट 1972
96. वेस्ट बंगाल रूल्स एंप्लॉयमेंट ऐंड प्रोडक्शन ऐक्ट 1976
97. राजस्थान अर्बन प्रॉपर्टी (रिस्ट्रिक्शन ऑफ ट्रांसफर) ऐक्ट 1973
98. राजस्थान कृषि जोत अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम 1973
99. राजस्थान एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस रूल्स 1964
100. राजस्थान जमींदारी और बिस्वेदारी उत्पादन अधिनियम 1959
101. राजस्थान दुकान और स्थापन अधिनियम 1958
102. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959
103. राजस्थान नगरपालिका संशोधन अधिनियम 1959
104. राजस्थान पब्लिक ट्रस्ट ऐक्ट अधिनियम 1959
105. राजस्थान परिसर किराया नियंत्रण और बेदखली अधिनियम 1950
106. राजस्थान भू-धृति अधिनियम 1955
107. राजस्थान मेडिकल ऐंड हेल्थ सब-ऑर्डिनेट सर्विस रूल्स 1965
108. राजस्थान यूनिवर्सिटी टीचर्स ऐंड ऑफिसर्स ऐक्ट 1974
109. राजस्थान राज्य और अधीनस्थ सेवा नियम 1962
110. राजस्थान लैंड रिफॉर्म्स ऐंड एक्वीजिशन ऑफ लैंड ऑनर्स एस्टेट ऐक्ट 1964
111. महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1960
112. महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी नियम 1961
113. महाराष्ट्र सरकार के विधि कार्य संचालन नियम 1984
114. महाराष्ट्र रीजनल टाउन प्लानिंग ऐक्ट 1966
115. महाराष्ट्र रिकॉग्निशन ऑफ ट्रेड यूनियंस ऐंड प्रिवेंशन ऑफ अनफेयर प्रैक्टिसेज ऐक्ट 1971
116. महाराष्ट्र ग्राउंड वाटर सर्विस क्लास-I (रिक्रूमेंट) रूल्स 1976
117. महाराष्ट्र फॉरेन लिकर रूल्स 1964
118. महाराष्ट्र नगरपालिका (चुंगी) नियम 1968

119. महाराष्ट्र नगरपालिका अधिनियम 1965
120. महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1960
121. महाराष्ट्र एजूकेशन (सेस) ऐक्ट 1962
122. महाराष्ट्र कंट्री लिकर रूल्स 1973
123. महाराष्ट्र एग्रीकल्चरल लैंड्स ऐक्ट 1961
124. मध्य प्रदेश स्थानीय क्षेत्र में माल के प्रवेश पर कर अधिनियम 1976
125. मध्य प्रदेश सिविल सर्विसेज रूल्स 1961
126. मध्य प्रदेश सलेक्शन फॉर पोस्ट ग्रेजुएशन कोर्सेज (क्लीनिकल, पैरा क्लीनिकल ऐंड नॉनक्लीनिकल कोर्सेज) इन मेडिकल कॉलेजेज ऑफ मध्य प्रदेश रूल्स 1984
127. मध्य प्रदेश लैंड रेवेन्यू कोड 1959
128. मध्य प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी सेवा विनियम 1964
129. मध्य प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम 1965
130. मध्य प्रदेश भू-राजस्व संहिता 1959
131. मध्य प्रदेश नगर सुधार अधिनियम 1960
132. मध्य प्रदेश नगर विकास न्यास अधिनियम 1961
133. मध्य प्रदेश नगरपालिका अधिनियम 1961
134. मध्य प्रदेश अकोमोडेशन कंट्रोल ऐक्ट 1961
135. मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम 1915
136. मध्य प्रदेश आसवनी, मद्य निर्माणशाला और भांडागार नियम
137. मध्य प्रदेश इलेक्ट्रीसिटी आदेश 1975
138. मध्य प्रदेश सरकारी नौकरी नियम 1960
139. मध्य प्रदेश गवर्नमेंट सर्वेंट्स जनरल कंडीशंस ऑफ सर्विस रूल्स 1961
140. मध्य प्रदेश सामान्य विक्रय कर अधिनियम 1958
141. मध्य प्रदेश न्यायिक सेवा नियम 1956
142. मध्य प्रदेश नगर निगम अधिनियम 1956
143. बिहार सेल्स टैक्स ऐक्ट अधिनियम 1959
144. बिहार सर्विस कोड 1959
145. बिहार वित्त अधिनियम 1981
146. बिहार राहत उपक्रम (विशेष उपबंध) अधिनियम 1981
147. दिल्ली उच्चतर न्यायिक सेवा नियम 1970

148. दिल्ली शिक्षा संहिता
149. दिल्ली और अजमेर किराया नियंत्रण अधिनियम 1952
150. दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम 1958
151. दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957
152. दिल्ली नगरीय कला आयोग अधिनियम 1973
153. दिल्ली स्कूल एजुकेशन रूल्स 1973
154. दिल्ली सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1972
155. दिल्ली शुगर डीलर्स लाइसेंसिंग ऑर्डर 1963
156. दिल्ली विष नियम 1926
157. दिल्ली लैंड रिफॉर्म्स ऐक्ट अधिनियम 1954
158. दिल्ली रोड ट्रांसपोर्ट अथॉरिटी रेग्यूलेशंस 1952
159. बिहार इंजीनियरिंग सर्विस रूल्स 1939
160. बिहार उत्पाद शुल्क निरीक्षक भरती नियम 1936
161. बिहार ऐंड उड़ीसा लोकल सेल्फ गवर्नमेंट ऐक्ट 1885
162. बिहार ऐंड उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम 1922
163. बिहार और उड़ीसा उत्पाद शुल्क अधिनियम 1915
164. बिहार और उड़ीसा सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1935
165. बिहार औद्योगिक स्थापन (राष्ट्रीय पर्व और त्योहार अवकाश तथा आकस्मिक छुट्टी) अधिनियम 1977
166. बिहार गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालय ऐक्ट 1981
167. बिहार प्राइवेट शिक्षण संस्था (प्रबंध ग्रहण) अधिनियम 1987
168. बिहार बिल्डिंग्स (लीज, रेंट ऐंड इविक्शन) कंट्रोल ऐक्ट 1947
169. बिहार भवन (पट्टा, किराया, बेदखली) नियंत्रण अधिनियम 1947
170. बिहार भूमि सुधार अधिनियम 1950
171. पंजाब अधीनस्थ कृषि सेवा नियम 1933
172. पंजाब आयुर्वैदिक डिपार्टमेंट सर्विस रूल्स 1963
173. पंजाब कोर्ट्स ऐक्ट 1933
174. पंजाब टेनेंसी ऐक्ट 1977
175. पंजाब जनरल सेल्स टैक्स 1948
176. पंजाब बोर्स्टल अधिनियम 1926
177. पंजाब म्यूनिसिपल ऐक्ट 1911

178. पंजाब विलेज कॉमन लैंड्स (रेग्यूलेशन) ऐक्ट 1961
179. पंजाब सिनेमा (विनियमन) अधिनियम 1952
180. पंजाब सिविल सर्विसेज रूल्स 1970
181. पंजाब सुपीरियर जुडिशियल सर्विस रूल्स 1963
182. पंजाब स्टेट पब्लिक सर्विस कमीशन रेग्यूलेशन 1958
183. पंजाब पुलिस रूल्स 1934
184. पंजाब मोटरयान कराधान अधिनियम 1924
185. बॉम्बे पुलिस ऐक्ट 1951
186. बॉम्बे पब्लिक ट्रस्ट्स ऐक्ट 1950
187. बॉम्बे कोर्ट फीस ऐक्ट 1959
188. बॉम्बे जनरल क्लाजेज ऐक्ट 1904
189. बॉम्बे टाउन प्लानिंग ऐक्ट 1954
190. बंबई नगर योजना नियम 1955
191. बॉम्बे यूनिवर्सिटी ऐक्ट 1974
192. बंबई नशाबंदी अधिनियम 1948
193. बंबई नगरपालिका अधिनियम 1888
194. बंबई प्रांतीय नगर निगम अधिनियम 1949

इसी प्रकार भारत के अन्य सभी राज्यों में राज्य सरकारों द्वारा कानूनों का निर्माण किया गया है। पुस्तक में अधिकांश ऐक्ट्स का समावेश कर लिया गया है।

□

3

हमारा संविधान

प्रत्येक स्वतंत्र देश का एक संविधान होता है। यह देश का सर्वोच्च कानून और देश के लोगों की अभिलाषा का प्रतीक होता है। भारतीय संविधान मानव गरिमा के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की गारंटी देता है। भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है। भारतीय संविधान में 444 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। इन अनुच्छेदों को 26 भागों में बाँटा गया है। भारतीय संविधान लिखित संविधान है। भारत में संविधान को विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका से उच्च दर्जा प्राप्त है। हमारे संविधान में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान समाजवाद तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरफ झुकाव रखता है। भारत का संविधान पंथनिरपेक्ष (Secular) है। भारत देश का कोई राष्ट्रीय धर्म नहीं है।

भारत के गणतंत्रात्मक होने के कारण यहाँ का राष्ट्रपति (भारत का प्रथम नागरिक) जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाता है। भारतीय संविधान देश में संसदीय शासन प्रणाली की व्यवस्था करता है। भारत का संविधान कठोर एवं लचीला है—अर्थात् संविधान के कुछ प्रावधानों में तो संशोधन किया ही नहीं जा सकता है, कुछ प्रावधानों को संसद् के विशेष बहुमत से संशोधित किया जा सकता है और कुछ को साधारण बहुमत से। भारत का संविधान प्रत्येक वयस्क व्यक्ति (जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो) को बिना किसी भेदभाव के मतदान करने का अधिकार देता है। भारत का प्रत्येक नागरिक केवल भारत का नागरिक है, वह किसी प्रांत का नागरिक नहीं है।

भारत के संविधान में मूल अधिकारों (अनुच्छेद 12-35) को शामिल किया गया है, जो प्रत्येक नागरिक के विकास के लिए आवश्यक हैं। भारतीय संविधान (अनुच्छेद 51 ए) प्रत्येक नागरिक के लिए दस मूल कर्तव्य भी निश्चित करता है। संविधान में अनुच्छेद 36-51 में राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों को शामिल किया

गया है। इसमें स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। आपात उपबंध अनुच्छेद 352–360 में दिए गए हैं। संविधान द्वारा देश में संघ और राज्य दोनों प्रशासकीय व्यवस्थाएँ दी गई हैं।

संविधान सरकारी सेवाओं में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान करता है। इसकी व्यवस्था अनुच्छेद 16 के खंड 1 से 5 तक में की गई है, जो इस प्रकार है—

(i) राज्य के सभी सरकारी पदों पर नियुक्ति सभी नागरिकों के लिए समान होगी।

(ii) सरकारी नौकरी या पद पर केवल धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान, निवास-स्थान या इनमें से किसी भी एक के आधार पर किसी नागरिक को अयोग्य नहीं माना जाएगा और न ही उसके साथ कोई भेदभाव किया जाएगा।

(iii) इस अनुच्छेद (16) की किसी बात से संसद् को कोई ऐसा कानून बनाने में बाधा नहीं होगी, जो किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र की सरकार के या उनमें से किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी या पद पर नियुक्ति के पूर्व उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के अंदर निवास-विषयक कोई आवश्यकता निर्धारित करती हो, अर्थात् कोई राज्य किसी सरकारी पद के लिए 'उस राज्य का निवासी होना' अनिवार्य योग्यता बना सकती है। ऐसा करने पर संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

(iv) अनुच्छेद 16 के उपबंध राज्य को उन पिछड़े वर्गों के निमित्त नियुक्तियों अथवा पदों पर आरक्षण का प्रावधान करने से नहीं रोकेंगे, जिनका राज्य की दृष्टि में, राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है— अर्थात् सरकार पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर सकती है।

बालाजी बनाम मैसूर ए.आई.आर. राज्य 1963 एस.सी. 649 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जाति विशेष को पिछड़ापन नहीं माना जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि पिछड़ेपन के लिए गरीबी, धंधा, जन्म-स्थान, सामाजिक विचारधारा, आय के साधन, शैक्षिक प्रगति आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 477 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पिछड़े वर्ग का निर्धारण जाति के आधार पर किया

जा सकता है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जाति एक सामाजिक वर्ग है और यदि वह वर्ग सामाजिक रूप से पिछड़ा है तो अनुच्छेद (16) 4 के अंतर्गत पिछड़ा वर्ग होगा। इस मामले में न्यायालय ने पूर्व निर्णय को पलटते हुए कहा कि आर्थिक कसौटी पिछड़ेपन का आधार नहीं है, बल्कि पिछड़ेपन का आधार जाति है। पिछड़े वर्गों में से उन्नत लोगों को हटाकर आरक्षण लागू किया जाए। आरक्षण केवल शुरुआती भरती में लागू किया जा सकता है। इसको तरक्की में लागू नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। यह अनुच्छेद सरकार से अपेक्षा करता है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता एवं प्रतिभा के आधार पर नौकरी के लिए समान अवसर प्रदान करे।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के कुल 26 अनुच्छेद हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

अनुच्छेद 12-3—ये सामान्य अनुच्छेद हैं।

अनुच्छेद 14-18—इनमें समानता का अधिकार प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 14—इसमें प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समानता प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 15—धर्म, जाति, लिंग, जन्म-स्थान के आधार पर नागरिकों के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 16—प्रत्येक नागरिक को अवसर की समानता दी गई है, अर्थात् इस अनुच्छेद के अनुसार प्रत्येक नागरिक को समान अवसर उपलब्ध होंगे।

अनुच्छेद 17—छुआछूत जैसी कुरीतियों को दूर किया गया है।

अनुच्छेद 18—उपाधियों का अंत किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 19-22—इसमें स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है, जो इस प्रकार है—

अनुच्छेद 19 (i) (क)—भाषण (वाक्) तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 19 (i) (ख)—शांतिपूर्वक सभा करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 19 (i) (ग)—संघ (कमेटी) बनाने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 19 (i) (घ)—प्रत्येक नागरिक को संपूर्ण भारत में भ्रमण की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 19 (i) (ङ)—भारत के किसी भी भाग में निवास की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 19 (i) (च)—व्यापार, व्यवसाय, धंधा करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 20—इसमें अपराधों के विषय में दोष-सिद्धि के प्रति सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 20 (1)—कार्योत्तर विधियों से सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 20 (2)—दोहरे दंड से सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 20 (3)—आत्म-अभिशंसन से सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 21—जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा।

अनुच्छेद 22—अवैध बंदीकरण से सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 23—शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान किया गया है, अर्थात् इस अनुच्छेद में मानव के व्यापार तथा बेगार पर रोक लगाई गई है।

अनुच्छेद 24—बच्चों से कारखानों और खानों में काम करवाने पर रोक।

अनुच्छेद 25—इस अनुच्छेद में अंत:करण तथा धर्म को स्वीकार, अभ्यास-प्रसार करने की स्वतंत्रता दी गई है।

अनुच्छेद 26—धार्मिक विषयों के प्रबंध की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 27—किसी धर्म को उन्नति करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 28—धार्मिक पूजा तथा किसी धार्मिक संस्था (जैसे— मंदिर, चर्च) में उपस्थित होने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 29—अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लेख, संस्कृति की सुरक्षा का अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 30—अल्पसंख्यकों को शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और उनके प्रबंधन की स्वतंत्रता का अधिकार।

उपर्युक्त सभी अधिकार भारतीयों के लिए 'मैग्ना कार्टा' हैं। नागरिक इन अधिकारों के हनन होने पर न्यायालय की शरण में जा सकते हैं। अनुच्छेद 32-35 में दिया गया संवैधानिक समाधान का अधिकार भी एक मौलिक अधिकार ही है। इन अधिकारों का हनन होने पर नागरिक संविधान के अनुच्छेद 32 व 226 के अंतर्गत रिट (Writ) लगा सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 15, 16, 18(2), 19, 29, 30 के अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को ही प्राप्त हैं। शेष अधिकार भारत में रहनेवाले अन्य लोगों को भी प्राप्त हैं। उच्च तथा उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ये रिटें जारी कर सकता है—

(क) अधिकार पृच्छा

(ख) परमादेश

(ग) प्रतिषेध

(घ) उत्प्रेषण

(ङ) बंदी प्रत्यक्षीकरण।

संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(क) में सभी नागरिकों को भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसके अंतर्गत कोई नागरिक लेख, शब्दों, मुद्रण-चिह्नों या अन्य किसी प्रकार से अपने विचार दूसरों के समक्ष प्रकट कर सकता है। इसमें बोलने, भाषण देने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल है। विचारों का प्रसारण समाचार-पत्रों के द्वारा भी किया जा सकता है। प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना दूसरों के विचारों का प्रसारण एवं प्रकाशन करना है। इसमें समाचार-पत्र, पत्रक, परिपत्र, चलचित्र तथा विज्ञापन आदि शामिल हैं। इसमें 'जानने का अधिकार' (Right to Know) भी शामिल माना गया है। संविधान के अनुच्छेद 19 (2) के आधार पर उपर्युक्त स्वतंत्रता पर निम्नलिखित युक्तियुक्त आधारों पर प्रतिबंध भी लगाए जा सकते हैं—

1. देश की सुरक्षा के आधार पर
2. भारत की संप्रभुता एवं अखंडता के आधार पर
3. शिष्टाचार एवं नैतिकता के आधार पर
4. न्यायालय की अवमानना के आधार पर
5. मानहानि के आधार पर
6. सार्वजनिक व्यवस्था के आधार पर
7. अपराध-उद्दीपन के आधार पर
8. विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंधों के आधार पर।

संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। इसमें नागरिक के प्राण और शारीरिक स्वतंत्रता को सुरक्षा प्रदान की गई है। यह अधिकार विदेशी लोगों (जो कि भारत में रहते हैं) को भी प्राप्त है। इस अनुच्छेद में प्रत्येक व्यक्ति को मानव-गरिमा के साथ जीवन-यापन का अधिकार दिया गया है। हाल में एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि जीवन-यापन करने के लिए जीविकोपार्जन करना भी प्राणों के अधिकार में शामिल है; परंतु इसमें केवल जीने का अधिकार है, न कि मरने का।

सतवंत सिंह बनाम असिस्टेंट पासपोर्ट अधिकारी, नई दिल्ली तथा गोविंद

बनाम मध्य प्रदेश के मामले में संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि दैहिक स्वतंत्रता में विदेश-भ्रमण तथा एकांतता का अधिकार शामिल है। इसी प्रकार का एक फैसला ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य, ए.आई.आर. 1952 एस.सी. के मामले में दिया गया।

उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न मामलों में निर्णयों के माध्यम से अनुच्छेद 21 में इन बातों का समावेश किया है—

1. प्रत्येक नागरिक को शिक्षा पाने का अधिकार है (मोहित जैन बनाम कर्नाटक राज्य, ए.आई.आर. 1952)।
2. संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर नागरिकों को क्षतिपूर्ति दिलवाने का अधिकार न्यायालय के पास है। (रूदल शाह बनाम बिहार राज्य ए.आई.आर. 1984)।
3. दोषसिद्ध व्यक्ति को उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार है। वह मुकदमे के निर्णय की नि:शुल्क प्रतिलिपि पाने का अधिकारी है। वह नि:शुल्क कानूनी सहायता भी प्राप्त कर सकता है। (एम.एम. होस्कर बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 1548)।
4. किसी कैदी को हथकड़ी तभी लगाई जानी चाहिए जब उसके भागने का खतरा हो। (प्रेम शंकर बनाम दिल्ली प्रशासन, ए.आई.आर.1980, एस.सी. 898)।
5. प्राणों की रक्षा का अधिकार केवल भौतिक अस्तित्व तक सीमित नहीं है, इसमें मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार शामिल है। (मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597)।
6. सभी व्यक्तियों को राज्य के कानूनी तथा कार्यपालिकीय—दोनों प्रकार के कृत्यों के विरुद्ध संरक्षण अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदान किया गया है। (मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 592)।

उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। एक बार न्यायाधीश शास्त्री महोदय ने कहा था कि उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों के संरक्षण-कार्य का पालन करनेवाला सजग प्रहरी है। उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 32 के अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट (Writ of Habear Corpus) जारी कर सकता है। इसका अर्थ होता है—'व्यक्ति को प्रस्तुत करो'। इस रिट द्वारा बंदी बनानेवालों को आदेश दिया जाता है कि बंदी को न्यायालय में पेश किया जाए। इस रिट द्वारा बंदी व्यक्तियों को शीघ्रता से न्याय प्रदान किया जाता है, ताकि उनको स्वतंत्रता का

अधिकार पुन: मिल सके।

कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट दार्जिलिंग के मामले में (सन् 1972 में) न्यायालय ने व्यवस्था दी कि बंदी को न्यायालय में प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है, बल्कि बंदी को मुक्त कर दिया जाना चाहिए, यदि उसको बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के गिरफ्तार किया गया है या बंदी बनाया गया है। बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट निम्न दो अवस्थाओं में जारी नहीं की जाती है—

1. यदि व्यक्ति को कानूनी प्रक्रिया द्वारा बंदी बनाया गया हो।
2. यदि व्यक्ति को बंदी बनाते समय सभी कानूनी प्रक्रियाओं (अनुच्छेद 22) को पूरा कर लिया गया हो।

अधिकार पृच्छा रिट (Writ of Quo Warranto) का अर्थ होता है कि आपका क्या प्राधिकार है। इस रिट को जारी कर न्यायालय उस व्यक्ति से पूछता है कि अमुक पद या अधिकार का प्रयोग किस प्राधिकार के अंतर्गत कर रहा है। न्यायालय वैधानिक रूप से अयोग्य व्यक्ति को सार्वजनिक पद ग्रहण करने से वंचित कर सकता है। यदि इस रिट के अंतर्गत न्यायालय पाता है कि वह व्यक्ति अवैध रूप से सार्वजनिक पद को ग्रहण किए हुए है तो न्यायालय अधिकार पृच्छा रिट जारी कर उस व्यक्ति को वह पद ग्रहण करने से रोक सकता है। यह रिट केवल सार्वजनिक पद (सरकारी) के संबंध में जारी की जा सकती है, निजी संस्थाओं के विषय में नहीं।

अधिकार पृच्छा की रिट निम्न दो परिस्थितियों में ही जारी की जा सकती है—

1. विवादित पद सार्वजनिक होना चाहिए।

2. विवादित पद को ग्रहण करनेवाला व्यक्ति कानूनन उस पद के योग्य नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार एक आम नागरिक भी किसी सार्वजनिक पद के लिए अधिकार पृच्छा की रिट जारी करवा सकता है। इस रिट द्वारा न्यायालय सार्वजनिक पदों पर नौकरी आदि के विषय में कार्यपालिका (सरकार) के क्रिया-कलाप पर रोक लगा सकता है।

परमादेश रिट (Writ of Mandamu) का अर्थ होता है—'हम आदेश देते हैं।' इसके द्वारा न्यायालय सार्वजनिक अधिकारी को आदेश देता है कि वह अपने कानूनी कर्तव्यों एवं दायित्वों का पालन करे। यह रिट उस समय जारी की जाती है जब कोई अधिकारी एवं संस्था अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करती है। यह रिट वह

व्यक्ति जारी करता है जिसको लोक अधिकारों को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए बाध्य करने का कानूनी अधिकार प्राप्त हो। परमादेश की रिट द्वारा किसी अधिकारी को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। यदि कोई संस्था या अधिकरण अपने वैध क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं करता है तो उच्च न्यायालय उसे अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग करने का आदेश दे सकता है।

परमादेश रिट निम्नलिखित परिस्थितियों में जारी की जा सकेगी—

1. जब लोक अधिकारी या सार्वजनिक प्राधिकारी कानून के अनुसार कर्तव्य पूरा नहीं करता हो।
2. जब लोक प्राधिकारी या सार्वजनिक अधिकारी अपने अधिकार के बाहर कार्य करता हो।
3. जब लोक अधिकारी या प्राधिकारी द्वेषपूर्ण कार्य करता हो।
4. जब लोक अधिकारी अपने विवेक से कार्य नहीं करता हो।
5. जब किसी लोक अधिकारी ने अनावश्यक तथ्यों पर विचार करके निर्णय लिया हो।

परमादेश रिट निम्नलिखित परिस्थितियों में जारी नहीं की जा सकती है—

1. जब लोक अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा पूरा किया जानेवाला कर्तव्य केवल विवेकी हो।
2. निजी संस्था तथा निजी व्यक्तियों के खिलाफ यह रिट जारी नहीं की जा सकती है।
3. परमादेश रिट व्यक्तियों के बीच संविदात्मक उत्तरदायित्वों के पालन के लिए जारी नहीं की जा सकती है।

प्रतिषेध रिट (Writ of Prohibition) न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक संस्थाओं के द्वारा अपने क्षेत्राधिकार के बाहर या गैर-कानूनी कार्य करने पर जारी की जाती है। यह रिट न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक संस्थाओं द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्र के उल्लंघन करने पर जारी की जाती है। इसके द्वारा अधिकार-क्षेत्र से बाहर की कारवाई आगे बढ़ने से रोकी जाती है।

प्रतिषेध रिट इन अवस्थाओं में जारी की जा सकेगी—

1. जब न्यायालय या न्यायाधिकरण अपने क्षेत्राधिकार के बाहर कार्य करता है।
2. यह रिट कारवाई के बीच जारी की जा सकती है।
3. जब न्यायालय या न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध कार्य करता है।

4. यह रिट केवल न्यायालय या अर्ध-न्यायाधिकरण के विरुद्ध जारी की जा सकती है।

प्रतिषेध रिट निम्न अवस्थाओं में जारी नहीं की जा सकती है—

1. यह कार्यपालिका के विरुद्ध जारी नहीं की जा सकती है।
2. यह रिट काररवाई समाप्त होने पर जारी नहीं की जा सकती है।
3. यह रिट गलती को ठीक कराने के लिए जारी नहीं की जा सकती है।

उत्प्रेषण रिट (Writ of Certiorari) केवल न्यायिक एवं अर्ध-न्यायिक संस्थाओं के प्रति जारी की जाती है। यह शासकीय निकायों के लिए जारी नहीं की जा सकती है, यह केवल न्यायिक एवं अर्ध-न्यायिक अधिकारों का प्रयोग करनेवाली संस्थाओं के प्रति ही जारी की जा सकती है। अर्ध-न्यायिक वह संस्था होती है, जो नागरिकों के वैध अधिकारों से संबंधित प्रश्नों को निर्णीत करने की शक्ति रखती हो। उत्प्रेषण रिट निम्न आधारों पर न्यायालय या अर्ध-न्यायिक संस्था या उसके प्राधिकारी के कार्यों के विरुद्ध जारी की जा सकती है—

1. जब न्यायालय या अर्ध-न्यायिक संस्था या उसके प्राधिकारी अपने क्षेत्राधिकार के बाहर कार्य करते हों।
2. जब न्यायालय या अर्ध-न्यायिक संस्था प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य करती हो।
3. जब न्यायालय या अर्ध-न्यायिक संस्था का निर्णय प्रथम दृष्टि में गैर-कानूनी हो।
4. यह रिट क्षेत्राधिकार से संबंधित गलती सुधारने के लिए जारी की जा सकती है।
5. यह स्पष्ट गलती को सुधारने के लिए जारी की जा सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 20(2) के अनुसार किसी व्यक्ति को किसी एक ही अपराध के लिए एक से ज्यादा बार अभियोजित तथा दंडित नहीं किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति पर किसी अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया हो और उसे मुक्त कर दिया गया हो तो उसपर दूसरी बार मुकदमा चलाया जा सकता है, चाहे अपराध का आधार पहलेवाला ही हो। संविधान के अनुच्छेद 20(2) का लाभ लेने के लिए निम्नलिखित तीन शर्तों को पूरा करना आवश्यक है—

(क) किसी व्यक्ति का अभियुक्त होना आवश्यक है।

(ख) उसके खिलाफ काररवाई या सुनवाई न्यायिक प्रक्रिया से किसी न्यायालय के समक्ष होनी चाहिए।

(ग) अभियुक्त का दंडित होना आवश्यक है।

संविधान का अनुच्छेद 20(3) किसी भी व्यक्ति को आत्म-अभिशंसण से सुरक्षा प्रदान करता है, अर्थात् किसी अपराध के लिए अभियोजित किए व्यक्ति को अपने ही खिलाफ गवाही (साक्ष्य) देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इस अनुच्छेद का लाभ कोई अभियुक्त व्यक्ति ही ले सकता है। यदि किसी व्यक्ति का नाम एफ.आई.आर. में दर्ज हो तथा मजिस्ट्रेट ने जाँच के आदेश दिए हैं तो वह व्यक्ति इस अनुच्छेद का लाभ प्राप्त कर सकता है। यह अनुच्छेद किसी के दबाव में दी जानेवाली गवाही के खिलाफ ही सुरक्षा प्रदान करता है, इच्छा से दिए जानेवाले साक्ष्य के विरुद्ध नहीं। यदि कोई अभियुक्त स्वयं ही अपने खिलाफ गवाही देना चाहता है तो वह दे सकता है, लेकिन उसे ऐसा करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक दबाव डालकर बाध्य नहीं किया जा सकता है।

संविधान का अनुच्छेद 23 और 24 प्रत्येक भारतीय नागरिक को शोषण से सुरक्षा प्रदान करता है। यह सुरक्षा भारत में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। यदि किसी व्यक्ति के इस अधिकार का हनन होता है तो वह संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत संवैधानिक समाधान प्राप्त कर सकता है। अनुच्छेद 23 और 24 में 'शोषण' शब्द का अर्थ निम्न प्रकार है—

1. बलात् श्रम
2. मानव व्यापार
3. बेगार (बिना मजदूरी के श्रम या काम करवाना)
4. गुलामी या दासता
5. स्त्रियों, अपंगों, बालकों का अनैतिक व्यापार आदि।

अनुच्छेद 23 और 24 सरकारी तथा निजी संस्थाओं पर समान रूप से लागू होता है। अनुच्छेद 23 बलात् श्रम पर रोक लगाता है, चाहे मजदूरी दी जाए या नहीं। दीना बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 1155) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि कैदियों से बिना मजदूरी दिए काम कराना संविधान के अनुच्छेद 23 का उल्लंघन है। इसी प्रकार अनुच्छेद 24 के अनुसार, 14 वर्ष से कम आयुवाले बच्चों को कारखाने या खान अथवा खतरनाक उद्योगों में नहीं लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 51(क) के अनुसार, प्रत्येक भारतीय को इन दस मूल कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है—

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज तथा

राष्ट्रगान का आदर करे।

2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे एवं उनका पालन करे।
3. भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।
4. देश की रक्षा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे।
6. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे।
7. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और ज्ञानार्जन की भावना का विकास करे।
9. प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और उसका संवर्धन करे।
10. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परीक्षण करे।

अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है। यदि कोई व्यक्ति अस्पृश्यता के आधार पर योग्यता का निर्धारण करता है तो वह गैर-कानूनी है और उसे दंडित किया जा सकता है। अत: संक्षेप में—अस्पृश्यता पाप है, अपराध है, अमानवीय है, अवैधानिक है, विवेक-रहित है तथा राष्ट्र-विरोधी है। अगर कोई अस्पृश्यता का व्यवहार करता है तो उसे 6 माह का कारावास या 500 रुपए का जुरमाना हो सकता है।

अनुच्छेद 29 व 30 में अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकारों का संरक्षण किया गया है। उनके हितों की सुरक्षा के लिए निम्न अधिकार प्रदान किए गए हैं—

अनुच्छेद 29(1)—भारत के नागरिकों के किसी भी वर्ग को अपनी भाषा, लिपि व संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है।

अनुच्छेद 30(1)—अल्पसंख्यक वर्ग अपने धर्म, भाषा, रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा उसको प्रशासित करने के लिए स्वतंत्र है।

अनुच्छेद 30(2)—राज्य सरकार द्वारा सहायता देते समय उनके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 29(2)—राज्य सरकार से सहायता प्राप्त करनेवाली संस्था किसी भी नागरिक को धर्म, जाति, मूल, वंश आदि के आधार

पर प्रवेश देने से मना नहीं कर सकेगी।

अनुच्छेद 300—इसके अनुसार राज्य सरकार अपने कर्मचारी द्वारा किए गए अपकृत्य (Torts) के लिए उत्तरदायी होगी।

उच्चतम न्यायालय अनेक मामलों में अनुच्छेद 300 की व्याख्या कर चुका है। राजस्थान राज्य बनाम विद्यावती के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि राज्य अपने अप्रभुता-संपन्न कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा। राज्य अपने प्रभुता-संपन्न कार्य के दौरान किए गए अपकृत्य के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

सहेली बनाम दिल्ली पुलिस कमिश्नर के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि राज्य को प्रभुता-संपन्न कार्यों की आड़ में उसके लोक-सेवकों (सरकारी अधिकारी) द्वारा किए गए अपकृत्यों को सुरक्षा देना उचित नहीं है।

इस प्रकार हमारा संविधान भारत को प्रभुता-संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाता है। भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की गारंटी देता है। प्रत्येक नागरिक को विचार, मत, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता प्रदान करता है। सभी नागरिकों को पद एवं अवसर की समानता प्रदान करते हुए शोषण से सुरक्षा प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्राणों की और शरीर-रक्षा की स्वतंत्रता के साथ-साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी प्रदान करता है। यह मानव गरिमा के साथ जीवन-यापन करने पर बल देता है।

□

4

हमारी अदालतें

प्राचीन काल में राजा-महाराजा विवादों का निर्णय करते थे। ग्राम-स्तर के मामलों का निपटारा गाँव का मुखिया करता था। आजादी के पहले से ही देश में न्यायालय का गठन किया जा चुका था। उस समय की अदालतें ब्रिटिश कानून के अनुसार निर्णय देती थीं। वर्तमान अदालतों के गठन का वर्णन दंड प्रक्रिया संहिता में किया गया है।

राष्ट्रों के बीच विवादों तथा समस्याओं को सुलझाने के लिए अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का गठन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किया गया था। इसका प्रधान कार्यालय हेग में स्थित है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 7 के अनुसार इसमें कुल 15 न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई है। इनका चुनाव सुरक्षा परिषद् एवं महासभा द्वारा नौ वर्षों के लिए किया जाता है। इनमें से 5 न्यायाधीश सुरक्षा परिषद् के स्थायी देशों के होते हैं। अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में तीन वर्षों के लिए अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। ये सभी पुनः भी नियुक्त किए जा सकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय न्यायालय विवादों का निर्णय संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 38(1) के अनुसार इन आधारों पर देते हैं—

(क) अंतरराष्ट्रीय अभिसमय द्वारा

(ख) ख्यातिप्राप्त विधि शास्त्रियों की रचनाओं द्वारा

(ग) न्यायिक निर्णय एवं पंचाटों द्वारा

(घ) सभ्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत विधि के सामान्य नियमों द्वारा

(ङ) अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं द्वारा।

यदि पक्षकार सहमत हों तो उपर्युक्त आधारों के अलावा भी अंतरराष्ट्रीय न्यायालय विवाद का निर्णय कर सकता है।

यद्यपि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय एक विश्व न्यायालय है, लेकिन इसका अधिकार-क्षेत्र देशों की सहमति से निर्धारित होता है। जो मामले संयुक्त राष्ट्र चार्टर

एवं संधियों द्वारा अभिव्यक्त हों और पक्षकार उनका निर्णय न्यायालय से कराना चाहते हैं, तो न्यायालय उनका निर्णय कर देता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा तथा सुरक्षा परिषद् भी किसी भी कानूनी मुद्दे पर अंतरराष्ट्रीय न्यायालय से सलाह ले सकती हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124(1) के अनुसार भारत में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है। इसमें 25 न्यायाधीशों के अतिरिक्त एक मुख्य न्यायाधीश होता है। अनुच्छेद 126 के अनुसार, यदि मुख्य न्यायाधीश अनुपस्थित हो या अपने कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ हो तो राष्ट्रपति इन 25 न्यायाधीशों में से किसी एक को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नियुक्त कर सकता है। अनुच्छेद 128 के अनुसार, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से किसी ऐसे व्यक्ति की, जो कि सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है या संघीय न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका है या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है, को सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।

उच्चतम न्यायालय का पदमुक्त न्यायाधीश किसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता है। उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश अपने पद पर पैंसठ वर्ष की आयु तक बना रह सकता है। इससे पूर्व भी लिखित में राष्ट्रपति को त्याग-पत्र दे सकता है।

योग्यताएँ—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश में निम्न योग्यताएँ होनी चाहिए—

(क) भारत का नागरिक होना चाहिए।

(ख) किसी उच्च न्यायालय में 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो।

(ग) किसी उच्च न्यायालय में 10 वर्ष तक वकालत कर चुका हो।

(घ) राष्ट्रपति की दृष्टि में वह विधि का ज्ञाता होना चाहिए।

भारत के उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस प्रकार है—

(क) अभिलेखीय न्यायालय (Court of Record)

(ख) प्रारंभिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

(ग) अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)

(घ) सलाहकारी क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)।

(क) अभिलेखीय न्यायालय—संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार, उच्चतम न्यायालय एक अभिलेखीय न्यायालय होता है, अर्थात् इसके निर्णय लिखित होते हैं और उदाहरणस्वरूप अधीनस्थ न्यायालयों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते रहते हैं। इसको न्यायालय की अवमानना के लिए दंड देने का अधिकार होता है।

न्यायालय लोकहित में अपने इस अधिकार का प्रयोग करता है।

(ख) प्रारंभिक क्षेत्राधिकार—संविधान के अनुच्छेद 131 के अनुसार, निम्न प्रकार के मामले उच्चतम न्यायालय में सीधे प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

(क) दो या अधिक राज्यों के मध्य के विवाद

(ख) भारत सरकार एवं किसी एक राज्य या अधिक राज्यों के बीच विवाद।

वे मामले भी सीधे उच्चतम न्यायालय में चलाए जा सकते हैं, जिनमें कोई कानून का प्रश्न हो, जिसमें किसी का कानूनी अधिकार निर्भर करता हो। अनुच्छेद 32 के अंतर्गत कोई भी भारतीय नागरिक अपने मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सीधा उच्चतम न्यायालय में वाद क्रम सकता है। उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा एवं उत्प्रेषण की रिट जारी करता है।

(ग) अपीलीय क्षेत्राधिकार—संविधान के अनुच्छेद 132 के अनुसार उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। इसके निर्णयों के विरुद्ध किसी अन्य न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है। उच्चतम न्यायालय का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होता है।

उच्चतम न्यायालय इस प्रकार की अपील सुनता है—

1. संवैधानिक वादों की (Constitutional Cases)
2. विशेष अपील (Appeal by Special leave)
3. दीवानी वादों की (Civil Cases)
4. फौजदारी वादों की (Criminal Cases)

1. संवैधानिक वादों की अपील—यदि संविधान की व्याख्या से संबंधित किसी मामले का अंतिम निर्णय किसी उच्च न्यायालय द्वारा कर दिया गया है तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। यह अपील केवल उच्च न्यायालय के निर्णय, आदेश, डिक्री के विरुद्ध हो सकती है। इसके लिए अपील करनेवाले को राज्य के उच्च न्यायालय से (संविधान के अनुच्छेद 134-ए के अधीन) यह प्रमाणित करवाना होगा कि उस मामले में संविधान से संबंधित कोई सारवान कानूनी प्रश्न अंतर्ग्रस्त है; लेकिन यदि उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाणित न करे तो भी उस मामले के लिए विशेष अपील की स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

2. विशेष अपील—संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय सैनिक न्यायालयों के आदेशों, निर्णयों को छोड़कर भारत के किसी भी न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, आदेश, डिक्री के विरुद्ध अपने यहाँ अपील की विशेष आज्ञा

दे सकता है। यह अनुच्छेद लोकहित के लिए उच्चतम न्यायालय को लचीली (Flexible) शक्तियाँ प्रदान करता है।

3. दीवानी वादों की अपील—संविधान के अनुच्छेद 133 के अनुसार किसी उच्च न्यायालय के दीवानी मामलों के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। यदि वह मामला सार्वजनिक महत्त्व का हो तो उसका निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए।

4. फौजदारी वादों की अपील—संविधान के अनुच्छेद 134(1) के अनुसार निम्न परिस्थितियों में किसी उच्च न्यायालय के आपराधिक मामलों के आदेशों एवं निर्णयों की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है—

(क) यदि उच्च न्यायालय ने अपने अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय को एकदम से उलट दिया हो। अधीनस्थ न्यायालय ने अपने निर्णय में अभियुक्त को मुक्त किया हो, लेकिन उच्च न्यायालय ने उस निर्णय को बदलकर मृत्युदंड का आदेश दिया हो तो अभियुक्त उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है।

(ख) यदि उच्च न्यायालय ने अपने अधीनस्थ न्यायालय से वाद को अपने पास मँगा लिया और अभियुक्त को मृत्युदंड का आदेश दिया हो तो अभियुक्त अपने मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में कर सकता है।

(ग) यदि किसी आपराधिक मामले में उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील करने योग्य है तो अभियुक्त ऐसा प्रमाण-पत्र संलग्न करके अपने मामले की अपील कर सकता है।

(घ) सलाहकारी क्षेत्राधिकार—यदि राष्ट्रपति के समक्ष कोई कानूनी अड़चन उपस्थित हो जाए तो वह उच्चतम न्यायालय से कानूनी सलाह माँग सकता है। यदि राष्ट्रपति के विचार में कोई सार्वजनिक महत्त्व का प्रश्न हो और उसपर उच्चतम न्यायालय का विचार जानना आवश्यक हो तो राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन ऐसा प्रश्न उच्चतम न्यायालय के पास भेज सकता है। लेकिन इन री केरल एजूकेशन बिल, ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 956 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उच्चतम न्यायालय उचित कारणों से सलाह देने से इनकार भी कर सकता है।

यदि विशेष परिस्थितियों में यह स्पष्ट हो जाए कि किसी पक्षकार के साथ अन्याय हुआ है तो उच्चतम न्यायालय आपराधिक मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील करने की विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है। न्यायालय का यह

अधिकार उसके विवेक पर निर्भर करता है कि अपील की अनुमति दी जाए या नहीं।

संविधान के अनुच्छेद 141 के अनुसार उच्चतम न्यायालय के निर्णय पूरे देश में अन्य सभी न्यायालयों में समान रूप से लागू होते हैं; लेकिन उच्चतम न्यायालय अपने द्वारा किए गए पूर्व निर्णयों से बाध्य नहीं होता है। उदाहरण के लिए, उच्चतम न्यायालय ने गोलनाथ बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 252 के मामले में निर्णय देते समय (अपने पूर्व दिए गए दो निर्णयों क्रमशः) शंकरी प्रसाद, ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 458 तथा सज्जन सिंह, ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 805 के निर्णयों को एकदम से उलट दिया था।

अनुच्छेद 137 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को संसद् द्वारा बनाए गए कानूनों के अंतर्गत पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है।

अनुच्छेद 214 के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में (पंजाब एवं हरियाणा राज्य अपवाद) एक उच्च न्यायालय की स्थापना की जाएगी। अनुच्छेद 216 के अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश अन्य न्यायाधीश (संख्या राष्ट्रपति के विचारानुसार) होंगे।

अनुच्छेद 217 के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. 10 वर्ष तक न्यायाधीश के पद पर कार्य कर चुका हो। *या*
3. किसी उच्च न्यायालय में 10 वर्ष तक वकालत कर चुका हो। *या*
4. राष्ट्रपति के विचार में प्रतिष्ठित विधिवेत्ता हो।

उच्च न्यायालय के निम्नलिखित अधिकार-क्षेत्र होते हैं—

1. अभिलेखीय न्यायालय—संविधान के अनुच्छेद 215 के अनुसार जो जो उच्च न्यायालय के फैसले लिखित होते हैं, उसके अधीनस्थ सभी न्यायालयों पर लागू होते हैं। उच्च न्यायालय अपनी अवमानना किए जाने के लिए स्वयं दंड देने में सक्षम है।

2. अधीक्षण का अधिकार—उच्च न्यायालय सेना न्यायालयों को छोड़कर अपने परिक्षेत्र के सभी न्यायालयों का इंस्पेक्शन कर सकता है। (अनुच्छेद 227)

3. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण—संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुसार उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों में नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानांतरण कर सकता है। उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों की जाँच भी कर सकता है।

4. अपीलीय क्षेत्राधिकार—उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध ये अपील सुन सकता है—

(क) आपराधिक अपील

(ख) दीवानी अपील।

5. रिट जारी करना—संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कोई भी उच्च न्यायालय अपने परिक्षेत्र के नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए निम्नलिखित रिटें (Writs) जारी कर सकता है—

(क) बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट

(ख) प्रतिषेध रिट

(ग) उत्प्रेषण रिट

(घ) परमादेश रिट

(ङ) अधिकार पृच्छा रिट।

उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32 के अंतर्गत) की तरह ये रिटें किसी अन्य उद्‌देश्य के लिए भी जारी कर सकता है।

6. नियम बनाने की शक्ति—उच्च न्यायालय अपने न्यायालय में तथा अधीनस्थ न्यायालयों में प्रयोग की जानेवाली प्रक्रिया एवं नियमों का निर्माण कर सकता है।

7. मामलों को अपने समक्ष मँगवाने की शक्ति—यदि उच्च न्यायालय के विचार में किसी अधीनस्थ न्यायालय में कोई ऐसा वाद चल रहा है, जिसमें किसी कानून के प्रश्न की व्याख्या करना आवश्यक है तो न्यायालय ऐसे मामले को अपनी अदालत में बुला या मँगा सकता है। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 228 के अनुसार अपने अधीनस्थ न्यायालय को कानून के प्रश्न का फैसला करके लौटा सकता है या स्वयं उस मामले का निर्णय कर सकता है।

8. शुल्क निश्चित करने की शक्ति—अधिकारियों, लिपिकों, वकीलों का शुल्क भी निश्चित कर सकता है।

9. सलाह देना—जिला न्यायाधीशों की नियुक्तियों में राज्यपाल को उच्च न्यायालय सलाह दे सकता है। (अनुच्छेद 233)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 6 के अनुसार प्रत्येक राज्य में (उच्च न्यायालयों एवं किसी अन्य कानून के तहत स्थापित न्यायालयों को छोड़कर) निम्नलिखित दंड न्यायालय होते हैं—

1. सेशन न्यायालय या सत्र न्यायालय

2. न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय, ये दो श्रेणियों के होते हैं—
(अ) प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय,
(ब) द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय।
3. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय
4. विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय
5. महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय
6. विशेष महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय
7. कार्यपालक मजिस्ट्रेट का न्यायालय, ये निम्न दो श्रेणियों के हैं—
(अ) जिला मजिस्ट्रेट का न्यायालय,
(ब) उपखंड मजिस्ट्रेट का न्यायालय।
8. विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट का न्यायालय।

उपर्युक्त अदालतों के अलावा प्रत्येक जिले में निम्न अदालतें भी होती हैं—
(क) जिला न्यायाधीश का न्यायालय
(ख) सिविल जज का न्यायालय
(ग) व्यवहार न्यायाधीश का न्यायालय (कनिष्ठ खंड)
(घ) व्यवहार न्यायाधीश का न्यायालय (वरिष्ठ खंड)।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 7 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक सेशन खंड होगा या प्रत्येक सेशन खंड एक जिला होगा या कई जिलों का एक सेशन खंड होगा; परंतु प्रत्येक महानगर क्षेत्र के लिए एक अलग से सेशन खंड होगा। राज्य सरकार उच्च न्यायालय की सलाह से सेशन खंडों एवं जिलों की सीमाओं और संख्याओं में परिवर्तन कर सकती है। राज्य सरकार उच्च न्यायालय की राय से जिलों को उपखंडों में भी विभाजित कर सकती है। इस संहिता की धारा 8 के अनुसार राज्य सरकार ऐसे नगर को महानगर का दर्जा दे सकती है, जिसकी 10 लाख से अधिक जनसंख्या हो। राज्य सरकार इस बाबत सूचना भी जारी करेगी। इस संहिता के अनुसार मुंबई, कोलकाता, चेन्नई तथा अहमदाबाद महानगर हैं। राज्य सरकार इस संहिता के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए महानगरों की सीमा को घटा-बढ़ा सकती है।

1. सेशन न्यायालय—राज्य सरकार प्रत्येक सेशन खंड के लिए एक सेशन न्यायालय की स्थापना करती है। इसमें सेशन न्यायाधीश की नियुक्ति उच्च न्यायालय करता है। सेशन न्यायालयों के अधिकारों को प्रयोग करने के लिए उच्च न्यायालय अपर सेशन न्यायाधीश, सहायक सेशन न्यायाधीश की भी नियुक्तियाँ कर सकता

है। उच्च न्यायालय किसी भी एक सेशन न्यायाधीश को दूसरे सेशन खंड का अपर सेशन न्यायाधीश भी नियुक्त कर सकता है।

सभी सहायक सेशन न्यायाधीश उस सेशन न्यायाधीश के अधीनस्थ होते हैं, जिस न्यायालय के अधिकारों का वे प्रयोग कर रहे हैं। सेशन न्यायाधीश अपनी अनुपस्थिति में न्यायालय के मामलों को निपटाने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की व्यवस्था कर सकता है। सेशन न्यायालय कानून के प्रावधानों के अनुसार कोई भी दंड पारित कर सकता है, लेकिन उसके द्वारा पारित मृत्युदंड का अनुमोदन उच्च न्यायालय से होना आवश्यक है। ये अधिकार अपर सेशन न्यायाधीश को भी प्राप्त हैं। सहायक सेशन न्यायाधीश मृत्युदंड, आजीवन कारावास, दस वर्ष से अधिक के कारावास को छोड़कर कोई भी दंड पारित कर सकता है।

2. न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के अनुसार महानगर क्षेत्र को छोड़कर प्रत्येक जिले में न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग और द्वितीय वर्ग के न्यायालयों की स्थापना की गई है। राज्य सरकार इनकी संख्या उच्च न्यायालय की राय से निश्चित करती है। किसी स्थानीय क्षेत्र के लिए, किसी विशेष मामले या विशेष वर्ग के विचारण के लिए प्रथम वर्ग या द्वितीय वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट के एक या अधिक विशेष न्यायालयों की स्थापना कर सकेगी। जहाँ ऐसे विशेष न्यायालयों की स्थापना की जाती है वहाँ उस स्थानीय क्षेत्र के अन्य किसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय को ऐसे मामले अथवा ऐसे वर्ग के, जिनके विचारण के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट के विशेष न्यायालय स्थापित किए गए हैं, विचारण करने की अधिकारिता नहीं होगी। ऐसे न्यायालयों के न्यायाधीश उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। उच्च न्यायालय किसी सिविल न्यायाधीश को प्रथम वर्ग या द्वितीय वर्ग के मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ प्रदान कर सकता है—

- (अ) **प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय**—यह न्यायालय तीन वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कारावास या 5 हजार रुपए से अधिक जुरमाने या दोनों का दंडादेश दे सकता है। (धारा 29)
- (ब) **द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय**—यह न्यायालय एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कारावास का या 1 हजार रुपए से अधिक जुरमाने का या दोनों का दंडादेश दे सकता है। (दंड प्रक्रिया संहिता धारा 29)

3. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 12 के अनुसार महानगर क्षेत्र को छोड़कर प्रत्येक जिले में एक प्रथम वर्ग

न्यायिक मजिस्ट्रेट को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट नियुक्त करेगा। उच्च न्यायालय प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट भी नियुक्त कर सकता है। अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुसार मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की कुछ या सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 29 के अनुसार मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय मृत्युदंड या आजीवन कारावास या सात वर्ष से अधिक अवधि के लिए कारावास के दंडादेश को छोड़कर कोई भी दंड दे सकता है।

4. विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय—राज्य सरकार उच्च न्यायालय की सलाह से एक वर्ष की अवधि के लिए विशेष मामलों या विशेष वर्ग के मामलों के लिए प्रथम वर्ग या द्वितीय वर्ग के मजिस्ट्रेटों को विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकती है। इसको कुछ या सभी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ दी जा सकती हैं। उच्च न्यायालय विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपनी स्थानीय अधिकारिता के बाहर किसी महानगर क्षेत्र के संबंध में महानगर मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार दे सकेगा।

5. महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 16 के अनुसार, प्रत्येक महानगर क्षेत्र में महानगर मजिस्ट्रेटों के इतने न्यायालय स्थापित किए जाएँगे जितने राज्य सरकार उच्च न्यायालय की सलाह से अधिसूचना द्वारा स्थापित करे। इस न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र महानगर होता है तथा इन न्यायालयों में न्यायाधीश की नियुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा की जाती है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 17 के अनुसार, उच्च न्यायालय प्रत्येक महानगर के क्षेत्र में एक महानगर मजिस्ट्रेट को मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट नियुक्त करेगा तथा इसके साथ एक महानगर मजिस्ट्रेट को अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकता है। उच्च न्यायालय के निर्देशानुसार अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट की सभी या कुछ शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा।

महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय तीन वर्ष से अधिक का कारावास या 5 हजार रुपए तक का जुरमाना या दोनों दंडादेश दे सकता है।

6. विशेष महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय—यदि केंद्र सरकार या राज्य सरकार उच्च न्यायालय से अनुरोध करती है तो अपनी स्थानीय अधिकारिता के भीतर किसी महानगर क्षेत्र में विशेष मामलों के या विशेष वर्ग के मामलों के संबंध में महानगर मजिस्ट्रेट को इस संहिता के द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त या प्रदत्त की जा सकनेवाली सभी या कुछ शक्तियाँ प्रदान कर सकता है। उच्च न्यायालय अथवा

राज्य सरकार, यथास्थिति, विशेष महानगर मजिस्ट्रेट को, महानगर क्षेत्र के बाहर किसी स्थानीय क्षेत्र में प्रथम वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त कर सकेगी। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 19 के अनुसार, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट और प्रत्येक अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट सेशन न्यायालय के अधीनस्थ होगा और प्रत्येक अन्य महानगर मजिस्ट्रेट सेशन न्यायालय के साधारण नियंत्रण के अधीन रहते हुए मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होगा।

7. कार्यपालक मजिस्ट्रेट का न्यायालय—राज्य सरकार अपने विवेक से प्रत्येक जिले और महानगर में कार्यपालक मजिस्ट्रेट की नियुक्ति कर सकती है और उनमें से एक को जिला मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकेगी। राज्य सरकार किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को अपर जिला मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकेगी। राज्य सरकार कार्यपालक मजिस्ट्रेट को उपखंड मजिस्ट्रेट का भी कार्यभार सौंप सकती है।

8. विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट का न्यायालय—राज्य सरकार विशिष्ट क्षेत्रों के लिए या विशिष्ट कार्यों एवं कर्तव्यों के पालन के लिए कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को विशेष समय के लिए विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त कर सकती है। इस संहिता के अधीन कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को प्रदत्त की जा सकनेवाली शक्तियों में से ऐसी शक्तियाँ, जिन्हें वह उचित समझे, इन विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को प्रदान कर सकती है।

☐

5

अपराध

भारतीय दंड संहिता में प्राय: सभी प्रकार के अपराधों का वर्णन किया गया है। इसकी धारा 40 में अपराध की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार, जो कार्य या कृत्य विशेष स्थानीय कानून के अंतर्गत दंडनीय बताया गया है, वह कार्य अपराध की श्रेणी में आता है। जो कार्य दंडनीय नहीं बताया गया है, वह अपराध नहीं माना जाता है। भारतीय दंड संहिता में निम्न कार्यों को अपराध माना गया है और उनका दंड इस प्रकार है—

धारा 109—किसी व्यक्ति को अपराध के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले को वही दंड मिलता है, जो उसे अपराध करने पर मिलता। जमानत अपराध की प्रकृति पर निर्भर करती है।

धारा 110—किसी व्यक्ति को अपराध के लिए दुष्प्रेरित करना और उस व्यक्ति के द्वारा दूसरा अपराध करने (जिसकी दुष्प्रेरणा नहीं दी गई थी) पर दुष्प्रेरक को वही दंड मिलता, जो उसे अपराध करने पर मिलता। जमानत मामले की प्रकृति पर निर्भर करती है।

धारा 115—किसी व्यक्ति को आजीवन कारावास या मृत्युदंड देनेवाले अपराध को करने के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यदि व्यक्ति अपराध कर देता है तो दुष्प्रेरक के चौदह वर्ष के कारावास तथा जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती श्रेणी का अपराध है।

धारा 116—यदि दुष्प्रेरण का कार्य सरकारी अधिकारी करता है तो उसको उस अपराध के आधे दंड और जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। जमानत अपराध की प्रकृति पर निर्भर करती है।

धारा 117—जनसाधारण या दस अथवा दस से ज्यादा लोगों को अपराध करने के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाना या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

धारा 118—मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडित किए जानेवाले अपराध की परिकल्पना को छिपानेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। अपराध करने पर सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है।

धारा 119—किसी लोक सेवक द्वारा अपराध की परिकल्पना को छिपाने पर उसे अपराध की आधी सजा या जुरमाने से या दोनों से दंडित किया जाता है। यदि अपराध नहीं किया जाता है तो दंड का चौथाई भाग दिया जाता है। यदि अपराध मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय होता है तो लोक सेवक को दस वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया जाता है।

धारा 120 (ब)—मृत्युदंड या आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक अवधि से दंडनीय अपराध के षड्यंत्र करनेवाले व्यक्ति को वही दंड मिलेगा, जो अपराध करनेवाले को दिया जाता है। अन्य किसी प्रकार का षड्यंत्र (उपर्युक्त को छोड़कर) करनेवाले को छह माह के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। अपराधी की जमानत मामले की प्रकृति पर निर्भर करती है।

धारा 121—भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करने का प्रयास या युद्ध करना या इसके लिए दुष्प्रेरित करनेवाले को मृत्युदंड या आजीवन कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। इस धारा के आरोपी की जमानत नहीं होती है।

धारा 121 (ए)—धारा 121 में वर्णित अपराध का षड्यंत्र रचनेवाले को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 122—धारा 121 में वर्णित अपराध करने के लिए हथियार एकत्र करनेवाले को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध होता है।

धारा 123—धारा 121 में वर्णित अपराध की परिकल्पना छिपानेवाले को दस वर्ष की कैद तथा जुरमाने से दंडित किया जाता है। इस मामले में जमानत नहीं मिलती है।

धारा 124—राष्ट्रपति या राज्यपाल पर उसको शक्ति प्रयोग न करने देने के उद्देश्य से हमला करनेवाले को सात वर्ष के कारावास एवं जुरमाने से दंडित किया जाता है। इस धारा के अंतर्गत जमानत नहीं होती है।

धारा 124 (क)—राजद्रोह करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास और जुरमाने या तीन वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-

जमानती मामला है।

धारा 125—भारत सरकार के एशियाई मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध करनेवाले या युद्ध करने के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास एवं जुरमाने से या सात वर्ष के कारावास एवं जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती मामला है।

धारा 126—भारत सरकार के मित्र राष्ट्रों में लूट मचानेवाले को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह भी गैर-जमानती मामला होता है।

धारा 127—धारा 125 व 126 में अपराध करके संपत्ति प्राप्त करनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 128—किसी लोक सेवक द्वारा राजकैदी या युद्ध-अपराधी को कारावास से निकालने पर आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 130—किसी अपराधी को कारावास से निकलने में मदद करनेवाले व्यक्ति को या उसको गिरफ्तार करने से रोकनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास एवं जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 131—किसी सैनिक को विद्रोह के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 132—यदि कोई सैनिक किसी व्यक्ति के दुष्प्रेरण से विद्रोह कर देता है तो दुष्प्रेरक को मृत्युदंड या आजीवन कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती श्रेणी का अपराध होता है।

धारा 133—किसी सैनिक को अपने अधिकारी पर आक्रमण (हमला) करने के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले को तीन वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 134—यदि धारा 132 में वर्णित अपराध कर दिया जाता है तो दुष्प्रेरक को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 135—किसी सैनिक को अभित्यजन के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले को

दो वर्ष के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह अपराध जमानती प्रकृति का होता है।

धारा 136—अभित्यजन करनेवाले सैनिक को आश्रय देनेवाले व्यक्ति को दो वर्ष की अवधि के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 137—सेना की पोशाक और टोकन धारण करनेवाले (लोगों में भ्रम पैदा करना कि वह सैनिक है, जबकि वास्तव में वह सैनिक नहीं हो) को तीन माह के कारावास या 500 रुपए के जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 143—किसी (गैर-कानूनी कार्यों को करनेवाली) भीड़ में शामिल होनेवाले को छह माह के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 144—धारा 143 में वर्णित अपराध को हथियार लेकर करनेवाले व्यक्ति को दो वर्ष के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 145—किसी गैर-कानूनी भीड़ (उदाहरणस्वरूप, तोड़-फोड़ करनेवाली भीड़) को छँटने का आदेश दिया जा चुका हो और कोई व्यक्ति उस भीड़ में बना रहता है तो ऐसे व्यक्ति को दो वर्ष के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 147—बलवा (किसी निजी क्षेत्र में पाँच या पाँच से ज्यादा लोगों द्वारा दंगा करना) करनेवाले को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह संज्ञेय प्रकृति का अपराध है। इसका विचारण प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट कर सकता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 153 (क)—विभिन्न धर्म-वर्गों के बीच दुश्मनी बढ़ानेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष का कारावास या जुरमाना या दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है। यदि यह अपराध पूजा-स्थल के बारे में किया जाता है तो उस व्यक्ति को पाँच वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह अपराध गैर-जमानती होता है।

धारा 153 (ख)—राष्ट्रीय एकता को खतरा पैदा करनेवाली भाषा लिखनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह अपराध सार्वजनिक धार्मिक स्थल पर करनेवाले को पाँच वर्ष के कारावास और

जुरमाने से दंडित किया जाता है।

धारा 161—यदि कोई सरकारी कर्मचारी/अधिकारी रिश्वत लेता है तो उसको तीन वर्ष की कैद या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 168—सरकारी कर्मचारियों द्वारा गैर-कानूनी कार्य करने पर एक वर्ष का साधारण कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 186—सरकारी कर्मचारी के कार्य में बाधा डालनेवाले को तीन माह के कारावास या 500 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 193—न्यायिक काररवाई में झूठे साक्ष्य देनेवाले या गढ़नेवाले को सात वर्ष के कारावास एवं जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है तथा सेशन न्यायालय द्वारा विचारण योग्य है।

धारा 194—किसी व्यक्ति को आजीवन कारावास या मृत्युदंड दिलवाने के लिए झूठे साक्ष्य देनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष का कठोर कारावास दिया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को झूठे साक्ष्यों के आधार पर मृत्युदंड दे दिया जाता है तो मिथ्या साक्ष्य देनेवाले व्यक्ति को भी मृत्युदंड दिया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 216—आजीवन कारावास या मृत्युदंड प्राप्त अपराधी को आश्रय देनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है। यदि आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास से दंडित अपराधी को आश्रय दिया जाता है तो आश्रय देनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 216 (क)—लुटेरों को आश्रय देनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 231—नकली सिक्कों का निर्माण करनेवाले को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 234—नकली सिक्के बनानेवाली मशीनों को बनाने या बेचने या खरीदनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष तक के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 255—सरकारी स्टांप का कूटकरण (नकल) करनेवाले व्यक्ति को

आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 264—तौलने के झूठे (नकली) औजारों का प्रयोग करनेवाले व्यक्ति को एक वर्ष के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 267—तौलने के झूठे औजारों को (प्रयोग करने के लिए) बनानेवाले या बेचनेवाले व्यक्ति को एक वर्ष के कारावास या जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 272—खाने-पीने की बिक्रीवाली वस्तुओं में मिलावट करनेवाले व्यक्ति को छह माह के कारावास या 1 हजार रुपए के जुरमाने या दोनों का दंड दिया जाएगा। यह जमानती अपराध है।

धारा 274—औषधियों में मिलावट करनेवाले व्यक्ति को छह माह के कारावास या 1 हजार रुपए के जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 275—धारा 274 में वर्णित औषधियों को बेचनेवाले को वही दंड मिलता है, जो धारा 274 में बताया गया है।

धारा 279—सार्वजनिक मार्गों में लापरवाही से गाड़ी चलानेवाले व्यक्ति को छह माह के कारावास तथा 1 हजार रुपए के जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 289—अपने निजी पालतू जंतु/पशु रखते समय दूसरे की उपेक्षा (दूसरों का ध्यान न रखें) करनेवाले व्यक्ति को छह माह के कारावास या 1 हजार रुपए का जुरमाने या दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 292—अश्लील साहित्य की बिक्री करनेवाले को पहली बार दो वर्ष का कारावास तथा 2 हजार रुपए के आर्थिक दंड से दंडित किया जाता है। अपराध की पुनरावृत्ति पर पाँच वर्ष तक के कारावास तथा 5 हजार रुपए के जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 294—अश्लील गाने या गाली देनेवाले को तीन माह के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 294 (क)—लॉटरी का कार्यालय रखनेवाले को छह माह के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 295—किसी धर्म का अपमान करने, किसी धार्मिक स्थान को हानि

पहुँचाने या अपवित्र करनेवाले अपराधी के दो वर्ष के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 302—मानव-हत्या करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या मृत्युदंड से दंडित किया जाता है। आजीवन कारावास के साथ जुरमाने का भी प्रावधान है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 304—मानव-हत्या की श्रेणी में न आनेवाले आपराधिक मानव वध करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 304 (क)—किसी लापरवाही के कारण मानव की मृत्यु होने पर उस व्यक्ति को दो वर्ष के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 304 (ख)—दहेज-हत्या में व्यक्ति को सात वर्ष से आजीवन कारावास तक का दंड दिया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 306—आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित करनेवाले व्यक्ति को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 309—आत्महत्या का प्रयास करनेवाले व्यक्ति को एक वर्ष का साधारण कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 311—ठगी करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 312—गर्भपात करनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 315—गर्भस्थ जीवित बच्चे को पैदा होने से रोकने या उसको जन्म से पहले मारने का कार्य करनेवाले व्यक्ति को दस वर्ष के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 317—किसी माता-पिता या संरक्षक द्वारा बच्चे को (त्यागने के उद्देश्य से) असुरक्षित छोड़ने पर उनको सात वर्ष के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है। इस धारा के अंतर्गत अपराध सिद्ध करने के लिए बच्चे की आयु बारह वर्ष से कम होनी चाहिए।

धारा 323—किसी को जान-बूझकर चोट पहुँचानेवाले व्यक्ति को एक वर्ष का कारावास या 1 हजार रुपए का जुरमाना अथवा दोनों दंड दिए जाते हैं। यह

जमानती अपराध है।

धारा 324—खतरनाक हथियारों से हमला करनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 325—धारा 323 के अपराध में बहुत ज्यादा शारीरिक क्षति पहुँचानेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कारावास एवं जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 332—किसी सरकारी कर्मचारी को उसका कर्तव्य पूरा न करने देने के लिए उसे चोट पहुँचानेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 342—किसी व्यक्ति का सदोष परिरोध करनेवाले व्यक्ति को एक वर्ष का कारावास या 1 हजार रुपए का जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 354—किसी महिला का शील भंग करने के लिए उसपर हमला या बल प्रयोग करनेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 363—किसी का अपहरण करनेवाले को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 363 (क)—किसी बालक से भीख मँगवाने के लिए अपहरण करनेवाले को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 364—किसी व्यक्ति की हत्या करने के लिए अपहरण करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 366—विवाह के लिए मजबूर करके किसी लड़की को लेकर भागनेवाले को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 366 (क)—किसी अवयस्क लड़की को भगाकर ले जानेवाले व्यक्ति को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 366 (ख)—विदेश से लड़की आयात करनेवाले को दस वर्ष के

कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 372—वेश्यावृत्ति के लिए किसी लड़की को बेचनेवाले या भाड़े पर देनेवाले व्यक्ति को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 376—बलात्कार करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 376 (क)—अलग रहनेवाली पत्नी से सहवास करनेवाले पति को दो वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 376 (ख)—किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा उसकी अभिरक्षा में रहनेवाली किसी महिला के साथ सहवास करनेवाले लोकसेवक को पाँच वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह एक जमानती अपराध है। इस अपराध में मजिस्ट्रेट की आज्ञा से ही सरकारी कर्मचारी को गिरफ्तार किया जा सकता है।

धारा 376 (ग)—जेल अधीक्षक के द्वारा कैदी महिला के साथ सहवास करने पर पाँच वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 376 (घ)—किसी अस्पताल के प्रबंधक या मालिक द्वारा किसी महिला के साथ सहवास करने पर उस व्यक्ति को पाँच वर्ष के कारावास और जुरमाने का दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 377—मुख-मैथुन, गुदा-मैथुन या अन्य कुकर्म करनेवाले व्यक्ति को पाँच वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 379—चोरी करनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष का कारावास या जुरमाना या दोनों दंड दिए जाते हैं। यह जमानती अपराध है।

धारा 381—मालिक के यहाँ चोरी करने पर नौकर को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 384—किसी प्रकार का कार्य कराने के लिए किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के संशय को उत्पन्न करने (उद्दीपन) वाले को तीन वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 392—लूट करनेवाले व्यक्ति को दस वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। रात को राजमार्ग पर लूटपाट करनेवाले व्यक्ति को

चौदह वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 393—धारा 392 के अपराध का प्रयास करनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 395—डकैती करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 396—धारा 395 के अपराध में हत्या करनेवाले व्यक्ति को मृत्युदंड या आजीवन कारावास अथवा दस वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 399—डकैती डालने की तैयारी करनेवाले व्यक्तियों को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 401—चोरी करने के लिए घुमंतू समूह को सात वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 402—डकैती डालने के लिए एकत्र होनेवाले व्यक्तियों (पाँच या उससे अधिक) को सात वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 411—चोरी के माल को चोरी-छुपे लेनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 412—डकैती के माल को लेनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कठोर कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 413—चोरी के माल का व्यापार करनेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 417—धोखाधड़ी करनेवाले व्यक्ति को एक वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 418—संपत्ति के लिए अपने मालिक के साथ छल-कपट करनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है।

यह जमानती अपराध है।

धारा 421, 422—धोखाधड़ी करनेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 426—हानि करनेवाले व्यक्ति को तीन माह का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 427—हानि के द्वारा 50 रुपए या अधिक मूल्य की संपत्ति को नुकसान पहुँचानेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 429—50 रुपए से अधिक मूल्य के जानवर को अपंग या उपयोग करने लायक न छोड़ने अथवा मार देनेवाले व्यक्ति को पाँच वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 430, 431, 432—खेती-बाड़ी, सड़क, पुल, नदी, जल-सरणी, सार्वजनिक जल निकास को नुकसान या हानि पहुँचानेवाले अपराधी को पाँच वर्ष के कारावास या जुरमाना या दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 453—जो कोई प्रच्छन्न गृह-अतिचार या गृह-भेदन करता है, वह दो वर्ष के कारावास तथा जुरमाने से दंडित किया जाता है।

धारा 456—धारा 453 का अपराध रात्रिकाल में करनेवाले को तीन वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है।

धारा 461—किसी बंद पात्र से धन चुराने के लिए उसे तोड़नेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है।

धारा 465—जालसाजी करनेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 477 (क)—झूठा हिसाब-किताब तैयार करनेवाले को सात वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिए जाते हैं। यह जमानती अपराध है।

धारा 487—झूठे मार्क लगाकर माल तैयार करनेवाले को तीन वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 493—किसी औरत का झूठा पति बनकर उसके साथ समागम करनेवाले को दस वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है।

धारा 494—द्विविवाह करनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 497—व्यभिचार करनेवाले व्यक्ति को पाँच वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है। व्यभिचार की विशेष जानकारी भरण-पोषण एवं तलाकवाले पाठ में दी गई है।

धारा 498—किसी विवाहिता को फुसलाकर भगा ले जानेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 498 (क)—विवाहिता महिला के साथ ससुरालवालों द्वारा क्रूरता का व्यवहार करने पर तीन वर्ष के कारावास और जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह गैर-जमानती अपराध है। इसकी विशेष जानकारी दहेज-हत्यावाले पाठ में दी गई है।

धारा 500, 501 (क), 501 (ख), 502 (क), 502 (ख)—इन धाराओं में मानहानि का वर्णन किया गया है। मानहानि करनेवाले व्यक्ति को दो वर्ष का साधारण कारावास या जुरमाना अथवा दोनों दंड दिया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 508—किसी व्यक्ति से दैवी प्रकोप का भय दिखाकर कार्य करवानेवाले व्यक्ति को एक वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 509—लड़कियों को छेड़नेवाले व्यक्ति को एक वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 510—नशा करके सार्वजनिक स्थल पर दूसरे व्यक्तियों को परेशान करनेवाले व्यक्ति को 24 घंटे का साधारण कारावास या 10 रुपए के जुरमाने से दंडित किया जाता है। यह जमानती अपराध है।

धारा 511—किसी प्रकार का अपराध करने की कोशिश करनेवाले व्यक्ति को उस अपराध के आधे दंड से दंडित किया जाता है। जमानत अपराध के प्रयास पर निर्भर करती है।

□

6

पुलिस और एफ.आई.आर.

देश में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए ग्रामीण स्तर तक पुलिस व्यवस्था की गई है। सामान्यत: किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किए गए वारंट से होती है; लेकिन कुछ परिस्थितियों में पुलिस किसी व्यक्ति को बिना वारंट के भी गिरफ्तार कर सकती है। संज्ञेय मामलों की सूचना अतिशीघ्र पासवाले थाने में दर्ज करवाई जाती है। इसी सूचना को एफ.आई.आर. (प्रथम सूचना रिपोर्ट) कहा जाता है।

संज्ञेय अपराध (Cognizable offence)—इस प्रकार के अपराध गंभीर एवं संगीन प्रकृति के होते हैं। इन अपराधों की एफ.आई.आर. के अनुसार या प्रथम अनुसूची के अनुसार बिना वारंट के पुलिस अभियुक्त को गिरफ्तार कर सकती है। इन मामलों में पुलिस बिना किसी आदेश के जाँच-पड़ताल शुरू कर देती है। इन मामलों में अभियुक्त के खिलाफ काररवाई करने के लिए किसी परिवाद की आवश्यकता नहीं होती।

असंज्ञेय अपराध (Non-Cognizable offence)—इन मामलों में अभियुक्त को बिना वारंट के गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। ये सामान्य या कम गंभीर प्रकृति के अपराध होते हैं। (धारा 2 ठ) इन मामलों में पुलिस बिना किसी आदेश के जाँच-पड़ताल नहीं कर सकती है। इन अपराधों में अभियुक्त के खिलाफ काररवाई परिवाद से शुरू होती है।

जमानती अपराध (Bailable offence)—ये कम गंभीर प्रकृति के अपराध होते हैं, इसी कारण इनमें जमानत स्वीकार कर ली जाती है। इन अपराधों के अभियुक्त को जमानत एक अधिकारस्वरूप मिलती है। आई.पी.सी. (भारतीय दंड संहिता) में निम्न अपराधों को जमानती अपराध का दर्जा प्राप्त है—

धारा 129, 135, 140, 143, 144, 145, 147, 148, 151, 154, 155, 158, 160, 166, 167, 168, 169, 172, 173, 175, 176, 178, 179, 180,

181, 182, 183, 184, 186, 187, 188, 189, 190, 193, 198, 201, 202, 203, 204, 205, 206, 209, 211, 216, 216(क), 217, 218, 219, 221, 222, 223, 224, 228, 228(क), 229, 259, 260, 261, 262, 263, 263(क), 264, 265, 266, 269, 270, 272, 273, 274, 275, 276, 277, 278, 279, 280, 281, 283, 284, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 291, 292, 293, 294, 294(क), 296, 297, 304(क), 309, 311, 312, 317, 323, 324, 325, 332, 334, 335, 336, 337, 338, 341, 342, 343, 344, 345, 346, 347, 348, 352, 353, 354, 355, 356, 357, 358, 363, 370, 372, 376, 376(क), 376(ग), 376(घ), 377, 385, 388, 403, 417, 418, 419, 426, 427, 428, 429, 430, 431, 432, 433, 434, 435, 440, 447, 448, 465, 469, 484, 485, 486, 487, 489, 489(ङ), 494, 497, 498, 506, 507, 508, 510 [सीआर.पी.सी. की धारा 2(क)]।

सम्मन मामला (Summon Case)—ऐसा मामला परिवाद से शुरू होता है और वारंट मामला नहीं होता है। इस प्रकार के मामले में दो वर्ष का कारावास या जुरमाना अथवा दोनों से अधिक का दंडादेश नहीं होता है। इस प्रकार के मामले में न्यायाधीश द्वारा वारंट जारी करने पर मामले की प्रकृति में अंतर नहीं आता है। [सीआर.पी.सी. 2(ब)]

वारंट मामला (Warrant Case)—जो अपराध दो वर्ष के कारावास या जुरमाने या इन दोनों से अधिक दंडनीय होता है, वारंट मामला कहलाता है। [दंड प्रक्रिया संहिता धारा 2(भ)]

प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति द्वारा संज्ञेय अपराध की मौखिक सूचना किसी थाने में दी जाती है तो थाने का भारसाधक अधिकारी उसकी सूचना को लिखता है तथा सूचना देनेवाले को पढ़कर सुनाता है। इस सूचना पर अपराध की सूचना देनेवाले के हस्ताक्षर करवाए जाते हैं। यदि सूचना देनेवाला व्यक्ति सूचना लिखित में देता है तो वह उसपर हस्ताक्षर अंकित करके देगा। थाने का अधिकारी ऐसी सूचना का सार अपनी पंजिका या डायरी में दर्ज करता है।

धारा 154(1) के अनुसार, अपराध की सूचना देनेवाले को इसकी एक प्रति तुरंत नि:शुल्क दी जाएगी। यदि किसी व्यक्ति की एफ.आई.आर. कोई थाना-अधिकारी दर्ज नहीं करता है तो वह व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(1) के अनुसार एफ.आई.आर. लिखित रूप में पुलिस अधीक्षक (एस.पी.) को डाक से

भेज सकता है। यदि पुलिस अधीक्षक को अपराध के घटित होने पर विश्वास हो जाता है तो वह अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी को इसकी जाँच-पड़ताल करने का आदेश देगा। इस प्रकार उस पुलिस अधिकारी को कथित मामले में एक पुलिस थाने की सभी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। पुलिस अधिकारी का यह सांविधिक (कानूनी) कर्तव्य एवं अधिकार है कि वह संज्ञेय अपराध की सूचना तुरंत रजिस्टर में दर्ज करे। पाठकों को सलाह दी जाती है कि एफ.आई.आर. दर्ज कराने में विलंब होने पर अभियोजन पक्ष संदेह के घेरे में आ जाता है—अर्थात् एफ.आई.आर. वारदात घटित होते ही तुरंत दर्ज करवाई जानी चाहिए, वरना अभियुक्त को संदेह का लाभ मिल सकता है और वह बरी हो सकता है। यदि किसी एफ.आई.आर. रिपोर्ट की जाँच-पड़ताल विलंब से शुरू होती है तो वह रिपोर्ट अविश्वसनीय नहीं हो सकती है।

स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश बनाम बल्लभ दास और अन्य के मामले में कहा गया कि किसी एफ.आई.आर. रिपोर्ट को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि उसमें कुछ तथ्यों का वर्णन नहीं है। यदि पुलिस अधिकारी एफ.आई.आर. रिपोर्ट में फेर-बदल करता है तो न्यायालय थाना-डायरी तलब करवा सकता है या अभियुक्त अथवा अभियोजन पक्ष न्यायालय से इस बाबत प्रार्थना कर सकता है। एफ.आई.आर. रिपोर्ट को सारभूत साक्ष्य नहीं माना जाता है। एफ.आई.आर. की एक प्रति तुरंत न्यायाधीश को भेजी जानी चाहिए।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अनुसार, जब पुलिस थाने में असंज्ञेय अपराध की सूचना दी जाती है तब ऐसी सूचना का सार थाने की पंजिका में दर्ज किया जाता है। पुलिस अधिकारी सूचना देनेवाले को मजिस्ट्रेट के समक्ष जाने के लिए निर्देश देगा। पुलिस अधिकारी असंज्ञेय मामले का अन्वेषण मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करता है।

जब कोई परिवाद-पत्र मजिस्ट्रेट द्वारा अन्वेषण हेतु पुलिस अधिकारी के पास भेजा जाता है और पुलिस अधिकारी अपनी रिपोर्ट में कहता है कि कोई मामला नहीं बनता है, तो भी मजिस्ट्रेट मामले को (प्रसंज्ञान) चला सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के अनुसार, जब भी थाने के भारसाधक अधिकारी को किसी अपराध की सूचना मिले अथवा उसके विचार में कोई अपराध हुआ है, तो वह धारा 156 के अधीन निम्न प्रकार से मामले की जाँच करेगा—

(क) वह मामले की एक प्रति तुरंत मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

(ख) वह मामले की परिस्थितियों की जाँच-पड़ताल करेगा तथा अपराधी का पता चलने पर उसे गिरफ्तार करेगा या उसकी गिरफ्तारी का उपाय करेगा।

लेकिन मामला गंभीर न होने पर, अन्वेषण करने का आधार नहीं होने पर पुलिस अधिकारी अन्वेषण नहीं करेगा। मजिस्ट्रेट के पास मामले की प्रति पहुँचने पर वह अन्वेषण का आदेश दे सकता है अथवा वह मामले की प्रारंभिक जाँच करने के लिए या उसे निपटाने की कारवाई तुरंत कर सकता है।

संहिता की धारा 160 के अंतर्गत किसी मामले से परिचित व्यक्ति को अपने समक्ष प्रस्तुत होने का लिखित आदेश दे सकता है। गवाह यदि दूसरे स्थान पर रहते हैं तो पुलिस राज्य सरकार के नियमानुसार गवाहों को उचित खर्चा देगी। धारा 161 के अधीन पुलिस अधिकारी गवाह से मौखिक जानकारी प्राप्त कर सकता है। गवाह अपराध से संबंधित सभी प्रश्नों के सही-सही उत्तर देने के लिए बाध्य होगा। पुलिस अधिकारी गवाहों के बयानों को लिख भी सकता है। धारा 162 के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा लिये गए बयानों पर गवाह के हस्ताक्षर नहीं करवाए जाते हैं तथा इनका उपयोग साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है। पुलिस अधिकारी के सामने दिए गए बयान का उतना महत्त्व नहीं होता है जितना कि मजिस्ट्रेट के सामने दिए गए बयानों का। धारा 161 के बयानों को सारभूत साक्ष्य नहीं माना जाता है। जाँच-पड़ताल के दौरान पुलिस के समक्ष दिए गए बयानों का उपयोग साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 165(1) के अनुसार मामले का अन्वेषण करते समय पुलिस अधिकारी किसी वस्तु को ढूँढ़ने के लिए तलाशी ले सकता है, जो कि मामले के समाधान में सहायक सिद्ध हो। पुलिस अधिकारी (थाने का भारसाधक) स्वयं तलाशी लेने के लिए समर्थ है, लेकिन असमर्थ होने पर अपने अधीनस्थ अधिकारी को लिखित में तलाशी लेने का आदेश दे सकता है। इस लिखित आदेश में वह तलाशी स्थान और वस्तु (यदि संभव हो) का वर्णन करेगा।

संहिता की धारा 165(5) के अनुसार तलाशी के लिए तैयार अभिलेख की प्रतियाँ निकटतम न्यायाधीश के पास भेजी जाएँगी और माँगे जाने पर एक प्रति उस व्यक्ति को दी जाएगी, जिसकी तलाशी ली गई है। संहिता की धारा 166 के अनुसार कोई पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी किसी दूसरे पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से, चाहे वह उस जिले में हो या दूसरे जिले में, ऐसे मामले में तलाशी लेने की अपेक्षा कर सकता है।

किसी भी मृत्युकालीन घोषणा को दर्ज करते समय निम्नलिखित

औपचारिकताओं का पालन करना चाहिए—आपराधिक प्रक्रिया संहिता में मृत्युकालीन घोषणा की रिकॉर्डिंग करने के लिए किसी विशेष औपचारिकता का निर्धारण नहीं किया गया है। इस प्रकार का साक्ष्य किसी शपथ पर लेना आवश्यक नहीं है। इसमें अभियुक्त की उपस्थिति भी आवश्यक नहीं है। ऐसे समय में मजिस्ट्रेट के उपस्थित रहने की आवश्यकता भी नहीं है। घोषणा का प्रालेखन मृतक की भाषा में ही किया जाना चाहिए।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अनुसार, जब कोई अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा (Custody) में होता है और अन्वेषण 24 घंटे में पूरा नहीं होता है या नहीं होने की संभावना होती है तो थाने का एक अधिकारी (जो कि सब-इंस्पेक्टर से नीचे की रैंक का नहीं होगा) केस डायरी की एक प्रति मजिस्ट्रेट को भेज देगा। न्यायाधीश मामले को देखते हुए पंद्रह दिनों तक अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में भेज सकेगा।

कोई भी मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त (यदि वह मृत्युदंड या आजीवन कारावास अथवा दस वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध का अपराधी हो) को पुलिस अन्वेषण के दौरान नब्बे दिनों से अधिक की अवधि के लिए निरोध (पुलिस अभिरक्षा) नहीं कर सकेगा। उपर्युक्त के अतिरिक्त (दस वर्ष से कम अवधि के लिए कारावास से दंडित अपराध के लिए) मामलों में यह निरोध साठ दिनों के लिए किया जा सकता है। इन साठ दिनों की गणना में गिरफ्तारीवाला दिन शामिल नहीं होता है। साठ दिन की गणना अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने की तिथि से की जाती है।

परिवाद (इस्तिगासा) (Complaint)—आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 2(घ) के अनुसार, परिवाद पुलिस रिपोर्ट से भिन्न होता है। इसमें कोई व्यक्ति एफ.आई.आर. दर्ज न करवाकर सीधा ही मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद पेश कर अभियुक्त के खिलाफ काररवाई करवाता है।

अत: संक्षेप में कोई व्यक्ति अपराधी के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज करवाकर या परिवाद द्वारा काररवाई कर सकता है। इसके बाद पुलिस अधिकारी मामले की जाँच करता है तथा न्यायालय में पुलिस रिपोर्ट पेश करता है। यदि इस दौरान वह अभियुक्त को गिरफ्तार करना आवश्यक (वारंट से या उसके बिना वारंट) समझता है तो उसको गिरफ्तार किया जाता है। जमानती मामलों में उसकी जमानत हो जाती है तथा गैर-जमानती मामलों में मजिस्ट्रेट के आदेश से उसे साठ से नब्बे दिनों तक हिरासत में रखा जा सकता है।

□

7

गिरफ्तारी और जमानत

सामान्यत: किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी मजिस्ट्रेट के वारंट के द्वारा ही की जाती है, लेकिन निम्नलिखित परिस्थितियों में किसी भी व्यक्ति को धारा 47 के अनुसार वारंट के बिना भी गिरफ्तार किया जा सकता है—

1. यदि अभियुक्त संज्ञेय अपराध से जुड़ा हो या उसके खिलाफ उचित परिवाद किया जा चुका हो या इस संबंध में वर्तमान में कोई स्पष्ट शंका हो। यदि कोई पुलिस अधिकारी किसी को केवल शंका के आधार पर गिरफ्तार करता है तो उसे शीघ्र ही मामले की छानबीन शुरू कर देनी चाहिए।
2. यदि कोई व्यक्ति अपने पास गैर-कानूनी गृह-भेदन के औजार रखता है।
3. यदि कोई व्यक्ति अपराध प्रक्रिया संहिता या राज्य सरकार के किसी आदेश द्वारा अपराधी घोषित किया जा चुका हो।
4. यदि किसी व्यक्ति के पास चोरी के माल के पाए जाने का शक हो तथा जिसके बारे में संदेह हो कि वह किसी अपराध में संलिप्त है।
5. यदि कोई व्यक्ति किसी पुलिस अधिकारी को उसके कर्तव्य का निष्पादन करते समय बाधा पहुँचाए या विधिपूर्ण अभिरक्षा से भाग निकला हो।
6. यदि उसपर किसी सशस्त्र बल के भगोड़ा होने का शक हो।
7. यदि वह भारत के बाहर कहीं ऐसा कोई कार्य करता है, जो यदि भारत में किया जाता तो दंडनीय अपराध होता और प्रत्यर्पण संबंधी किसी कानून के अधीन या भारत में पकड़े जाने का या अभिरक्षा में निरुद्ध किए जाने का भागी हो या संबद्ध रहा हो अथवा संबद्ध होने के विषय में उसके विरुद्ध उचित परिवाद किया जा चुका हो या इस संबंध में विश्वसनीय सूचना प्राप्त हो चुकी हो या उसपर वर्तमान में कोई ठोस संदेह हो।
8. यदि उसको गिरफ्तार किए जाने के लिए किसी अन्य पुलिस अधिकारी

से लिखित या मौखिक आदेश प्राप्त हो चुका हो।

आपराधिक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 42(1) के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में असंज्ञेय अपराध करता है या उसपर ऐसा आरोप लगाया गया हो तथा उस अधिकारी की माँग पर वह अपना नाम व पता बताने से इनकार करता है या गलत बताता है तो पुलिस अधिकारी उस व्यक्ति को नाम-पता पूछने के लिए गिरफ्तार कर सकता है। जब इस प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का वास्तविक नाम व पता अभिनिश्चित कर लिया जाता है तब उसे प्रतिभुओं के साथ या बिना बंध-पत्र के निष्पादन पर छोड़ा जा सकेगा। यदि उससे मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने की अपेक्षा की जाती है तो वह ऐसा करेगा। यदि गिरफ्तारी के समय से 24 घंटों के भीतर ऐसे व्यक्ति का नाम व निवास सही रूप में अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता है या वह बंध-पत्र निष्पादित करने में या अपेक्षित जमानत देने में असफल रहता है तो उसे तुरंत मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 46(2) के अनुसार, यदि वह व्यक्ति गिरफ्तारी का बलपूर्वक विरोध करता है या बचने का प्रयास करता है तो पुलिस अधिकारी उसे गिरफ्तार करने के लिए सभी आवश्यक साधनों का प्रयोग कर सकता है। इसी प्रकार कोई चौकीदार भागते चोर को पकड़ने के लिए बल का प्रयोग कर सकता है; लेकिन किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करते समय उसकी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। वह आजीवन कारावास या मृत्युदंड के दंडनीय अपराध का अभियुक्त न हो।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 43 के अनुसार, कोई प्राइवेट व्यक्ति इस प्रकार से गिरफ्तारी कर सकता है—

1. कोई प्राइवेट व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को, जो उसकी उपस्थिति में कोई गैर-जमानती या संज्ञेय अपराध करता है या किसी उद्घोषित अपराधी को गिरफ्तार कर सकता है। ऐसे गिरफ्तार व्यक्ति को बिना किसी विलंब के पुलिस अधिकारी के हवाले कर देगा या पुलिस थाने की हिरासत में भेज देगा। यदि पुलिस अधिकारी को विश्वास हो जाता है कि उस व्यक्ति ने कोई अपराध नहीं किया है तो उस व्यक्ति को तुरंत छोड़ दिया जाएगा, अर्थात् इस धारा के प्रावधानों के अनुसार कोई भी प्राइवेट व्यक्ति ऐसे किसी व्यक्ति को वारंट के बिना गिरफ्तार कर सकेगा—

(क) जो उसकी उपस्थिति में संज्ञेय या गैर-जमानती अपराध करे।

(ख) जो अपराधी घोषित हो।

कोई भी प्राइवेट व्यक्ति किसी संदेह या सूचना के आधार पर गिरफ्तार नहीं

कर सकेगा, बल्कि उसकी उपस्थिति में अपराध किया जाना आवश्यक है।

गिरफ्तारी का वर्णन आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 46 में किया गया है। इस धारा के प्रावधानों के अनुसार कोई पुलिस अधिकारी गिरफ्तार किए जानेवाले व्यक्ति के शरीर को छूकर या परिरुद्ध कर गिरफ्तारी कर सकेगा, जब तक गिरफ्तार किया जानेवाला व्यक्ति स्वयं अपने आपको वचन या कर्म द्वारा समर्पित नहीं कर दे। वारंट के द्वारा गिरफ्तार करते समय गिरफ्तार किए जानेवाले व्यक्ति को वारंट का सार बताया जाता है तथा उसके माँगने पर वारंट दिखाया भी जाता है। किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करते समय (यदि वह मृत्युदंड या आजीवन कारावास का अपराधी नहीं है तो) उसको मौत के घाट नहीं उतारा जा सकता है।

धारा 47 के अनुसार, यदि गिरफ्तारी वारंट के द्वारा की जा रही है तो पुलिस अधिकारी अपने विश्वास के आधार पर किसी घर की तलाशी ले सकता है। गृह स्वामी पुलिस अधिकारी की माँग पर उसे तलाशी की सारी सुविधाएँ उपलब्ध कराएगा। पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए खिड़की या दरवाजा भी तोड़ सकता है, ताकि अपराधी को भागने का अवसर दिए बिना गिरफ्तार किया जा सके।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अनुसार, जब किसी व्यक्ति को वारंट के द्वारा गिरफ्तार किया जाता है और उसकी जमानत नहीं की जा सकती है या वह अपनी जमानत नहीं दे सकता तो पुलिस अधिकारी गिरफ्तार व्यक्ति की तलाशी ले सकता है और (पहने जानेवाले कपड़ों को छोड़कर) उसके पास पाई जानेवाली सभी वस्तुओं को अभिरक्षा में सुरक्षित रख सकता है। जहाँ गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से कोई वस्तु अभिगृहीत की जाती है वहाँ ऐसे व्यक्ति को एक रसीद दी जाएगी, जिसमें पुलिस अधिकारी द्वारा कब्जे में की गई वस्तुएँ दर्ज होंगी। किसी महिला पुलिस अधिकारी द्वारा किसी महिला की तलाशी पूरी शिष्टता के साथ ली जाएगी।

धारा 50 के अनुसार, गिरफ्तार व्यक्ति को ये सुविधाएँ दी जाएँगी—

(क) यदि व्यक्ति को वारंट के बिना गिरफ्तार किया गया है तो उसे गिरफ्तारी के कारण शीघ्र बताने होंगे।

(ख) यदि गिरफ्तार व्यक्ति जमानती अपराध का अभियुक्त है तो उसे सूचना दी जाएगी कि वह अपनी जमानत करवा सकता है।

धारा 54 के अनुसार, अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए या अपने शरीर पर हुए अपराध को सामने लाने के लिए अपने शरीर की चिकित्सा जाँच

करवा सकता है। ऐसी जाँच करवाने के लिए उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन करना होगा। यदि मजिस्ट्रेट के विचार में आवेदन सही है तो वह आवेदन स्वीकार कर लेता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57 के अनुसार, कोई भी पुलिस अधिकारी वारंट के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को 24 घंटे के अंदर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करेगा। इन 24 घंटों में यात्रा-समय शामिल नहीं है। यदि पुलिस को लगता है कि उस व्यक्ति की जाँच-पड़ताल में 24 घंटे से ज्यादा का समय लगेगा तो आगे एक आदेश मजिस्ट्रेट से प्राप्त किया जाएगा, जो 15 दिनों से ज्यादा का नहीं होगा।

गिरफ्तारी न्यायिक काररवाई का प्रथम चरण है। गिरफ्तारी का मुख्य उद्देश्य अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष पेश करना, विचारण के दौरान उपस्थित करना, गवाहों को भ्रमित, पीड़ित एवं धमकाने से रोकना है। सामान्यत: अभियुक्त को पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में रखा जाता है। लेकिन गंभीर एवं संगीन अपराधों में ही अभियुक्त को ऐसी अभिरक्षा में रखा जाता है। निम्न एवं सामान्य श्रेणी के अपराधों में उसे मामले की जाँच-पड़ताल तक अभिरक्षा में नहीं रखा जाता है। संहिता की धारा 436 के अनुसार, जब गैर-जमानती अपराध के अभियुक्त से भिन्न कोई व्यक्ति पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है या न्यायालय के समक्ष गिरफ्तार अथवा निरुद्ध किया जाता है या न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या लाया जाता है और जब वह ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है, उस बीच किसी समय या ऐसे न्यायालय के समक्ष काररवाइयों के किसी प्रक्रम में जमानत देने के लिए तैयार है, तब ऐसा व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जाएगा।

यदि कोई व्यक्ति न्यायालय की जमानत (पत्रों) की शर्तों का पालन नहीं करता है या पालन करने में असफल रहता है तो अगली तारीख पर जब उसे गिरफ्तार करके लाया जाता है या वह न्यायालय के समक्ष स्वयं हाजिर होता है तो न्यायालय उसे जमानत पर छोड़ने से इनकार कर सकता है।

अत: संक्षेप में, जमानती अपराधों में जमानत की माँग एक अधिकार के रूप में की जा सकती है। गैर-जमानती मामलों में जमानत न्यायालय के विवेक का विषय होता है। यदि अपराधी कोई स्त्री या 16 वर्ष से कम आयु का या दुर्बल व्यक्ति हो तो (मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के अपराधी को भी) न्यायालय उसकी जमानत अपने विवेक के अनुसार स्वीकार कर सकता है। सेशन न्यायालय तथा उच्च न्यायालय किसी भी अपराध के अपराधी की जमानत

स्वीकार कर सकता है।

धारा 437 के अनुसार, इन परिस्थितियों में गैर-जमानती अपराध की जमानत स्वीकार की जा सकती है—

1. जब किसी अपराधी पर गैर-जमानती अपराध का अभियोग हो या संदेह हो और पुलिस द्वारा बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है तो (सेशन न्यायालय, उच्च न्यायालय के अलावा) न्यायालय उसे जमानत पर रिहा कर सकता है। यदि न्यायालय को विश्वास हो कि वह मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडित है तो वह उपर्युक्तानुसार छोड़ा नहीं जाएगा। यदि अभियुक्त पहले कभी मृत्यु, आजीवन कारावास अथवा सात या सात वर्ष से अधिक अवधि तक के कारावास के किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया जा चुका है अथवा दो या दो से अधिक बार किसी गैर-जमानती और संज्ञेय अपराध के लिए दोषी ठहराया जा चुका हो तो उपर्युक्त स्थिति में उसे जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा। परंतु उपर्युक्त बातों के होने पर भी न्यायालय 16 वर्ष से कम आयु या स्त्री या रोगी या किसी शिथिलांग व्यक्ति को जमानत पर छोड़ सकता है।

2. यदि कोई व्यक्ति, जिस पर सात वर्ष से अधिक की अवधि का कोई दंडनीय अपराध करने का आरोप हो या भारतीय दंड संहिता के अध्याय 6, 16, 17 के अधीन किसी अपराध का आरोप हो या ऐसे अपराध का दुष्प्रेरण या षड्यंत्र या प्रयत्न करने का संदेह या अभियोग हो तो उसे निम्न शर्तों के आधार पर जमानत पर छोड़ा जा सकता है—

(क) यदि वह बंध-पत्रों की शर्तों के अनुसार न्यायालय में उपस्थित होगा।

(ख) अपराध को दोहराएगा नहीं।

(ग) अन्य कोई शर्त, जो न्यायालय उचित समझे।

3. यदि किसी अभियुक्त के अपराध का अनुसंधान 60 दिनों की अवधि में पूर्ण नहीं होता है और अभियुक्त 60 दिनों तक अभिरक्षा में रहा हो तो मजिस्ट्रेट उसको जमानत पर छोड़ सकता है।

4. यदि गैर-जमानती अपराध के अभियुक्त के विचारण के समाप्त हो जाने के बाद और निर्णय दिए जाने से पहले किसी समय न्यायालय की यह राय कि यह विश्वास करने का उचित आधार है कि अभियुक्त किसी ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और अभियुक्त अभिरक्षा में है तो वह अभियुक्त को, निर्णय सुनने के लिए, अपने हाजिर होने के लिए प्रतिभुओं से रहित बंध-पत्र उसके द्वारा निष्पादित किए जाने पर छोड़ देगा।

शहजाद हसन बनाम इश्तियाक हसन और अन्य के मामले में कहा गया कि गंभीर प्रकृति के अपराधों में जमानत का आवेदन स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। जहाँ दिन-दहाड़े हत्या का अपराध किया जाता है तथा घटना के कई प्रत्यक्षदर्शी गवाह मौजूद हों तथा अभियुक्त द्वारा गवाहों को भयभीत किए जाने की आशंका हो तो वहाँ जमानत स्वीकार नहीं की जा सकती है।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता 438 में अग्रिम जमानत (Anticipatory bail) का वर्णन है। साधारण जमानत अभियुक्त की गिरफ्तारी के बाद दी जाती है। इसके प्रभाव से अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा से मुक्त हो जाता है। अग्रिम जमानत गिरफ्तारी के आदेश से पूर्व दी जाती है। इसका लाभ यह होता है कि वह व्यक्ति गिरफ्तार नहीं किया जाता है।

धारा 438 के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति को गैर-जमानती मामले में गिरफ्तार होने की शंका हो तो वह सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकता है। इस आवेदन पर न्यायालय विचार करके अपने विवेक से आदेश देता है कि गिरफ्तारी की स्थिति में उस व्यक्ति को तुरंत छोड़ दिया जाए। अग्रिम जमानत देते समय सेशन या उच्च न्यायालय जमानत के साथ ये शर्तें लागू कर सकता है—

(क) वह पुलिस अधिकारी के प्रश्नों के उत्तर देने के लिए उपलब्ध रहेगा।

(ख) वह गवाहों को धमकाएगा नहीं तथा उनको भ्रमित नहीं करेगा।

(ग) वह न्यायालय की अनुमति के बिना देश से बाहर नहीं जाएगा।

(घ) अन्य वे सभी शर्तें जो न्यायालय यथास्थिति आवश्यक समझे।

कोई व्यक्ति अपनी इच्छानुसार सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकता है। यहाँ पर ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि मामले को पहले सत्र न्यायालय में चलाएँ और फिर उच्च न्यायालय में। आवेदक अपनी इच्छा से किसी भी एक न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकता है। अग्रिम जमानत का आवेदन एक बार निरस्त होने के बाद कुछ समय बाद फिर से दिया जा सकता है। अग्रिम जमानत केवल गैर-जमानती मामलों में ही जारी की जा सकती है। कोई भी व्यक्ति अग्रिम जमानत का आवेदन तब कर सकता है जब पुलिस थाने में उस व्यक्ति के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज हो अथवा पुलिस उसके खिलाफ अन्य किसी सूचना के आधार पर काररवाई कर रही हो। हाँ, गिरफ्तारी के बाद अग्रिम जमानत नहीं मिलती है।

सेशन न्यायालय एवं उच्च न्यायालय किसी अभियुक्त या आरोपी की जमानत

मंजूर करते समय मामले की परिस्थितियों पर गहराई से विचार करता है जैसा कि सोनू बनाम स्टेट 2002, क्रिमिनल लॉ जनरल (एन.ओ.सी.) 240, दिल्ली के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने किया। इस मामले में महिला ने अपनी मौत से पहले बयान दिया कि उसकी ननद ने उसके हाथ पकड़े और उसके पति ने उसपर जलाने के लिए केरोसिन तेल डाला। न्यायालय ने मामले के सभी तथ्यों को देखते हुए कहा कि ननद अपने दो बच्चों के साथ अपने अलग मकान में रहती है और मृतका ने आत्महत्या करने के इरादे से अपने ऊपर केरोसिन तेल डाला था। न्यायालय ने आगे कहा कि इन कारणों से मृतका की ननद अग्रिम जमानत पाने की अधिकारिणी है।

बहुत बार निर्दोष, इज्जतदार, धनी, उच्च पदस्थ लोगों को आपसी दुश्मनी के कारण झूठे मुकदमों में फँसाया जाता है। उनके बचाव के लिए ही अग्रिम जमानत की व्यवस्था की गई है।

□

8

अपील

जब कोई परिवादी निचले न्यायालय के फैसले से असंतुष्ट होकर अपना परिवाद उससे उच्च न्यायालय में सुनवाई के लिए ले जाता है तो इस प्रक्रिया को अपील कहा जाता है। अपील सभी प्रकार के वादों एवं परिवादों में नहीं की जा सकती है, बल्कि कुछ ही मामलों में की जा सकती है। परंतु कुछ मामलों में अपील विशेष इजाजत से ही की जा सकती है।

निम्नलिखित मामलों में अपील किए जाने का प्रावधान नहीं है—

1. यदि अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और उसे सजा उच्च न्यायालय द्वारा दी गई हो।
2. धारा 357 के अनुसार, यदि अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है तथा उसके मामले का फैसला निम्न में से किसी भी अदालत ने दिया है तो वह अपील करने का अधिकारी नहीं है—
   (क) न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग
   (ख) मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट
   (ग) न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग
   (घ) सत्र न्यायालय
   (ङ) उच्च न्यायालय (दंड प्रक्रिया संहिता धारा 357)।
3. सत्र न्यायालय या मेट्रोपोलिटन न्यायालय द्वारा प्रदत्त निम्नलिखित दंडों की अपील नहीं की जा सकती—
   (क) तीन माह का कारावास
   (ख) 200 रुपए का जुरमाना
   (ग) उपर्युक्त दोनों।
4. यदि किसी मामले का संक्षेप में विचारण कर 200 रुपए का अर्थदंड दिया गया है तो उसकी अपील नहीं की जा सकती है। (धारा सीआर.पी.सी. 376)

5. शांति बनाए रखने के लिए सिक्योरिटी जमा करने के आदेश की अपील नहीं की जा सकती है।
6. उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निम्नलिखित दंडों की अपील भी नहीं की जा सकती है—
   (क) एक वर्ष का कारावास
   (ख) 1000 रुपए का जुरमाना
   (ग) उपर्युक्त दोनों।
7. न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग द्वारा लगाए गए 100 रुपए जुरमाने की अपील नहीं की जा सकती है।
8. जुरमाने का भुगतान न करने पर न्यायालय द्वारा दिए गए दंड की अपील नहीं की जा सकती है।

   निम्नलिखित व्यक्ति अपील कर सकते हैं—
   (क) अभियुक्त
   (ख) राज्य सरकार
   (ग) अभियोजक।

संविधान के अनुच्छेद 134 के प्रावधानों के अनुसार उच्च न्यायालय के इन निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है—

(क) उच्च न्यायालय द्वारा किसी वाद को सुनवाई के लिए निचले न्यायालय से मँगवाना और मृत्युदंड का आदेश पारित करना।
(ख) उच्च न्यायालय के विचार से मामला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुने जाने योग्य हो।
(ग) उच्च न्यायालय द्वारा अपने से निम्न न्यायालय के आदेश को पलटकर मृत्युदंड देना।

भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अनुसार, राज्य सरकार किसी न्यायालय के फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में यह तर्क देते हुए अपील कर सकती है कि निम्न न्यायालय (उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों को निम्न न्यायालय या निचला न्यायालय कहा जाता है।) ने अत्यधिक दंड पारित किया है। इसी प्रकार तर्क देते हुए कुछ एक मामलों में केंद्र सरकार भी अपील करने की अधिकारिणी है। इसी तर्ज पर अभियोजन पक्ष भी निचले न्यायालय के फैसले से असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय में यह तर्क देते हुए अपील कर सकता है कि निचले न्यायालय ने अभियुक्त को दंडित न करके भारी भूल की है। राज्य सरकार तथा केंद्र

सरकार अपने वकील (लोक अभियोजक) के माध्यम से अपील करती हैं। यह अपील निचले न्यायालयों के निर्णयों (उच्च न्यायालय के निर्णयों को छोड़कर सीआर.पी.सी. की धारा 377 के अनुसार) के खिलाफ उच्च न्यायालय में राज्य या केंद्र सरकार (कुछ मामलों में) द्वारा की जाती है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अनुसार, कोई भी परिवादी निचले न्यायालय के निर्णय के 60 दिनों बाद तक उच्च न्यायालय से विशेष इजाजत लेकर उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 379 के अनुसार ऐसा व्यक्ति उच्च न्यायालय के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है, जिसकी मुक्ति के आदेश को उच्च न्यायालय ने पलट दिया हो तथा निम्नलिखित में से कोई आदेश पारित कर दिया हो—

(क) 10 वर्ष का कारावास

(ख) 10 वर्ष से अधिक की अवधि का कारावास

(ग) आजीवन कारावास

(घ) मृत्युदंड।

उदाहरण—'अ' पर 'ब' अपनी पत्नी 'स' की हत्या का आरोप लगाता है तथा मामला सत्र न्यायालय में चलाया जाता है। सत्र न्यायालय द्वारा 'अ' को निर्दोष मानते हुए मुक्त कर दिया जाता है। इस निर्णय की अपील 'ब' उच्च न्यायालय में करता है तथा उच्च न्यायालय मामले की सुनवाई कर सत्र न्यायालय के निर्णय को पलटते (Reversed) हुए 'अ' को आजीवन कारावास की सजा सुनाता है। इस मामले में सीआर.पी.सी. (आपराधिक प्रक्रिया संहिता) की धारा 379 के प्रावधानों के अनुसार 'अ' उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है।

इसी प्रकार सीआर.पी.सी. की धारा 374 के प्रावधानों के अनुसार, यदि कोई न्यायालय किसी अभियुक्त को सात वर्ष से अधिक के कारावास का दंड सुनाता है तो वह अभियुक्त उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार रखता है। इसी धारा के प्रावधानों के अनुसार न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, सहायक सत्र न्यायालय, न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग के आदेशों के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील की जा सकती है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 373 के अनुसार, शांति बनाए रखने या अच्छे आचरण के लिए माँगी गई प्रतिभूति के खिलाफ सत्र न्यायालय में अपील की जा सकती है। इसी धारा के प्रावधानों के अनुसार किसी भूमि को स्वीकार या अस्वीकार

करने (धारा 121 सीआर.पी.सी) के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील की जा सकती है।

सीआर.पी.सी. की धारा 372 के प्रावधानानुसार जब तक अन्यथा उपबंधित न हो, तो किसी भी दंड न्यायालय के आदेशों एवं निर्णयों के खिलाफ कोई भी अपील नहीं की जा सकती है।

शेष अपील दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 से 394 तक के प्रावधानों के अनुसार की जा सकती हैं।

न्यायालय में अपील करने का समय इस प्रकार निश्चित किया गया है—

(क) जिला न्यायाधीश के पास 30 दिन
(ख) नीलामी निरस्त कराने के लिए 30 दिन
(ग) पुलिस की ओर से अपील की अनुमति के लिए 30 दिन
(घ) उच्च न्यायालय में कुछ विशेष प्रार्थना-पत्रों की अवधि 90 दिन
(ङ) सत्र न्यायालय से फाँसी की सजा 30 दिन
(च) सत्र न्यायालय में 30 दिन
(छ) उच्च न्यायालय में 60 दिन
(ज) मुक्ति के फैसले के विरुद्ध 90 दिन।

□

9

चेक अनादरण

परक्राम्य लिखत अधिनियम (निगोशिएबल इस्ट्रूमेंट एक्ट) 1881 की धारा 13 के अनुसार चेक को एक परक्राम्य लिखत माना गया है। इस अधिनियम की धारा 6 के अनुसार 'चेक' ऐसा विनिमय पत्र है, जो विनिर्दिष्ट (निर्धारित) बैंकर पर लिखा गया है और जिसकी माँग पर से अन्यथा देय होना अभिव्यक्त नहीं है। इस धारा के अनुसार चेक में निम्नलिखित बातें होती हैं—

- चेक केवल बैंकर के प्रति ही जारी किया जा सकता है।
- चेक हमेशा माँग पर ही देय होता है।
- चेक के लिए प्रतिग्रहण की आवश्यकता नहीं होती है।
- आगे के दिनांकवाले या पहले के दिनांकवाले चेक गैर-कानूनी नहीं होते हैं।
- चेक के अनादरित होने पर बैंकर के विरुद्ध धारक कोई काररवाई नहीं कर सकता है। बैंकर केवल लेखीवाल (लिखनेवाले) के प्रति दायी है।
- चेक स्वयं लेखीवाल को देय हो सकता है।
- चेक केवल उसी बैंकर के प्रति लिखा जाता है, जहाँ पर लेखीवाल का खाता होता है।

ऐसा दो प्रकार के होते हैं—

(क) खुला चेक

(ख) क्रॉस चेक

ऐसा चेक, जो भुगतान पानेवाले के द्वारा बैंक के काउंटर पर भुगतान के लिए पेश किया जाता है, को 'खुला चेक' कहते हैं।

चेक के नमूने

XYZ बैंक

क्रमांक............... दिनांक.......................

क, ख, ग बैंक

श्री................................या वाहक को.............................

....रुपए अदा करें।

बचत खाता सं. .... हस्ताक्षर

(क) खुला चेक

क्रमांक................ दिनांक.......................

....को आदेशानुसार अदा करें

....रुपए

सं. .... हस्ताक्षर

(ख) क्रॉस चेक (साधारण)

जिन चेकों पर एक कोने में (चित्र (ख) के अनुसार) दो आड़ी रेखाएँ हों, उन्हें 'क्रॉस चेक' कहते हैं। इन दो आड़ी रेखाओं के बीच 'एंड को', 'और कंपनी', 'परक्राम्य नहीं है' या 'पानेवाले के लेखा में' शब्दों को लिखा जा सकता है।

क्रॉस चेक का भुगतान केवल बैंक खाते द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। क्रॉस चेक का भुगतान धारक के अलावा अन्य कोई व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। निम्नलिखित व्यक्ति चेक को क्रॉस कर सकते हैं—

1. **लेखीवाल**—चेक लिखनेवाला चेक लिखते समय या किसी भी समय चेक को क्रॉस कर सकता है।
2. **धारक**—चेक पानेवाला (जिसके पक्ष में चेक लिखा गया है) चेक को क्रॉस कर सकता है।

3. **बैंक**—बैंक भुगतान प्राप्त करने के लिए उसे विशेष रूप से क्रॉस कर सकता है।

चेक पर जब दो आड़ी रेखाएँ खींची जाती हैं तब इसको साधारण क्रॉस चेक कहा जाता है। इसमें क्रॉस रेखाओं के बीच 'परक्राम्य नहीं है' भी लिखा जा सकता है। जब चेक की आड़ी रेखाओं में 'परक्राम्य नहीं' शब्द से पहले बैंकर (बैंक) का नाम लिख दिया जाता है तो उसे 'विशेष क्रॉस' चेक कहते हैं। इस प्रकार के चेक का भुगतान उसी बैंक से लिया जा सकता है, जिस बैंक का नाम 'परक्राम्य नहीं' शब्द से पहले लिखा जाता है।

बैंकिंग प्रथा के अनुसार निर्बंधनात्मक क्रॉस भी किया जाता है। इस प्रकार के साधारण या विशेष क्रॉस के साथ 'अकाउंट पेयी' शब्द और जोड़ा जाता है। अकाउंट पेयी चेक का अर्थ होता है—चेक को धारक के खाते में ही जमा किया जाए।

इस अधिनियम की धारा 129 के अनुसार, यदि वह बैंकर जिस पर क्रॉस चेक लिखा गया है, उसका संदाय किसी बैंकर या उसके संग्रहण के लिए अभिकर्ता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को कर देता है तो वह चेक के वास्तविक स्वामी के प्रति ऐसे संदाय से हुई क्षति के लिए दायी होगा।

इस अधिनियम की धारा 130 के अनुसार, साधारणत: या विशेषत: क्रॉस किए हुए ऐसे चेकों को, जिन पर 'परक्राम्य नहीं है' शब्द लिखे हैं, लेनेवाला व्यक्ति उस चेक पर उससे बेहतर हक न रखेगा और न देने के लिए समर्थ होगा जैसा उस व्यक्ति का था, जिससे उसने उसे लिया है।

कई बार कुछ लोग अनजाने में या धोखाधड़ी (कपट) करने के मकसद से बैंक में धन नहीं होने पर भी किसी को चेक लिख देते हैं। जब चेक का स्वामी (धारक) ऐसे चेक को भुगतान के लिए बैंक काउंटर पर उपस्थित होता है तब खाते में पर्याप्त निधि के अभाव में चेक अनादरित (बाउंस) हो जाता है।

उदाहरण—'क' ने एक चेक मूल्य 500 रुपए का 'ख' के पक्ष में लिखा। जब 'ख' ने रुपए पाने के लिए चेक को बैंक में जमा किया तब बैंक ने 'क' के द्वारा लिखित चेक इस टिप्पणी के साथ 'ख' को लौटा दिया कि 'क' के बैंक खाते में 500 रुपए नहीं हैं। तब यह कहा जाएगा कि 'क' का चेक अनादरित हो गया है।

परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 (निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट ऐक्ट 1881) की धारा 138 के प्रावधानों से पहले चेक बाउंस होने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420 (छल, धोखा, कपट) के अंतर्गत पुलिस थाने में एफ.आई.आर. दर्ज कराई जाती थी, लेकिन अब ऐसा नहीं किया जा सकता है।

यदि किसी चेक धारक का चेक बैंक में अनादरित हो जाता है तो चेक भुगतान प्राप्तकर्ता (चेक धारक) को वह चेक बाउंसवाले दिनांक (या चेक बाउंस

होने की सूचना प्राप्त होनेवाले दिनांक) के बादवाले पंद्रह दिनों में चेक लिखनेवाले व्यक्ति को इसकी सूचना लिखित में देनी चाहिए तथा चेक में अंकित धनराशि की माँग करनी चाहिए। इस प्रकार की सूचना रजिस्टर्ड डाक के द्वारा ही दी जानी चाहिए। यह सूचना जहाँ तक हो सके, किसी योग्य वकील के माध्यम से देनी चाहिए।

यदि इस प्रकार से सूचना प्रेषण के बाद के 15 दिनों में चेक लिखनेवाले से भुगतान की प्राप्ति नहीं होती है तो इसके एक माह के भीतर प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष लिखित में वकील के माध्यम से परिवाद प्रस्तुत करना चाहिए।

न्यायालय में यदि किसी व्यक्ति पर चेक अनादरण का मामला (अपराध) सिद्ध (दोषसिद्धि) हो जाता है तो उसको एक वर्ष का कारावास दिया जा सकता है तथा चेक लिखनेवाले व्यक्ति को वाद खर्च के अतिरिक्त चेक में वर्णित रकम की दुगुनी रकम का भुगतान करना होता है। इस मामले में कारावास की सजा होने पर भी चेक में वर्णित राशि का भुगतान करना आवश्यक होता है।

चूँकि वर्तमान समय में व्यापार-जगत् में चेकों का महत्त्व बहुत ज्यादा है, इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को चेक के बारे में जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

कानूनी मान्यता प्राप्त (धारा 6) चेक में निम्न गुण होने आवश्यक हैं—

- माँग किए जाने पर चेक का भुगतान तुरंत किया जाना चाहिए।
- चेक विनिर्दिष्ट बैंक पर ही लिखा जाता है। यह उसी बैंक पर (के प्रति) लिखा जाता है, जिसमें चेक जारी करनेवाले का खाता होता है।
- चेक हमेशा बिना शर्तवाला होता है, अर्थात् चेक लिखनेवाला चेक में उल्लिखित धनराशि का भुगतान करने के लिए बिना किसी शर्त का लिखित आदेश देता है।
- चेक में भुगतान की जानेवाली (देय) राशि विनिर्दिष्ट (निश्चित) होती है। यह शब्दों एवं अंकों में स्पष्ट रूप से अंकित होती है।
- चेक में वर्णित राशि का भुगतान उसमें लिखित व्यक्ति को या उसके आदेश से अन्य व्यक्ति या उसके वाहक को किया जाता है।
- चेक हमेशा चेक जारी करनेवाले के हस्ताक्षर से युक्त होते हैं। जब कोई व्यक्ति बैंक में अपना खाता खुलवाता है तो बैंक खाताधारी के नमूने के हस्ताक्षर अपने पास सुरक्षित रखता है। जब खाताधारी का चेक भुगतान के लिए बैंक काउंटर पर आता है तब चेक पर किए गए हस्ताक्षर का मिलान बैंक अपने पास सुरक्षित नमूने के हस्ताक्षर से करता है। जब दोनों हस्ताक्षर समान पाए जाते हैं तब बैंक चेक का भुगतान कर देता है। ☐

10

दहेज-हत्या और मानवाधिकार

वर्तमान काल में वधू-दहन के मामले बड़ी संख्या में घटित होते हैं। प्राचीन काल में विवाह के समय वधू पक्षवाले अपनी स्मृति के रूप में वर पक्ष को कुछ उपहार दिया करते थे। कालांतर में इस प्रथा ने हिंदू समाज में 'दहेज प्रथा' का रूप ले लिया। साधन-संपन्न लोगों ने इस प्रथा को चरम पर पहुँचाया है, क्योंकि वे लोग अपने बच्चों के शादी-विवाह बड़े ही शानो-शौकत से करते हैं। समाज के मध्यम एवं निम्न वर्ग इनसे प्रेरणा लेते हैं और फिर लड़कीवाले दहेज की इस आग में झुलस जाते हैं।

आजकल देखने में आता है कि लड़केवाले अपने परिवार की शान बढ़ाने एवं अपने बेरोजगार लड़के को कारोबार शुरू कराने के लिए लड़कीवालों को धन देने के लिए विवश करते हैं। इसके लिए लड़केवाले नववधू को प्रताड़ित करना शुरू करते हैं और अंत में वधू-दहन जैसा जघन्य अपराध कर बैठते हैं।

वधू-दहन जैसे अपराधों के कारण हमारे समाज में प्रसूति पूर्व लिंग परीक्षण तेजी से होने लगा है; क्योंकि माता-पिता नहीं चाहते कि उनके घर में कन्या का जन्म हो और फिर वे दहेज जैसे दुश्चक्र में फँसें।

भारत में बढ़ते भ्रूण परीक्षणों और गर्भ-हत्या के कारण लड़कियों की संख्या निरंतर कम हो रही है। लड़के और लड़कियों का सही अनुपात बनाए रखने के लिए और गर्भ-हत्या (कन्या भ्रूण-हत्या) को रोकने के लिए भारत सरकार ने सन् 1994 में प्रसूति पूर्व परीक्षण तकनीक विनियमन तथा दुरुपयोग (निवारण) अधिनियम 1994 पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार अजनमे भ्रूण का लिंग-परीक्षण केवल निम्न परिस्थितियों में ही करवाया जा सकता है—

- क्रोमोसोमल अनियमितता के लक्षण पाए जाने पर,
- हीमोग्लोबिन पोलियो होने की स्थिति में,
- सेक्स लिंग रोग की संभावना होने पर,

- कोजं जेनाइटल मेटाबोलिक रोग होने पर,
- जेनेटिक मेटाबोलिक रोग होने पर,
- अन्य किसी प्रकार की आशंका होने पर, जैसा कि केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा निर्धारित किया जाए।

इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कोई भी आनुवंशिक चिकित्सालय या स्वास्थ्य परामर्श केंद्र या उससे संबंधित व्यक्ति इस प्रकार की तकनीकी के बारे में प्रचार-प्रसार नहीं कर सकता है। यदि वह इस प्रकार का प्रचार-प्रसार करता पाया जाता है तो उसे तीन वर्ष के कारावास और 10 हजार रुपए के जुरमाने से दंडित किया जा सकता है। इस तकनीकी का दुरुपयोग करनेवाले डॉक्टर या वैद्य को चिकित्सा व्यवसाय करने से वंचित किया जा सकता है।

इस प्रकार का परीक्षण तब तक नहीं किया जा सकेगा जब तक कि उस महिला, जिस पर इस प्रकार की तकनीकी का प्रयोग किया जाना है, को इस आशय (परीक्षण की बाबत) की सूचना नहीं दी जाती है और उस औरत को इस परीक्षण के गुण-दोष भली-भाँति समझा नहीं दिए जाते हैं। इस प्रकार की सहमति उस महिला से लिखित में (उस भाषा में जिसे वह जानती व समझती है) लेना आवश्यक है। इस प्रकार की बात उसे संकेतों द्वारा भी समझाई जा सकती है।

देश में बढ़ती दहेज प्रथा को देखते हुए भारत सरकार ने सन् 1961 में इसको रोकने के लिए दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 पारित किया। इस अधिनियम में अनेक संशोधन भी किए गए। अब इसका नया नाम 'दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम 1994' है।

इस अधिनियम की धारा 2 के अनुसार, दहेज से कोई ऐसी मूल्यवान् संपत्ति अभिप्रेत है, जो विवाह के समय या उससे पहले या उसके बाद विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को या विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या अन्य व्यक्ति को (उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दी गई है या दिए जाने के लिए निश्चित (वचन देना) की गई है। अर्थात् विवाह के समय वर पक्ष को दिया जानेवाला (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) धन दहेज कहलाता है। यह स्वयं वधू द्वारा या उसके माता-पिता द्वारा या अन्य व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है, लेकिन इसमें निकाह की मेहर शामिल नहीं है।

इस अधिनियम की धारा 3 के अनुसार, दहेज लेना और देना दोनों ही अपराध हैं और इसके लिए पाँच वर्ष का कारावास तथा 15 हजार रुपए या दहेज के मूल्य

के बराबर (जो भी अधिक हो) जुरमाने से दंडित किए जाने का प्रावधान है। यह मूल धारा इस प्रकार है—

यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अंतर्गत प्रारंभ में या बाद में दहेज देगा या लेगा अथवा दहेज देने या लेने को दुष्प्रेरित (उकसाना) करेगा तो वह कारावास से, जिसकी अवधि पाँच वर्ष से कम की नहीं होगी और जुरमाने से, जो 15 हजार रुपए से या ऐसे दहेज के मूल्य की रकम से इनमें से जो भी अधिक हो, कम नहीं होगा, दंडनीय होगा। लेकिन विशेष कारण होने पर न्यायालय पाँच वर्ष से कम की सजा भी दे सकता है।

इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (i) के अनुसार, बिना माँग के वधू या वर को विवाह के समय दी जानेवाली भेंट पर यह धारा लागू नहीं होती है। लेकिन यह भेंट इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार बनाई गई सूची में दर्ज की जानी चाहिए।

इस अधिनियम की धारा 4 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति वधू या वर के माता-पिता या अन्य रिश्तेदार या संरक्षक से किसी प्रकार के दहेज की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में माँग करता है तो उसे छह माह से लेकर दो वर्ष तक के कारावास तथा 10 हजार रुपए के जुरमाने से दंडित किया जा सकता है। विशेष कारण होने पर न्यायालय छह माह से कम के कारावास की सजा भी दे सकता है।

यदि कोई व्यक्ति दहेज के लेन-देन का विज्ञापन करता है तो उसे छह माह से लेकर पाँच वर्ष तक का कारावास तथा 15 हजार रुपए के जुरमाने से दंडित किया जा सकता है। न्यायालय विशेष कारणों के आधार पर छह माह से कम का कारावास दे सकता है। इस अधिनियम की धारा 8 (2) के अनुसार, प्रत्येक अपराध गैर-जमानती एवं अशमनीय होगा।

भारत सरकार ने दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 की धारा 9 में प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए सन् 1985 में एक नियम बनाया, जिसका नाम 'दहेज प्रतिषेध (वर-वधू भेंट-सूची) नियम 1985' रखा गया। इस नियम के अनुसार विवाह के समय वर तथा वधू को जो भेंट दी जाएगी, उसकी एक सूची बनाई जाएगी। वर अपनी भेंट एवं उपहारों की सूची बनाएगा तथा वधू अपनी सूची बनाएगी। यह सूची विवाह के समय या विवाह के बाद शीघ्र ही लिखित रूप में तैयार की जानी चाहिए। इसमें निम्न बातें उल्लिखित करनी चाहिए—

(क) प्रत्येक भेंट का संक्षिप्त विवरण,

(ख) भेंट का अनुमानित मूल्य,

(ग) उस व्यक्ति का नाम जिसने भेंट दी है,

(घ) यदि भेंट देनेवाला रिश्तेदार है तो उसका विवरण।

यह सूची वर तथा वधू द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी।

धारा 7 के अनुसार, दहेज प्रताड़ना संबंधी शिकायत स्वयं पीड़िता या उसके माता-पिता या अन्य रिश्तेदार अथवा कोई मान्यता प्राप्त कल्याणकारी संस्था दर्ज करा सकती है। दहेज के मामलों की सुनवाई महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट करता है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 498 (क) के अनुसार, यदि कोई पति या पति का रिश्तेदार वधू के प्रति क्रूरता का व्यवहार करता है तो उसे तीन वर्ष के कारावास तथा जुरमाने से दंडित किया जाएगा। यहाँ क्रूरता का अर्थ है पति या उसके रिश्तेदार द्वारा जान-बूझकर कोई ऐसा आचरण करना जिससे पत्नी (स्त्री) आत्महत्या करने को विवश हो या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य (इसमें मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य शामिल है) को गंभीर खतरा पैदा होने की संभावना हो अथवा किसी औरत को इस मकसद से तंग और परेशान करना कि उसको या उसके किसी रिश्तेदार को किसी संपत्ति या मूल्यवान् प्रतिभूति की कोई माँग पूरी करने के लिए प्रताड़ित किया जाए या किसी औरत को इस कारण परेशान किया जाए कि उसका कोई नातेदार ऐसी माँग पूरी नहीं कर सका, जो उसने की थी। यह एक गैर-जमानती अपराध है।

वजीर चंद बनाम हरियाणा राज्य ए.आई.आर. 1989, एस.सी. 378 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अपनी पत्नी के प्रति पति द्वारा की गई क्रूरता धारा 398 (क) के अंतर्गत अपराध है। यदि पति का कोई रिश्तेदार (नातेदार) या संबंधी भी स्त्री के साथ क्रूरता करता है तो वह भी या वे भी इस धारा के अंतर्गत दंडित किए जा सकते हैं।

इस धारा के अनुसार किसी स्त्री को दहेज के लिए तंग करना या प्रताड़ित करना (कि उसके माता-पिता या रिश्तेदार या संरक्षक ने दहेज नहीं दिया) एक अपराध है या इस कारण पत्नी को परेशान करना कि उसके मायकेवालों ने उसकी (पति की) माँग को पूरा नहीं किया, भी एक अपराध है।

रवींद्र प्यारेलाल बिदलाल बनाम महाराष्ट्र राज्य 1993, क्रिमिनल लॉ जर्नल 3019 (मुंबई) के मामले में कहा गया कि हर प्रताड़ना क्रूरता नहीं है, न ही मूल्यवान् वस्तु या संपत्ति की माँग करना प्रताड़ना है, बल्कि निश्चित उद्देश्य के लिए की जानेवाली प्रताड़ना क्रूरता है।

समीर सामंत बनाम राज्य (1991), 3 क्राइम्स 209 (कोलकाता) के मामले में कहा गया कि दहेज की शेष राशि की माँग के लिए पत्नी को प्रताड़ित करना क्रूरता है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 113(क) के अनुसार किसी स्त्री द्वारा आत्महत्या करना उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित किया गया हो और यह दर्शित हो कि उसने अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के अंदर आत्महत्या की थी और यह कि उसे पति या उसके पति के ऐसे नातेदार ने उसके प्रति क्रूरता की थी, तो न्यायालय मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह धारणा बना सकेगा कि ऐसी आत्महत्या पति या उसके पति के नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित थी।

भारतीय दंड संहिता की धारा 304(ख) के अनुसार दहेज-हत्या करनेवाले व्यक्ति को सात वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक के दंड की व्यवस्था है। इस धारा के अनुसार, जहाँ किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा होती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु से पूर्व उसके पति ने या पति के किसी नातेदार ने, दहेज की माँग के लिए या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था, वहाँ ऐसी मृत्यु को दहेज-हत्या कहा जाएगा और ऐसे पति या नातेदार को उसकी मृत्यु का दोषी समझा जाएगा।

भारतीय दंड संहिता की धारा 304(ख) के अंतर्गत किसी महिला की मृत्यु को दहेज-मृत्यु साबित करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

- महिला की मृत्यु जलने या शारीरिक चोट या असामान्य परिस्थितियों में हुई हो,
- महिला की मृत्यु विवाह के सात वर्षों की अवधि में हुई हो,
- महिला के साथ उसके पति या पति के रिश्तेदार (नातेदार) द्वारा क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो,
- महिला को दहेज के लिए तंग किया गया हो,
- महिला के साथ ऐसी क्रूरता उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व की गई हो।

अकुल रवींद्र बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1142 के मामले में कहा गया कि दहेज-हत्या के मामले में 'असामान्य परिस्थितियों में मृत्यु होना' को सिद्ध करना (स्थापित करना) आवश्यक है, अन्यथा अभियुक्त दोष-मुक्ति का हकदार है।

श्रीमती शांति बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 226 के मामले में कहा गया कि कभी-कभी दहेज की माँग को लेकर स्त्री के साथ कई वर्षों तक क्रूरता का व्यवहार किया जाता है, जिससे विवश होकर वह आत्महत्या कर लेती है। ऐसा मामला दहेज-मृत्यु का मामला माना जाता है।

पब्लिक प्रॉसिक्यूटर, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय बनाम नरस बाई, 1995 क्रिमिनल लॉ जर्नल 704 (आंध्र प्रदेश) के मामले में कहा गया कि विवाह के सात वर्षों में मृत्यु होने पर भी यह साबित (स्थापित) नहीं होना कि उस स्त्री को तंग किया गया, तो ऐसे मामले को दहेज-मृत्यु का मामला नहीं माना जा सकता है।

अत: संक्षेप में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113(ख) के अनुसार, यदि किसी विवाहित स्त्री की दहेज-मृत्यु की जाती है या वह दहेज-मृत्यु कर लेती है और यह पाया जाता है कि उसकी मौत के पूर्व उसके साथ उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार ने क्रूरता की थी या तंग किया था, तो उसका पति या पति के ऐसे नातेदार को दहेज-मृत्यु का अपराधी माना जाएगा और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (ख) के अंतर्गत सात वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक की सजा दी जा सकती है। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाएँ न्याय पाने के लिए **राष्ट्रीय महिला आयोग, 4 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली**-110002 **से** संपर्क कर सकती हैं। **फैक्स-011-23236154, 011-23236270; e-mail:member_secretary @nationalcommission forwoman.org** पर अपनी शिकायत mail कर सकती हैं। **शिकायत प्रकोष्ठ के फोन नं.** 011-23222369 पर भी शिकायत दर्ज करवा सकती हैं। **अन्य फोन नं. हैं—011-23236153, 011-23237166।**

मानव अधिकार की परिभाषा देना सरल कार्य नहीं है। इसकी पूर्णरूपेण परिभाषा अभी तक नहीं बनी है। मानव अधिकार मानव गरिमा के साथ जुड़े हुए हैं। जो अधिकार मानव गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं उन्हें मानव अधिकार कहा जा सकता है। मानव अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि ये अधिकार मानव की गरिमा, स्वतंत्रता, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक और भौतिक कल्याण में सहायक सिद्ध होते हैं। मानव अधिकारों को प्राकृतिक अधिकार, जन्मजात अधिकार, मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार भी कहा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 1 में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों के वर्णन के साथ इसके परिच्छेद 3 में बताया गया है कि "संयुक्त राष्ट्र का उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानव कल्याण संबंधी अंतविधीय समस्याओं को हल

करने के लिए और मूल, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग उत्पन्न करेगा।''

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 20 नवंबर, 1989 को शिशु अधिकार अभिसमय को मान्यता प्रदान की। इस अभिसमय में अठारह वर्ष से कम आयुवाले प्रत्येक व्यक्ति को शिशु मानते हुए उसे निम्न अधिकार प्रदान किए हैं—

- जीवन, नाम तथा राष्ट्रीयता अर्जित करने का अधिकार।
- अपने माता-पिता को जानने तथा उनके द्वारा देखभाल किए जाने का अधिकार।
- विचार, अभिव्यक्ति, अंतरात्मा तथा धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार।
- संगम एवं शांतिपूर्ण सम्मेलन करने का अधिकार।
- शिक्षा का अधिकार।
- अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने माता-पिता से अलग न किए जाने का अधिकार।
- आर्थिक शोषण से तथा परिसंकटमय कार्य, नशाखोरी, अवैध व्यापार, यौन शोषण और यौन दुरुपयोग से संरक्षण का अधिकार।
- मानसिक एवं शारीरिक रूप से अपंग बच्चों को पूर्ण एवं शालीन जीवन जीने का अधिकार।

मानव अधिकार वह अधिकार है, जो मानव को मानव होने के नाते प्राप्त है। इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तथा इनका उपयोग करने के लिए मानव को किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है। यह अधिकार मानवमात्र को सहज प्राप्त है। यह अधिकार प्राप्त करते समय प्रजाति, धर्म, लिंग, रंग आदि का कोई महत्त्व नहीं होता है। भारतीय संविधान ने हमें अधिकांश मानव अधिकार प्रदान कर दिए हैं।

भारत में मानवाधिकारों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए हमारी संसद् ने सन् 1993 में 'मानव अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 1993' पारित किया। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय तथा राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया और उनको अनेक अधिकार प्रदान किए गए। राष्ट्रीय मानवाधिकार के निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं—

1. मानव अधिकारों की अभिवृद्धि तथा संरक्षण हेतु अन्य जरूरी कार्यकरना।
2. मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर-सरकारी संगठनों (NGO's) को प्रोत्साहित करना।

3. मानव अधिकारों के विषय में शोध-कार्य करना या करवाना।
4. यह उन सभी शिकायतों की जाँच स्वयं अथवा याचिका के आधार पर करता है, जो कि स्वयं पीड़ित के द्वारा अथवा उसके लिए किसी अन्य द्वारा की गई हो।

जिनमें—

(अ) मानव अधिकारों का उल्लंघन अथवा अतिक्रमण हुआ हो।

(ब) मामले में किसी लोक-सेवक ने उल्लंघन रोकने में लापरवाही बरती हो।

5. यह संबंधित न्यायालय की अनुमति से उन सभी मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है, जिसमें उस न्यायालय के समक्ष किसी मानव अधिकार उल्लंघन संबंधी आरोपों की जाँच या मुकदमा चल रहा हो।
6. यह राज्य सरकार को सूचित करके, राज्य सरकार के अधीन किसी भी कारागृह अथवा अन्य संस्था में जा सकता है, जहाँ व्यक्तियों को संरक्षण, सुधार, सजा के लिए रखा गया हो, जिससे उनके रहने की परिस्थितियों की जाँच की जा सके तथा उसपर यह अपनी अनुशंसाएँ दे सके।
7. मानव अधिकारों की सुरक्षा की बाबत संविधान अथवा अन्य किसी कानून के द्वारा प्रदत्त एवं लागू संरक्षण व्यवस्थाओं की यह पुन:परीक्षा कर सकता है तथा उनको प्रभावी रूप से लागू करने हेतु अनुशंसाएँ दे सकता है।
8. उन सब तत्त्वों की जाँच कर सकता है, जिनमें आतंकवादी काररवाइयाँ भी सम्मिलित हैं, जो कि मानव अधिकारों के उपयोग में बाधा डालते हैं। इनको दूर करने के सुझाव भी दे सकता है।
9. यह अंतरराष्ट्रीय संधियों तथा मानव अधिकारों से संबंधित अन्य व्यवस्थापनों एवं घोषणाओं का अध्ययन कर सकता है तथा उनके प्रभावी कार्यान्वयन हेतु सुझाव दे सकता है।
10. समाज के विभिन्न वर्गों में मानव अधिकार संबंधी शिक्षा के प्रसार का कार्य करता है। इन अधिकारों के संरक्षण हेतु प्राप्त सुरक्षा व्यवस्थाओं के बारे में यह जनसंचार के साधनों एवं सम्मेलनों आदि के माध्यम से प्रसार कर सकता है।

मानव अधिकारों के संरक्षण अधिनियम 1993 के अनुसार, राष्ट्रीय आयोग को एक सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। राष्ट्रीय आयोग को शिकायतों

की जाँच करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अंतर्गत प्राप्त शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

1. साक्षियों को बुलाना तथा उनकी उपस्थिति प्रवर्तित करना एवं शपथ पर उनकी परीक्षा करना।
2. आवश्यक दस्तावेज को खोजना एवं प्रस्तुत करना।
3. हलफनामों पर साक्ष्य प्राप्त करना।
4. किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक-अभिलेख (सार्वजनिक कागजात) या उनकी प्रति के लिए अधियाचना करना।
5. साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना।
6. अन्य कोई मामला, जो विहित किया जाए।

राष्ट्रीय आयोग किसी व्यक्ति से, किसी विशेषाधिकार के अधीन रहते हुए, जिसे उस व्यक्ति द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अंतर्गत क्लेम किया जाएगा, ऐसे बिंदुओं या मामलों पर सूचना प्रस्तुत करने के लिए कहने की शक्ति प्राप्त होगी तथा इस प्रकार की अपेक्षा किए गए व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता के अनुच्छेद 176 एवं 176 के अर्थांतर्गत ऐसी सूचना देने के लिए बाध्य हुआ समझा जाएगा।

आयोग या अन्य कोई अधिकारी, जो राजपत्रित अधिकारी (प्रथम ग्रेड) के नीचे की रैंक का नहीं होगा एवं जो आयोग द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से प्राधिकृत किया गया है, किसी ऐसे भवन या स्थान में प्रवेश करेगा जहाँ पर आयोग किन्हीं कारणों से यह विश्वास करता है कि जाँच के विषय से संबंधित कोई दस्तावेज पाया जा सकता है तथा दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 100, जहाँ तक वह लागू है, के उपबंधों के अधीन रहते हुए ऐसे दस्तावेज को प्राप्त कर सकेगा या उससे उद्धरण अथवा उसकी प्रतिलिपियाँ ले सकेगा।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के अंतर्गत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया। इस आयोग में एक अध्यक्ष तथा सात अन्य सदस्य होंगे। आयोग का अध्यक्ष वही व्यक्ति होगा, जो उच्चतम न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश रह चुका हो। आयोग में अन्य सात सदस्य इस प्रकार होंगे—

1. उच्चतम न्यायालय का कार्यरत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश।
2. उच्च न्यायालय का कार्यरत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश।
3. दो ऐसे सदस्य होंगे, जो मानव अधिकारों के बारे में एवं अधिकारों के विषयों से संबंधित क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से समुचित व्यावहारिक ज्ञान रखते हों।

4. आयोग के तीन सदस्य निम्न प्रकार से होंगे—
   (क) अल्पसंख्यक राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष।
   (ख) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष।
   (ग) राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष।

राज्य सरकार अपने राज्य में राज्य मानव अधिकार आयोग का गठन कर सकेगी। निम्नलिखित व्यक्ति इसके सदस्य होंगे—

1. राज्य मानव अधिकार आयोग का अध्यक्ष राज्य के मुख्य न्यायाधीश के पद पर कार्य कर चुका व्यक्ति होगा।
2. एक ऐसा व्यक्ति, जो कि राज्य के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो अथवा उस पद पर कार्य करने का अनुभव रखता हो।
3. एक ऐसा व्यक्ति, जो कि जिला जज हो अथवा जिला जज पद पर कार्यरत रहा हो।
4. ऐसे दो अन्य व्यक्ति, जो मानव अधिकार के बारे में विशेष एवं व्यक्तिगत अनुभव रखते हों।

मानव अधिकारों का हनन होने पर इस पते पर संपर्क किया सकता है—
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सरदार पटेल भवन, संसद् मार्ग, नई दिल्ली-110001, फैक्स—91-011-23340016, 23366537, 23344113; e-mail: (i) covdnhrc@nic.in (ii) ionhrc@nic.in—website : www.nhrc.nic.in. Telegraphic Address : HUMANRIGHT

□

11

यातायात चालान और दुर्घटना

प्रत्येक व्यक्ति को यातायात नियमों की जानकारी रखना आवश्यक है। भारत में यातायात-नियंत्रण 'मोटरयान अधिनियम 1988' के द्वारा होता है। इस अधिनियम की धारा 3 के अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहन तभी चला सकता है जब उसके पास उसके नाम से प्रभावी चालन-अनुज्ञप्ति हो।

धारा 4 के अनुसार वाहन चलाने की आयु इस प्रकार है—

1. अठारह वर्ष से कम आयु का व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थल पर वाहन नहीं चला सकता है।
2. सोलह वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थल पर बिना गियरवाली मोटरसाइकिल चला सकता है।
3. बीस वर्ष से कम आयुवाला व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थल पर परिवहन वाहन नहीं चला सकता है।
4. किसी व्यक्ति को ड्राइविंग लाइसेंस उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही दिया जा सकेगा।

इस अधिनियम की धारा 5 के अनुसार किसी वाहन का मालिक धारा 3 व धारा 4 का उल्लंघन करनेवाले व्यक्ति से अपना वाहन नहीं चलवा सकता है। धारा 6(2) के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने लाइसेंस को किसी अन्य व्यक्ति को प्रयोग करने के लिए नहीं दे सकता है।

इस अधिनियम की धारा 7 के अनुसार शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति (Learner's Licence) निम्न प्रकार जारी किए जाते हैं—

1. किसी व्यक्ति को भारी मालवाहन चलाने का लर्निंग लाइसेंस तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि उसके पास हलका मोटरयान चलाने का कम-से-कम दो वर्ष का या मध्यम मालवाहन चलाने का कम-से-कम एक वर्ष तक का ड्राइविंग लाइसेंस न हो।

2. इसी प्रकार किसी व्यक्ति को भारी यात्री गाड़ी चलाने का लर्निंग लाइसेंस तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि उसके पास हलका मोटरवाहन चलाने का कम-से-कम दो वर्ष या मध्यम यात्री मोटर वाहन चलाने का कम-से-कम एक वर्ष का ड्राइविंग लाइसेंस न हो।
3. मध्यम माल या मध्यम यात्री मोटरगाड़ी चलाने के लिए लर्निंग लाइसेंस तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि उसके पास हलकी मोटरगाड़ी चलाने का कम-से-कम एक वर्ष तक का ड्राइविंग लाइसेंस न हो।

अधिनियम की धारा 7(2) के अनुसार अठारह वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को बिना गियरवाली मोटरसाइकिल चलाने का लर्निंग लाइसेंस उस व्यक्ति की देख-रेख करनेवाले व्यक्ति की लिखित सहमति से ही दिया जा सकेगा।

अधिनियम की धारा 9 के अनुसार निम्नलिखित कारणों से ड्राइविंग लाइसेंस जारी नहीं किया जा सकता—

1. यदि वह व्यक्ति चालन-सक्षमता में उत्तीर्ण नहीं हो पाता है। या
2. यदि वह व्यक्ति किसी ऐसे रोग या अशक्तता से ग्रस्त हो कि उस व्यक्ति द्वारा मोटरसाइकिल या हलके मोटरवाहन का चालन जनता के लिए खतरनाक हो। या
3. यदि वह व्यक्ति आदतन अपराधी है। या
4. यदि वह व्यक्ति शराब पीने का आदी है। या
5. यदि वह व्यक्ति नशीले पदार्थों के सेवन या मन:प्रभावी पदार्थ लेने का आदी है। या
6. यदि उसका लाइसेंस पहले कभी निरस्त कर दिया गया हो।

इस अधिनियम की धारा 19 के अनुसार अनुज्ञापन प्राधिकारी उपर्युक्त कारणों के आधार पर किसी व्यक्ति का ड्राइविंग लाइसेंस खारिज कर सकता है।

मोटर वाहन अधिनियम 1988 के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं—

धारा 112—कोई भी व्यक्ति किसी मोटर वाहन को सार्वजनिक स्थलों पर उस वाहन की निर्धारित गति के अनुसार ही चलाएगा।

धारा 113—कोई भी व्यक्ति किसी मोटर वाहन में उतना ही माल लदान करेगा जितने का उसे परमिट दिया गया है।

धारा 114—यदि कोई व्यक्ति अपने वाहन के भार-परमिट से ज्यादा माल भरता है तो इस बाबत नियुक्त अधिकारी उस वाहन को तौलवा सकता है तथा

परमिट से ज्यादा माल को उतरवा सकता है।

धारा 119—प्रत्येक मोटर वाहन चालक को यातायात संकेतों का पालन करना आवश्यक है।

धारा 120—कोई भी व्यक्ति बाईं ओर के स्टीयरिंग नियंत्रणवाले ऐसे किसी मोटरयान को सार्वजनिक स्थल पर तभी चलाएगा अथवा चलवाएगा या चलाने देगा, जब उसमें तयशुदा यांत्रिक या विद्युत् संकेतन-युक्ति लगी हुई हो और वह चालू हालत में हो।

धारा 121—किसी मोटरयान का चालक मार्ग में चलते समय आवश्यकतानुसार बाएँ-दाएँ मुड़ने के संकेत देगा।

धारा 122—किसी भी मोटर वाहन का भारसाधक व्यक्ति अपने वाहन को किसी सार्वजनिक स्थान पर न तो ऐसी स्थिति में, न ही ऐसी हालत में, न ही ऐसी परिस्थितियों में छोड़ेगा या रहने देगा अथवा छोड़ने या रहने की अनुमति देगा, जिससे सार्वजनिक स्थान का उपयोग करनेवाले अन्य व्यक्तियों या यात्रियों को खतरा, बाधा या असुविधा हो या होने की संभावना हो।

धारा 123—किसी मोटरयान का ड्राइवर या भारसाधक किसी भी व्यक्ति को न तो रनिंग बोर्ड पर, न ही बोनेट पर और न ही छत पर बैठाएगा तथा न ही ऐसा करने की अनुमति देगा।

धारा 125—किसी मोटर वाहन का चालक किसी व्यक्ति को न तो ऐसे स्थान पर खड़ा करेगा या बैठाएगा या कोई सामान रखवाएगा, जिससे उसको वाहन पर नियंत्रण रखने में असुविधा होती हो।

धारा 127—यदि कोई वाहन किसी सार्वजनिक स्थल पर दस घंटे तक या अधिक समय से लावारिस खड़ा है तो अधिकार प्राप्त पुलिस अधिकारी उस वाहन को वहाँ से हटा सकता है। जहाँ कहीं कोई लावारिस, अकेला छोड़ा गया, टूटा हुआ, जला हुआ, आंशिक रूप से खुला हुआ वाहन यातायात में संकट पैदा कर रहा है तो पुलिस अधिकारी उस वाहन को तुरंत राजमार्ग से हटवा देगा। इस प्रकार से हटाए गए वाहन का मालिक सभी खर्चों और दंड के लिए उत्तरदायी होगा।

धारा 129—राज्य सरकार के नियमों के अनुसार सिख संप्रदाय को छोड़कर शेष सभी नागरिकों को दो पहिया वाहन या निर्धारित वर्ग के वाहन चलाते समय सिर पर हेलमेट लगाना आवश्यक है।

धारा 130—किसी सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का चालक वरदी पहने हुए पुलिस अधिकारी द्वारा ड्राइविंग लाइसेंस माँगने पर उसे दिखाने के लिए

बाध्य होगा। इसी प्रकार मोटर वाहन का कंडक्टर एवं मालिक माँग किए जाने पर मोटर वाहन रजिस्ट्रीकरण प्रमाण-पत्र, बीमा प्रमाण-पत्र, गाड़ी ठीक हालत में होने का प्रमाण-पत्र, परमिट भी दिखाने के लिए बाध्य होंगे।

धारा 132—वाहन चालक को निम्न स्थितियों में वाहन को रोकना होगा—

- वरदी पहने हुए पुलिस अधिकारी द्वारा रुकने का संकेत करने पर।
- पशु (घोड़ा, हाथी, ऊँट, गधा, खच्चर, भेड़, बकरी) के मालिक द्वारा संकेत करने पर कि उसका पशु वाहन से डरकर अनियंत्रित हो गया है।
- दुर्घटना होने पर।

आवश्यक होने पर चालक को अपना नाम व पता भी बताना होगा।

धारा 177—इस अधिनियम के नियमों का उल्लंघन (जिनमें किसी दंड का प्रावधान नहीं है) करने पर प्रथम बार 100 रुपए तथा अपराध की पुनरावृत्ति करने पर 300 रुपए का दंड दिया जा सकेगा।

धारा 178—किसी मोटर गाड़ी में रियायती पास या टिकट के बिना यात्रा करनेवाले व्यक्ति को 500 रुपए के जुरमाने से दंडित किया जाएगा।

धारा 180—यदि कोई वाहन मालिक या वाहन का भारसाधक अपने वाहन को किसी अप्राधिकृत (जो व्यक्ति धारा 3 व 4 के प्रावधानों को पूरा नहीं करता हो) व्यक्ति से चलवाएगा तो वह तीन माह के कारावास या 1000 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 181—यदि कोई व्यक्ति धारा 3 व 4 का उल्लंघन करके किसी मोटर वाहन को चलाता है तो उसे तीन माह के कारावास या 500 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 183—निर्धारित गति से अधिक गति पर वाहन चलानेवाले व्यक्ति को प्रथम बार 400 रुपए तथा अपराध की पुनरावृत्ति होने पर 1000 रुपए तक के जुरमाने से दंडित किया जाएगा।

धारा 184—खतरनाक तरीके से वाहन चलानेवाले व्यक्ति को पहली बार 6 माह के कारावास या 1000 रुपए के जुरमाने से दंडित किया जाएगा। यदि वह तीन वर्ष के भीतर अपराध की पुनरावृत्ति करता है तो दो वर्ष का कारावास या 2000 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 185—मादक पदार्थों (शराब आदि) का सेवन करके वाहन चलानेवाले व्यक्ति को प्रथम बार अपराध करने पर छह माह के कारावास या 2000 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा। तीन वर्ष के अंदर दूसरी बार अपराध

करने पर दो वर्ष का कारावास या 3000 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 186—मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांग होने की स्थिति में वाहन वाहन चलाने पर, उस व्यक्ति को प्रथम बार अपराध करने पर 200 रुपए के जुरमाने तथा दूसरी बार अपराध करने पर 500 रुपए के जुरमाने से दंडित किया जाएगा।

धारा 187—यदि कोई व्यक्ति धारा 132, 133, 134 के प्रावधानों का पालन नहीं करता है तो प्रथम बार दोषी पाए जाने पर तीन माह के कारावास या 500 रुपए के जुरमाने या दोनों से दंडित किया जाएगा। अपराध की पुनरावृत्ति करने पर छह माह के कारावास या 1000 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 188—यदि कोई व्यक्ति किसी को धारा 184, 185, 186 का उल्लंघन करने के लिए दुष्प्रेरित करता है तो उसे भी उन्हीं अपराधों के दंडों से दंडित किया जाएगा।

धारा 189—राज्य सरकार की लिखित अनुमति के बिना किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहनों की दौड़ के आयोजक या भाग लेनेवाले व्यक्तियों को एक माह के कारावास या 500 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 196—यदि कोई व्यक्ति (धारा 146 के प्रावधानों का उल्लंघन करके) बीमा न किए गए वाहन को चलाएगा या चलवाएगा या चलाने देगा तो उसे तीन माह के कारावास या 1000 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 197—वाहन मालिक की सहमति के बिना वाहन चलानेवाले व्यक्ति को तीन माह के कारावास या 500 रुपए के जुरमाने अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा। इस धारा में मालिक की सहमति के बिना वाहन को ले जाना भी अपराध है।

धारा 202—यदि कोई व्यक्ति किसी वरदीधारी पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में धारा 184, 185 और 197 के अधीन कोई अपराध करता है तो उसे बिना वारंट के गिरफ्तार किया जा सकता है।

□

12

सड़क दुर्घटना मुआवजा

वर्तमान में बढ़ती वाहन दुर्घटनाओं को देखते हुए प्रत्येक नागरिक को मोटर वाहन दुर्घटना अधिनियम 1988 की जानकारी होना आवश्यक है; क्योंकि सड़कों पर बढ़ते यातायात को देखते हुए यह अनुमान लगाना बड़ा ही मुश्किल है कि अगले पल क्या हो जाएगा!

सड़क दुर्घटना के मृतक के वारिस तथा घायल व्यक्ति मोटर वाहन दुर्घटना अधिनियम 1988 के अधीन क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए दावा प्राधिकरण में अपना दावा प्रस्तुत कर सकते हैं। इस आवेदन के साथ निम्नलिखित कागजातों की आवश्यकता होती है—

- दुर्घटना की पुलिस रिपोर्ट (एफ.आई.आर.),
- दुर्घटना का विवरण, समय, स्थान आदि के दस्तावेज,
- घायल व्यक्ति के चिकित्सा प्रमाण-पत्र,
- मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट,
- उपचार परची,
- दवा के बिल,
- यात्रा व्यय के दस्तावेज,
- मृतक की आय,
- मृतक की आय में (भविष्य में यदि वह जीवित होता तो) संभावित वृद्धि करनेवाली तकनीकी योग्यता।

वर्तमान में हुए संशोधनों के अनुसार दुर्घटना क्षतिपूर्ति का दावा कहीं पर भी और कभी भी किया जा सकता है। यह अधिनियम क्षतिपूर्ति की राशि वाहन चालक, वाहन बीमा कंपनी तथा वाहन स्वामी से मृतक के वारिस को तथा घायलों को दिलवाता है।

दावा प्राधिकरण में निम्नलिखित व्यक्ति क्षतिपूर्ति का दावा कर सकते हैं—

- घायल व्यक्ति,

- मृतक के आश्रित एवं वारिस,
- संपत्ति का स्वामी (यदि दुर्घटना में किसी प्रकार की संपत्ति नष्ट हुई हो तो—धारा 166 के अधीन),
- विधिक प्रतिनिधि।

अधिनियम की धारा 166 के अनुसार, यदि सड़क दुर्घटना में किसी व्यक्ति को साधारण चोट लगती है तो वह चोट की प्रकृति के अनुसार हरजाना प्राप्त कर सकेगा।

अधिनियम की धारा 162 के अनुसार, जब वाहन टक्कर मारकर लापता हो जाता है तो मृतक के वारिस को 8,500 रुपए तथा स्थायी रूप से विकलांग हुए व्यक्ति को 2000 रुपए की क्षतिपूर्ति सोलेटियम फंड से दिए जाने का प्रावधान है। इस अधिनियम के अंतर्गत जब वादकर्ता को बीमा कंपनी या अन्य से हरजाना मिल जाता है तब उक्त रकम (8,500 रुपए और 2000 रुपए) वापस सोलेटियम फंड में जमा करानी होती है।

यदि दुर्घटना वाहन चालक की गलती के बिना ही घटित हो जाती है तो मृतक के वारिस को 50 हजार रुपए तथा स्थायी रूप से विकलांग हुए व्यक्तियों को 25 हजार रुपए मिलते हैं। यदि दुर्घटना चालक की उपेक्षा और लापरवाही के कारण होती है तो हरजाने की रकम ज्यादा मिलती है तथा इसका निर्धारण आयु, पद, परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर किया जाता है।

□

13

जनहित याचिका

जनहित याचिका का अर्थ ऐसी याचिका से है, जिससे आम नागरिक का हित जुड़ा हो। जनहित याचिका में जनसाधारण का हित छुपा होता है। ये ऐसे मुकदमे एवं मुद्दे होते हैं, जिनको आम व्यक्ति (साधनों, समय, धन के अभाव के कारण) व्यक्तिगत स्तर पर नहीं उठा पाता है।

भारतीय रेलवे शोषित कर्मचारी संघ बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 298 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि किसी सार्वजनिक हित के संरक्षण के लिए किसी न्यायालय में लाया गया वाद 'जनहित वाद' कहलाता है।

एस.सी. गुप्ता और अन्य बनाम राष्ट्रपति और अन्य, ए.आई.आर. 1982, एस.सी. 149 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति या समाज का वर्ग, जिसको कोई विधिक (कानूनी) क्षति पहुँचाई गई है या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है, अपनी निर्धनता अथवा किसी अन्य कारण से अपने संवैधानिक या विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय में जाने में असमर्थ है, तो समाज का कोई अन्य व्यक्ति संघ न्यायालय में उसको पहुँची विधिक क्षति के निवारण के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन कर सकता है। उपर्युक्त परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति पत्र लिखकर भी उच्चतम न्यायालय से समाधान की माँग कर सकता है। उसके लिए रिट-पिटीशन की तकनीकी बारीकियों का पालन करना आवश्यक नहीं होगा। प्रक्रियात्मक तकनीकियाँ न्यायालय द्वारा ऐसे पीड़ित व्यक्तियों को न्याय प्रदान करने के मार्ग में अवरोध नहीं बन सकतीं; किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि कोई व्यक्ति न्यायालय की इस उदारता का अनुचित लाभ उठाए। प्रत्येक मामले में न्यायालय समाधान तभी देगा जब उसे विश्वास हो जाए कि उसके समक्ष आनेवाले व्यक्ति का पर्याप्त हित है और वह दुर्भावना से अथवा राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर रिट अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर रहा है।

उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश श्री कृष्णा अय्यर ने लोकहित वाद को वर्ग काररवाई (Class Action), लोकहित में काररवाई, प्रतिनिधित्ववाद आदि की संज्ञा दी।

जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी, ए.आई.आर. (1992) एस.सी. 305 के मामले में विद्वान् न्यायाधीश श्री पांडियन ने 'लोकहित' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि लोकहित वाद लोकहित के प्रवर्तन के लिए किसी विधि के न्यायालय में शुरू की गई वह काररवाई है, जिसमें सामान्य जन या किसी समुदाय विशेष का हित निहित होता है और जिसके द्वारा उनके विधिक अधिकार एवं दायित्व प्रभावित होते हैं।

लोकहित वाद इस अवधारणा का अपवाद है कि अधिकारिता के कारण न्यायालय में केवल वही व्यक्ति क्षतिपूर्ति हेतु प्रार्थना कर सकता है जिसके अधिकारों का हनन हुआ हो।

लोकहित वाद की विशेषताएँ एवं सीमाएँ

1. लोकहित वाद का सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अधीन की गई रिटों पर ही लागू होता है।

2. लोकहित वाद द्वारा न्यायालय राज्य सरकार के दैनिक कार्यों में बाधा नहीं डाल सकता है।

3. लोकहित वाद द्वारा न्यायालय राज्य की नीति के प्रश्न पर निर्देश नहीं दे सकता है।

4. लोकहित वाद में राज्य सरकार या केंद्र सरकार के अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों के खिलाफ काररवाई की प्रार्थना की जाती है।

5. जनहित याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 व 226 के अधीन क्रमश: उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में दायर की जा सकती है।

6. जनहित याचिका किसी भी व्यक्ति, वर्ग, समूह, संस्था, जाति, पत्र द्वारा दायर की जा सकती है।

7. जनहित याचिका संविधान के अनुच्छेद 51(ए) में एक नागरिक के किसी मूल कर्तव्य के प्रवर्तन के लिए प्रस्तुत नहीं की जा सकती है।

8. जो मामले न्यायिक व्यवहार प्रक्रिया द्वारा निपटाए जा सकते हैं उनको लोकहित याचिका द्वारा नहीं निपटाया जा सकता है।

9. जनहित याचिका में व्यक्तिगत तथा ऐसे मामले नहीं उठाए जा सकते हैं, जो जनहित के न हों।

10. जनहित याचिका में प्रशासन संबंधी मामले नहीं चलाए जा सकते हैं।

11. पुलिस, जाँच आयोग, सी.बी.आई. की जाँच-पड़ताल चल रहे मामलों को जनहित याचिका में नहीं उठाया जा सकता है।

12. जन-भावना से प्रेरित व्यक्ति जनहित याचिका दायर कर सकता है।

13. लोकहित वाद द्विपक्षीय विरोधी विवाद नहीं माना जाता है।

14. लोकहित याचिका में ऐसे मामले नहीं चलाए जा सकते हैं, जो पहले से ही विचारणीय हों।

□

(14)

भरण-पोषण का अधिकार और महिला आयोग

भारतीय समाज पुरुष-प्रधान है। हमारे समाज में पत्नी, बच्चों एवं वृद्ध माता- पिता की सुरक्षा का दायित्व पति का होता है। पति को पत्नी तथा बच्चों का संरक्षक माना जाता है। परिवार की समस्त संपत्ति (स्त्री-धन को छोड़कर) पुरुष के नाम होती है। भारत में पत्नी तथा बच्चों का पालन-पोषण करना पति का केवल सामाजिक दायित्व ही नहीं, बल्कि कानूनी दायित्व भी है।

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 के अनुसार निम्नलिखित महिलाएँ, बच्चे, माता-पिता क्रमश: अपने पति, पिता, पुत्र से भरण-पोषण की माँग कर सकते हैं—

1. ऐसी पत्नी, जो अपना भरण-पोषण नहीं कर सकती है, अपने पति से भरण-पोषण (गुजारा भत्ता, जीवन-निर्वाह खर्च) की माँग कर सकती है।
2. कोई भी विवाहित स्त्री (उपर्युक्त शर्त (1) के अनुसार) अपने पति से भरण-पोषण की माँग कर सकती है।
3. अवयस्क संतान (विवाहित एवं अविवाहित) अपने पिता से भरण-पोषण की माँग कर सकती है। यहाँ पर 'संतान' शब्द में पुत्र, पुत्री, दत्तक पुत्र एवं पुत्री शामिल हैं।
4. शारीरिक एवं मानसिक रूप से असक्षम बच्चे अपने पिता से भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी हैं।
5. अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ वृद्ध माता-पिता अपने पुत्र (पुत्रों) से भरण-पोषण की माँग कर सकते हैं।

अपना भरण-पोषण करने में समर्थ पत्नी अपने पति से भरण-पोषण की माँग नहीं कर सकती है। पत्नी ने यदि आपसी सहमति से अपने पति से तलाक ले लिया हो तो वह अपने भरण-पोषण की माँग की अधिकारिणी नहीं होती है। अपना

भरण–पोषण कर सकनेवाली पत्नी के विवाद में उच्चतम न्यायालय ने कई महत्त्वपूर्ण फैसले दिए हैं। उर्मिला दास के महत्त्वपूर्ण मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पत्नी का पति से भरण–पोषण प्राप्त करने का आवेदन केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि आवेदक (पत्नी) मजदूरी करके अपना भरण–पोषण कर रही है। यदि कोई पत्नी परेशानी में शरण के लिए दूसरे पर आश्रित रहती है या अपनी भूख मिटाने के लिए मजदूरी करती है अथवा अन्य कोई कार्य करती है तो उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपना भरण–पोषण करने में समर्थ है।

इसी प्रकार धारा 125 के अनुसार, कोई पत्नी (तलाक के बाद) तब तक अपने पति से गुजारा–भत्ता ले सकती है जब तक वह दूसरी शादी नहीं कर लेती। एक मामले में उच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि पत्नी अपने पति से भरण–पोषण का दावा विवाह विघटन के बाद भी कर सकती है, चाहे उसने प्रत्यस्थापन की डिक्री का पालन करने से इनकार कर दिया हो। वह पति से तब तक भरण–पोषण पाने की अधिकारिणी होगी जब तक वह दूसरा विवाह नहीं कर लेती है।

यदि कोई पत्नी (हिंदू) अकारण अपने पति के साथ रहने से इनकार करती है तो वह अपने पति से भरण–पोषण प्राप्त नहीं कर सकती है।

जब पति और पत्नी के विवाह–विच्छेद का मामला न्यायालय में विचारणीय होता है तो न्यायालय पत्नी के गुजारे के लिए अंतरिम भरण–पोषण की व्यवस्था करता है। ऐसी ही व्यवस्था इदरीस अली बनाम रेशमा खातून और अन्य, ए.आई.आर. 1998, गुवाहाटी 24 के मामले में भी की गई।

अपना भरण–पोषण करने में असमर्थ माता–पिता अपनी वयस्क संतान से भरण–पोषण की माँग कर सकते हैं। इसके लिए वे न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी की अदालत में आवेदन कर सकते हैं। अदालत अपने विवेकानुसार वृद्ध माता–पिता के लिए भरण–पोषण की रकम तय करती है; लेकिन सौतेली संतान से इस धारा के अंतर्गत भरण–पोषण की माँग नहीं की जा सकती है। सरजू प्रसाद बनाम श्रीमती दमयंती और अन्य नि.प. 1984, इलाहाबाद 458 के मामले में न्यायालय ने कहा कि सौतेली माँ अपने पुत्रों से किसी भी प्रकार का भरण–पोषण प्राप्त नहीं कर सकती है, चाहे उसने अपने सौतेले पुत्रों का प्रारंभ से ही लालन–पालन किया हो।

महिलाओं को संवैधानिक अधिकार दिलवाने के लिए एवं उनकी सामाजिक सुरक्षा के लिए 31 जनवरी, 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। राष्ट्रीय महिला आयोग में केंद्र सरकार द्वारा नामित एक अध्यक्ष (वर्तमान में सुश्री गिरिजा व्यास हैं) और पाँच सदस्यों के अतिरिक्त एक अन्य सदस्य 'सचिव' होते

हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग को सिविल न्यायालय की भाँति परीक्षण एवं जाँच करने के अधिकार प्रदान किए गए हैं। इसी तर्ज पर प्रत्येक राज्य में राज्य महिला आयोग की स्थापना का प्रावधान है। राज्य महिला आयोग राष्ट्रीय महिला आयोग के उद्देश्यों को पूरा करने में अपना भरपूर सहयोग प्रदान करता है। यह राज्य विशेष की महिलाओं को सुरक्षा उपलब्ध कराता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग केवल महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करता है। यह एक मित्र, सहेली, परामर्शदाता और शिक्षक की भाँति कार्य करता है। महिला आयोग निम्न प्रकार से महिलाओं की सहायता करता है—

- सरकार द्वारा महिलाओं के कल्याण के लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों और योजनाओं का प्रचार-प्रसार करना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए महिला आयोग प्रत्येक संभाग स्तर पर नेटवर्क की स्थापना करता है। इसमें 20-40 सदस्यों को नियुक्त किया जाता है। सरकारी योजनाओं के प्रचार-प्रसार में महिला एवं बाल विकास विभाग के कार्यकर्ता (जैसे आँगनबाड़ी) सहयोग प्रदान करते हैं। महिला आयोग प्रत्येक ब्लॉक स्तर पर महिला और बच्चों की नि:शुल्क चिकित्सा एवं सामाजिक चेतना जगाने के लिए शिविरों का आयोजन करता है।
- महिला आयोग महिलाओं की शिक्षा के लिए स्कूल, कॉलेज, स्वास्थ्य के लिए अस्पताल, पुनर्वास केंद्र, प्रशिक्षण केंद्र इत्यादि की स्थापना के लिए प्रयास करता है।
- आदिवासी एवं ग्रामीण इलाकों में बेसहारा एवं पीड़ित महिलाओं के लिए आयोग संवेदनशील होकर उनके पुनर्वास की कोशिश करता है, चाहे वे महिलाएँ घर, जेल या अस्पताल में हैं।
- महिला आयोग महिला सहायता प्रणाली से हर स्तर पर प्रताड़ित (घरेलू हिंसा या अन्य हिंसा से) महिलाओं को सहायता प्रदान करता है; जैसे— यदि पुलिस थानेवाले पीड़ित महिला की शिकायत दर्ज नहीं कर रहे हैं तो आयोग हस्तक्षेप कर सकता है। इस प्रकार के विवादित मामलों में विशेष जाँच के आदेश दे सकता है या जाँच समिति का गठन कर जाँच करवा सकता है।
- महिला आयोग महिला कानूनों [उदाहरण—दहेज प्रतिरोध अधिनियम, सीआर.पी.सी. धारा 125, अनैतिक देह-व्यापार (अवरोधक) अधिनियम, बाल विवाह (अवरोधक) अधिनियम, सती प्रथा (निवारण) अधिनियम,

प्रसव पूर्व तकनीकी निदान (अवरोधक) अधिनियम] को प्रभावी ढंग से लागू करवाने के लिए तथा उनमें संशोधन करवाने के लिए सरकार से सिफारिश करता है।

- किशोरियों को पारिवारिक स्वास्थ्य (इसमें यौन रोग, जैसे एड्स आदि शामिल हैं) की जानकारी भी महिला आयोग उपलब्ध कराता है।
- कामकाजी महिलाओं के साथ कार्यस्थलों (कार्यालयों) पर होनेवाले दुर्व्यवहार, यौन शोषण, प्रताड़ना को रोकने के लिए महिला आयोग प्रभावी कदम उठाता है तथा पीड़िता को न्याय दिलाने के लिए सरकार पर दबाव बनाता है। महिला आयोग प्रयास करता है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णयों एवं दिशा-निर्देशों का पालन भली-भाँति हो।
- महिला आयोग मीडिया (प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक) की सहायता से मानव अधिकारों, स्त्री की गरिमा, महिला नीति की सुरक्षा के लिए समाज में बड़ी गंभीरता से कार्य करता है।

महिला आयोग को सिविल न्यायालय के समान ही निम्नलिखित शक्तियाँ प्रदान की गई हैं—

- महिला आयोग संबंधित मामले की जाँच करते समय गवाह को बुलाकर पूछताछ कर सकता है।
- महिला आयोग शपथ-पत्र पर साक्ष्य प्राप्त कर सकता है।
- महिला आयोग किसी व्यक्ति को (उसके समक्ष) उपस्थित होने के लिए बाध्य कर सकता है।
- महिला आयोग के समक्ष की गई प्रत्येक काररवाई न्यायिक प्रकृति की होती है।
- किसी सार्वजनिक दस्तावेज या उसकी प्रति किसी कार्यालय या न्यायालय से प्राप्त करने में महिला आयोग सक्षम है।
- महिला आयोग पारिवारिक मामलों को निपटाने के लिए पारिवारिक महिला लोक अदालत का आयोजन भी कर सकता है।

पीड़िता अपनी शिकायत अपने पूर्ण पते के साथ डाक या फैक्स द्वारा निम्नलिखित पते पर दर्ज करवा सकती है—**राष्ट्रीय महिला आयोग, 4 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002, फैक्स : 011-23236154, 011-23236270** इसके अलावा महिला व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर भी अपनी शिकायत दर्ज करवा सकती है। यह शिकायत पीड़िता के रिश्ते-नातेदार भी दर्ज

करवा सकते हैं। कई बार मीडिया द्वारा उठाए गए किसी ऐसे मामले में यदि महिला आयोग महसूस करता है कि मामला उसके अधिकार–क्षेत्र का है तो आयोग स्वयं भी काररवाई प्रारंभ कर सकता है। पहले से न्यायालय में चलनेवाले या एक वर्ष से अधिक पुराने मामलों की जाँच महिला आयोग नहीं करता है।

महिला आयोग में शिकायत दर्ज कराते समय शिकायती–पत्र पर शिकायत करनेवाली महिला के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। यदि प्रताड़ना से उस महिला की मृत्यु हो चुकी है तो उसके माता या पिता के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। शिकायत में आवेदनकर्ता का पता सुस्पष्ट अक्षरों में लिखा जाना चाहिए। आप अपनी शिकायत हिंदी या अंग्रेजी भाषा में दर्ज (लिखित में) करवा सकती हैं। महिला आयोग एक वर्ष पुरानी घटनाओं को दर्ज नहीं करता है। झूठे और जालसाज मामले भी दर्ज नहीं किए जाते हैं।

महिला आयोग में एक निराकरण बेंच (पीठ) होती है, जो कि शिकायत का निराकरण करती है। आयोग मामले पर अपनी सिफारिश संबंधित विभाग को भेजता है और शिकायतकर्ता को उसकी एक प्रति दी जाती है। आयोग की काररवाई से असंतुष्ट महिला न्यायालय में भी जा सकती है। आर्थिक रूप से कमजोर महिला को आयोग न्यायालय में मामला चलाने के लिए सहायता प्रदान करता है। आयोग संबंधित मामले पर कानूनी विशेषज्ञों की सहायता भी लेता है।

□

15

कोर्ट मैरिज

कोई भारतीय लड़का, जिसने इक्कीस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो तथा कोई भी लड़की, जिसने अठारह वर्ष की आयु पूरी कर ली हो, विवाह कर सकते हैं। विवाह करते समय दोनों पक्षकारों को निम्नलिखित शर्तें पूरी करना आवश्यक है—

- विवाह के समय लड़के की कोई (जीवित) पत्नी नहीं होनी चाहिए।
- विवाह के समय लड़की का कोई (जीवित) पति नहीं होना चाहिए।
- दोनों मानसिक रूप से स्वस्थ होने चाहिए।
- दोनों पक्षकार भारतीय नागरिक होने चाहिए।

विशेष विवाह अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, विवाह के तीस दिन पहले जिला कलक्टर के कार्यालय में इस आशय का एक आवेदन करना होगा। आवेदन करते समय दोनों पक्षकारों (लड़का एवं लड़की) को विवाह अधिकारी के कार्यालय में उपस्थित होना होगा। इस आवेदन के नब्बे दिन तक कभी भी 7 रुपए का विवाह शुल्क जमा करवाकर विवाह किया जा सकता है। आवेदन पाँच प्रतियों में प्रस्तुत करना चाहिए। आवेदन के साथ 10-10 रुपए के दो स्टांप पेपर पर शपथ-पत्र प्रस्तुत करना होगा। शपथ-पत्र नोटरी पब्लिक से प्रमाणित होना चाहिए। विवाह आवेदन के साथ आयु का प्रमाण-पत्र एवं शैक्षिक योग्यता भी प्रस्तुत करनी होगी। इस विवाह आवेदन-पत्र में दोनों पक्षों को अपना नाम, पिता का नाम, स्थायी पता, व्यवसाय, मूल निवास प्रमाण-पत्र और विवाह करने की रुचि का वर्णन करना होगा।

विवाह का आवेदन होने पर विवाह अधिकारी सर्वसाधारण को सूचना देने के लिए विवाह से संबंधित दस्तावेज सार्वजनिक स्थानों पर लगा देता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि किसी व्यक्ति को विवाह के गैर-कानूनी तथ्यों की जानकारी हो तो वह विवाह अधिकारी के कार्यालय में सूचना दे सकता है। इसके साथ ही विवाह अधिकारी युवक-युवती के माता-पिता को भी एक नोटिस द्वारा इस

शादी के बारे में जानकारी देता है। यदि पक्षकारों के माता-पिता को विवाह पर कोई आपत्ति हो तो वे अपनी आपत्ति विवाह अधिकारी के कार्यालय में दर्ज करवा सकते हैं। कोर्ट मैरिज का प्रमाण-पत्र जारी करने से पहले विवाह अधिकारी दो वयस्क गवाहों के हस्ताक्षर भी करवाता है। अत: विवाह प्रमाण-पत्र लेते समय विवाह अधिकारी के कार्यालय में दो गवाह भी लेकर जाना चाहिए।

विवाह प्रमाण-पत्र के जारी होते ही दोनों पक्षकार कानूनी और सामाजिक रूप से पति-पत्नी बन जाते हैं। कोई भी लड़का या लड़की इस प्रकार के आपसी रिश्ते में विवाह नहीं कर सकते हैं, जो कानून के द्वारा निषिद्ध हो।

□

16

तलाक (विवाह-विच्छेद)

हमारे देश में विवाह-विच्छेद के तीन प्रमुख कानून इस प्रकार हैं—

1. भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम 1869
2. हिंदू विवाह अधिनियम 1955
3. मुसलिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 केवल हिंदुओं (इसमें जैन, बौद्ध, सिख भी शामिल हैं) पर लागू होता है। इसी प्रकार मुसलिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के अनुसार मुसलिम दंपती विवाह का विघटन कर सकते हैं। हिंदू और मुसलिम संप्रदायों को छोड़कर शेष (जैसे ईसाई) पर भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम 1869 लागू होता है।

'तलाक' शब्द अरबी भाषा से लिया गया है। इसका अर्थ—मुक्त करना (Repudiation) है। यह शब्द मुसलिम कानून में प्रचलित है। इसके अनुसार कोई भी स्वस्थचित्त और यौवनारंभ की अवस्थावाला पुरुष जब चाहे अपनी बेगम को तलाक दे सकता है। पति द्वारा तलाक का कारण बताना आवश्यक नहीं माना गया है। मुसलिम विधि में तलाक देना या नहीं देना पति के विवेक पर निर्भर करता है। तलाक देते समय पति द्वारा काम में लिये गए शब्द समझने योग्य एवं स्पष्ट होने पर उन शब्दों के आशय संबंधी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। रशीद अहमद बनाम अनीसा खातून (1932) 59 आई.ए. के मामले में कहा गया कि यदि मुसलिम तलाक में बोले गए शब्द स्पष्ट होते हैं तो उन शब्दों के अर्थ या आशय को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे—'मैं तुम्हें तलाक देता हूँ', 'मैं हमेशा के लिए अपनी बीवी को छोड़ता हूँ और उसको हराम समझता हूँ' आदि।

सुन्नी विधि में कोई भी स्वस्थचित्त और यौवनारंभ अवस्था प्राप्त पति कभी भी बिना कोई कारण बताए लिखित या मौखिक रूप से पत्नी की उपस्थिति या अनुपस्थिति में तलाक दे सकता है। पत्नी की अनुपस्थिति में तलाक देने पर उसके नाम का उच्चारण करना आवश्यक माना गया है। लिखित तलाक को तलाकनामा

कहा जाता है तथा यह साक्षियों (गवाहों) के सामने (गवाह पत्नी का पिता, काजी, अन्य व्यक्ति हो सकते हैं) निष्पादित किया जाता है। तलाकनामे में पत्नी के नाम का संबोधन तथा पति के हस्ताक्षर होने आवश्यक माने गए हैं। यह तलाक तलाकनामे के दिनांक से प्रभावी माना जाता है। शिया कानून के अनुसार पति द्वारा दिया जानेवाला मौखिक तलाक दो गवाहों की उपस्थिति में दिया जाना आवश्यक है। इसके अनुसार तलाक देते समय उच्चारित शब्द अरबी या फारसी भाषा के होने चाहिए। शिया कानून में लिखित तलाक अमान्य होता है, लेकिन पति के बोलने में असमर्थता की स्थिति में लिखित तलाक ही मान्य होता है।

सुन्नी विधि में नशे की स्थिति में, विवशता, मजाक, किसी को खुश करने के लिए दिया गया तलाक भी मान्य होता है। यदि पति अकारण ही नशे में अपनी पत्नी को तलाक दे देता है तो वह मान्य होता है। यदि पति अपनी पत्नी के साथ हँसी-मजाक करते समय भी तलाक दे देता है तो वह भी तलाक मान्य होता है। यदि पति ने नशा अपनी इच्छा के विरुद्ध किया हो (अर्थात् किसी के दबाव में आकर) तो नशे में दिया गया तलाक सुन्नी विधि में मान्य नहीं होता है; लेकिन शिया विधि उपर्युक्त सभी प्रकार (मजाक, नशा, खुश करने के लिए, दबाव) की स्थिति में दिया गया तलाक अमान्य होता है।

मुसलिम विधि में तलाक के निम्नलिखित मान्य तरीके बताए गए हैं—

1. तलाक-उल-सुन्नत (मुहम्मद साहब द्वारा समर्थित)
   (क) अहसान (Talaq from Ahsan) (अनुमोदित)
   (ख) हसन (Talaq from Hasan) (अनुमोदित)।
2. तलाक-उल-बिद्दत (पैगंबर साहब द्वारा अनुमोदित नहीं)
   (क) एक साथ तीन उच्चारणों द्वारा तलाक (Tripple divorce at one time)
   (ख) एक अखंडनीय उच्चारण द्वारा तलाक (One irrevocable declaration)।
3. इला द्वारा तलाक (Talaq from Ila)
4. जिहार द्वारा तलाक (Talaq from Zihar)
5. खुला द्वारा तलाक (Talaq from Khula)
6. मुबारत द्वारा तलाक (Talaq from Mubarat)
7. लियन द्वारा तलाक (Talaq from Lian)
8. मुसलिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के द्वारा तलाक

9. पत्नी के कृत्यों से तलाक

10. तलाक-ए-तफवीज द्वारा।

1. तलाक-उल-सुन्नत (Talaq-ul-Sunnat)—इस प्रकार का तलाक मुसलिम समाज में प्राचीनकाल से अस्तित्व में है। तलाक की यह विधि पैगंबर साहब द्वारा अनुमोदित तथा मुसलिम समाज की सभी शाखाओं द्वारा मान्यता प्राप्त है। यह तलाक दो प्रकार से होता है—

(क) तलाक अहसान (ख) तलाक हसन।

(क) तलाक अहसान (Talaq from Ahsan)—इस तलाक को सर्वश्रेष्ठ तलाक माना जाता है। हम कह सकते हैं कि अहसान तलाक सर्वाधिक प्रामाणिक है। इस प्रकार का तलाक एक उच्चारण द्वारा पत्नी के मासिक धर्म होने के बाद शुद्धता के समय (तुहर) दिया जाता है। पति द्वारा तलाक की घोषणा करने के बाद वह पत्नी के साथ सहवास नहीं कर सकता है। इद्दत की अवधि के समय (तलाक घोषणा के बाद तीन माह का समय) पत्नी को किसी भी पुरुष के साथ सहवास नहीं करना चाहिए। इद्दत की अवधि में पति स्पष्ट घोषणा द्वारा इस तलाक को रद्द भी कर सकता है। यदि पति तलाक की घोषणा के बाद के तीन माह में पत्नी के साथ सहवास कर लेता है तो तलाक की घोषणा स्वत: ही अमान्य हो जाती है, अर्थात् तलाक रद्द हो जाता है।

तलाक अहसान की आवश्यक शर्तें—

(क) तलाक की केवल एक घोषणा पति द्वारा होनी चाहिए।

(ख) विवाह समागम पूर्ण होने की अवस्था में तलाक देते समय पत्नी मासिक धर्म की अवस्था में नहीं होनी चाहिए, अर्थात् यह तलाक पवित्र समय (तुहर) के दौरान ही दिया जा सकता है।

(ग) अहसान तलाक की घोषणा के बाद पति को पत्नी के पवित्र समय (तुहर) में समागम नहीं करना चाहिए।

(घ) यदि विवाह के बाद पति ने पत्नी के साथ सहवास नहीं किया है तो पति पत्नी के मासिक धर्म (रजस्वला) की स्थिति में भी तलाक दे सकता है, अर्थात् Not Consummated की स्थिति होनी चाहिए। यह शर्त केवल मौखिक तलाक में लागू होती है, लिखित तलाक में नहीं। यदि पत्नी को किसी कारण से मासिक

धर्म नहीं होता है तो पवित्र समय की आवश्यकता नहीं होती है।

(ङ) अहसान तलाक के बाद पति को पत्नी के इद्दत काल में सहवास से दूर रहना चाहिए, वरना तलाक रद्द हो जाता है।

इस प्रकार पति यदि अहसान तलाक की घोषणा के बाद अपनी पत्नी के इद्दत काल के दौरान तलाक रद्द नहीं करता है या सहवास नहीं करता है तो यह तलाक पूर्ण एवं अखंडनीय हो जाता है। पत्नी की इद्दत की अवधि गर्भावस्था की नहीं होने पर तीन माह तक (तलाक घोषणा के बाद) तथा गर्भवती होने पर संतानोत्पत्ति तक व्यतीत करनी होती है। तलाकशुदा मुसलिम पत्नी इद्दत काल के बाद दूसरी शादी कर सकती है।

(ख) हसन तलाक (Talaq from Hasan)—इस प्रकार के तलाक में पति-पत्नी की तीन क्रमिक तुहर की अवस्थाओं में तीन बार तलाक का उच्चारण किया जाता है।

हसन तलाक के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना आवश्यक है—

(क) तलाक की घोषणा लगातार तीन बार होनी चाहिए।

(ख) यदि पत्नी रजस्वला नहीं है तो ये तीन घोषणाएँ लगातार तीन पवित्र काल में होनी चाहिए।

(ग) यदि पत्नी रजस्वला नहीं है तो ये तीन घोषणाएँ तीस-तीस दिनों के बाद क्रमश: होनी चाहिए।

(घ) इन तीनों तीस-तीस दिनों की अवधि में पति-पत्नी को आपस में सहवास नहीं करना चाहिए, वरना यह तलाक मान्य नहीं रहता है।

इस प्रकार लगातार तीसरी बार तलाक उच्चारण के साथ यह तलाक अखंडनीय हो जाता है तथा इद्दत की अवधि तीसरे उच्चारण के बाद से शुरू होती है। इद्दत की अवधि के बाद दोनों पुन: शादी कर सकते हैं। यदि पत्नी ने पहले पति के तलाक के बाद दूसरी शादी कर ली है तो दूसरे पति द्वारा तलाक लेकर इद्दत की अवधि व्यतीत करके पहले पति से शादी की जा सकती है। यदि इद्दत की अवधि के दौरान कोई पक्षकार मर जाता है तो दूसरा पक्षकार उसकी संपत्ति का वारिस नहीं हो सकता है।

2. तलाक-उल-बिद्दत (Talaq-ul-Biddat)—यह मुहम्मद साहब द्वारा अनुमोदित नहीं है। इस तलाक को सुन्नी संप्रदाय मान्यता देता है, लेकिन शिया

संप्रदाय इसको अमान्य करता है। इस प्रकार का तलाक अनियमित अननुमोदित होते हुए भी कानून द्वारा मान्य है। इस प्रकार के तलाक में पति अपनी पत्नी की तुहर की अवधि में तीन बार तलाक की घोषणा द्वारा तलाक देता है। इस प्रकार का तलाक देते समय पति इस प्रकार से बोल सकता है, 'मैं तुझे तलाक देता हूँ, मैं तुझे तलाक देता हूँ, मैं तुझे तलाक देता हूँ।' या 'मैं तुम्हें तीन बार तलाक देता हूँ' ऐसा कह सकता है।

पति तलाक-उल-बिद्दत को केवल एक बार कहकर भी पूरा कर सकता है। जैसे मैंने तुम्हें तलाक-उल-बैन से तलाक दे दिया है। यदि पति द्वारा तीन बार तलाक नहीं दिया गया है तो पक्षकार पुन: शादी रचा सकते हैं, लेकिन यदि पति ने तीन बार तलाक दिया है तो पत्नी को पहले इद्दत की अवधि बितानी होगी, फिर दूसरे पति से शादी कर संभोग के बाद उससे तलाक लेकर पुन: इद्दत की अवधि व्यतीत करनी होगी। इसके पश्चात् वह अपने पूर्व पति से शादी कर सकती है अर्थात् तलाक-उल-बिद्दत में तलाक की घोषणा के बाद तलाक को रद्द नहीं किया जा सकता है। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार यह तलाक निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(क) एक साथ तीन उच्चारणों द्वारा
(Tripple divorce at one time)

(ख) एक अखंडनीय उच्चारण द्वारा
(One irrevocable decleration)।

3. इला द्वारा तलाक (Talaq from Ila)—इला का अर्थ होता है—पत्नी से चार माह या उससे अधिक समय तक सहवास न करने की प्रतिज्ञा। इसमें सहवास न करने की अधिकतम समयावधि तय नहीं है। इला तलाक वयस्क एवं स्वस्थ मस्तिष्कवाला पति कसम से अपनी पत्नी के साथ चार माह तक या इससे अधिक समय तक समागम न करने की प्रतिज्ञा करता है। ऐसा करना इला नामक विवाह-विच्छेद कहलाता है। पति चार माह के बीच यौन संबंध बनाकर या मौखिक प्रतिज्ञा वापस लेकर इला को रद्द कर सकता है। इला विवाह-विच्छेद के लिए निम्न शर्तें आवश्यक हैं—

(क) पति वयस्क एवं स्वस्थ मस्तिष्कवाला होना चाहिए।

(ख) उक्त निर्धारित समय में सहवास नहीं होना चाहिए।

(ग) पति को शपथपूर्वक घोषणा करनी चाहिए कि वह अपनी पत्नी से चार माह या अधिक समय तक सहवास नहीं करेगा।

शिया तथा शफई संप्रदाय के लोग इसको तलाक की तरह प्रभावी नहीं मानते हैं। इनके अनुसार इला पत्नी को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह न्यायालय के माध्यम से विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर ले या पति से समागम के अधिकार की पुन: प्राप्ति के लिए प्रार्थना-पत्र दे। इस प्रार्थना-पत्र पर पति या तो पत्नी को तलाक दे सकता है या पत्नी के साथ यौन संबंध स्थापित कर लेता है। दोनों ही कार्य पति द्वारा न करने पर न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर देता है। हनफी समुदाय के अनुसार इला द्वारा विवाह-बंधन में उसी प्रकार पति अविखंडनीय तलाक की घोषणा करता है।

4. जिहार द्वारा तलाक (Talaq from Zihar)—जिहार का अर्थ है—'निषिद्ध तुलना द्वारा तलाक'। इस प्रकार के तलाक में पति अपनी पत्नी की तुलना ऐसी स्त्री से करता है, जिससे मुसलिम कानून के अनुसार शादी नहीं हो सकती है। उदाहरण के लिए, पति अपनी पत्नी से कहता है कि आज से तुम मेरी माँ के समान हो। यदि पति अपनी पत्नी से इस प्रकार कहता है तो इसका अर्थ यह माना जाएगा कि पति अपनी पत्नी को जिहार विधि से तलाक देना चाहता है। यदि कोई वयस्क एवं स्वस्थ मस्तिष्कवाला मुसलिम पति अपनी पत्नी की तुलना किसी ऐसी स्त्री से करता है, जिसके साथ विवाह करना 'कुरान' (मुसलिम विधि) में अमान्य बताया गया है तो पत्नी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि जब तक पति प्रायश्चित्त (60 गरीबों को खाना देना या दो माह तक उपवास रखना) न करे तब तक वह उससे यौन संबंध न रखे। यदि पति प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार नहीं होता है तो पत्नी न्यायालय में तलाक का आवेदन कर सकती है। मुता विवाह का तलाक जिहार विधि से लिया जा सकता है। जिहार द्वारा तलाक लेने की प्रक्रिया भारत में अब न के बराबर ही है।

5. खुला द्वारा तलाक (Talaq from Khula)—खुला पति-पत्नी की पारस्परिक इच्छा द्वारा तलाक देने की प्रक्रिया है, अर्थात् पति और पत्नी अपनी आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद कर सकते हैं। यह विवाह-विच्छेद खुला और मुबारत द्वारा किया जाता है। खुला में पत्नी को यह अधिकार दिया गया है कि वह पति से विवाह-विच्छेद उसको कुछ धन देकर कर सकती है। पति इस धन के बदले पत्नी को विवाह-बंधन से मुक्त कर देता है। इस प्रकार का तलाक बाद में रद्द नहीं किया जा सकता है, अर्थात् विवाह-विच्छेद की खुला विधि में पत्नी अपने पति से तलाक खरीदती है।

यदि पत्नी इस तलाक के फलस्वरूप पति को कोई धनराशि नहीं देती है तो

भी यह तलाक अविखंडनीय होता है। पति अपनी धनराशि प्राप्त करने के लिए पत्नी के खिलाफ न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार के तलाक के लिए पति का स्वस्थ मस्तिष्क एवं वयस्क होना आवश्यक है।

6. मुबारत द्वारा तलाक (Talaq from Mubarat)—मुबारत का अर्थ होता है—पारस्परिक छुटकारा। इस प्रकार के तलाक की प्रस्तावना पति या पत्नी की तरफ से हो सकती है। इसमें दोनों की सहमति से विवाह-विच्छेद संपन्न होता है। एक बार प्रस्ताव स्वीकृत होने पर विवाह-विच्छेद संपन्न हो जाता है। इसमें धनराशि का लेन-देन नहीं होता है। यह विवाह-विच्छेद एक बार में दिए गए अविखंडनीय तलाक की तरह प्रभावी होता है। इसमें तलाक के बाद आपसी समझौते द्वारा पुन: वैवाहिक संबंधों की स्थापना नहीं हो सकती है। इसके लिए पुन: निकाह करने की आवश्यकता होती है।

7. लियन द्वारा तलाक (Talaq from Lian)—जब कोई पति अपनी पत्नी पर झूठा आरोप लगाता है कि वह जारकर्म करती है या आरोप लगाता है कि वह उसके बच्चों का बाप नहीं है, तो पत्नी न्यायालय से यह निवेदन कर सकती है कि पति अपने झूठे आरोप वापस ले या ईश्वर की साक्षी लेकर आरोप लगाए। इन आरोपों के आधार पर पत्नी न्यायालय में विवाह-विच्छेद की याचिका दायर कर सकती है। इन आरोपों से विवाह-विच्छेद स्वत: ही संपन्न नहीं होता है। न्यायालय द्वारा डिक्री जारी करने से पूर्व तक विवाह संबंध जारी रहते हैं। मुसलिम विधि के अनुसार ये आरोप वापस भी लिये जा सकते हैं, लेकिन आरोपों की वापसी सही एवं सत्य रूप में होनी चाहिए। यदि न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री देने से पूर्व पति आरोपों को सत्य सिद्ध कर देता है तो पत्नी विवाह-विच्छेद करने की अधिकारिणी नहीं रहती है तथा विवाह कायम रहता है।

8. पत्नी के कृत्यों से तलाक—चूँकि मुसलिम विवाह हिंदू विवाह की तरह एक पवित्र संस्कार न होकर एक दीवानी (सिविल) संविदा है। इसमें पक्षकार शर्तें लगाने हेतु आजाद होते हैं। मुसलिम विवाह में पति और पत्नी आपस में वैध शर्तें लगा सकते हैं। उदाहरण—एक पति एवं पत्नी के बीच अनुबंध होता है कि यदि पति ने दूसरी औरत से (दूसरा विवाह) शादी की तो वह (पहली पत्नी) अपने पति को तलाक दे सकेगी। पति द्वारा दूसरी शादी करने पर पति को तलाक हेतु बाध्य करना एक वैध अनुबंध है। इस प्रकार के अनुबंध में पति स्वयं पत्नी को तलाक देने का अधिकार सौंपता है। मुसलिम विधि में भविष्य में घटनेवाली घटनाओं पर आधारित तलाक भी दिया जा सकता है। इस प्रकार के विवाह-विच्छेद को

आकस्मिकताश्रित विवाह-विच्छेद कहते हैं। यदि पति अपनी पत्नी से कोई कार्य निश्चित समय पर करने के लिए समझौता करता है तथा साथ में तय किया जाता है कि यदि उसने अमुक कार्य में चूक की तो उनको विवाह-विच्छेद माना जाएगा। इस प्रकार का विवाह-विच्छेद कानूनी रूप से मान्य होता है। इस प्रकार के विवाह-विच्छेद को शिया विधि मान्यता प्रदान नहीं करती है।

9. तलाक-इ-तफवीज (Talaq-i-Tafweez)—इस प्रकार के तलाक को Delegated Divorce भी कहा जाता है। पति अपने तलाक के अधिकार को स्वयं पत्नी को हस्तांतरित कर सकता है। इसी को तफवीज कहा जाता है। विवाह से पहले या बाद में किया हुआ कोई ऐसा समझौता, जिसमें यह प्रावधान किया गया हो कि पत्नी अमुक परिस्थितियों में पति से विवाह-विच्छेद कर लेगी, तो ऐसे तलाक को तलाक-इ-तफवीज कहा जाता है। यह तलाक मान्य होता है। इस प्रकार के विवाह-विच्छेद में पति द्वारा तलाक का अधिकार स्पष्ट रूप से पत्नी को हस्तांतरित होना चाहिए। पति द्वारा यह अधिकार पत्नी को शर्त के साथ देना चाहिए। पति द्वारा तलाक के अधिकार को हस्तांतरित करते समय जो शर्तें लगाई जाती हैं, वे तर्कसंगत (लोक कानून के विरुद्ध नहीं) होनी चाहिए। पत्नी द्वारा इस प्रकार के अधिकार का प्रयोग करते समय यह सिद्ध करना होगा कि शर्तवाली घटना घटित हो चुकी है। उदाहरण—पत्नी अपने पति से इस शर्त पर शादी करती है कि वह उसका भरण-पोषण करेगा, यदि उसने उसका भरण-पोषण नहीं किया तो वह उसे तलाक दे देगी। इसी प्रकार का तलाक तलाक-इ-तफवीज कहलाता है।

10. मुसलिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद—मुसलिम विधि में पति को तलाक के बाबत असीमित अधिकार प्राप्त हैं और वह अपनी मरजी से पत्नी को तलाक दे सकता है। इस अधिनियम की धारा 2 के द्वारा मुसलिम पत्नी को तलाक के कुछ आधार प्रदान किए गए हैं। वह इन आधारों पर अपने पति को न्यायालय के माध्यम से तलाक दे सकती है। ये आधार निम्नलिखित हैं—

(क) **पति को कारावास होने पर—**यदि पति को कारावास हो गया है तो वह अपने पति को तलाक दे सकती है। इस प्रकार का कारावास सात वर्ष या सात वर्ष से अधिक का होना चाहिए और कारावास का निर्णय अंतिम होना चाहिए।

(ख) **पति द्वारा वैवाहिक दायित्वों के पालन में असफलता—**यदि पति उचित कारण के बिना तीन वर्ष तक अपने वैवाहिक दायित्वों का पालन नहीं करता है तो पत्नी इस आधार पर न्यायालय में तलाक का आवेदन

कर सकती है।

(ग) पति का पागल होना—यदि पति दो वर्षों से पागल है तथा भविष्य में स्वस्थ होने की कोई संभावना नहीं है, तो पत्नी इस आधार पर न्यायालय में तलाक का आवेदन कर सकती है।

(घ) कुष्ठ या कोढ़ होने पर—यदि पति को कुष्ठ रोग हो गया है तथा भविष्य में उसके स्वस्थ होने की कोई संभावना नहीं है, तो पत्नी न्यायालय में तलाक की डिक्री पाने का आवेदन कर सकती है।

(ङ) यौन रोग होने पर—यदि पति घातक यौन रोग से पीड़ित है तो पत्नी इस आधार पर अपने पति से तलाक ले सकती है।

(च) यौवनारंभ का विकास—यदि किसी अवयस्क लड़की का विवाह पंद्रह वर्ष की आयु से पहले कर दिया गया है तो वह अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने तक इस शादी को रद्द करने का विकल्प रखती है। पंद्रह वर्ष की आयु से पहले किया गया संभोग पत्नी के इस अधिकार को समाप्त नहीं करता है।

(छ) पति का लापता होना—यदि पति चार वर्षों से लापता है और उसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं है, तो पत्नी इस आधार पर न्यायालय से विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है। ऐसी डिक्री का निष्पादन छह माह बाद किया जाएगा। यदि इन छह माह में पति स्वयं आकर या अपने किसी प्रतिनिधि द्वारा न्यायालय को संतुष्ट कर दे कि वह वैवाहिक कर्तव्यों को पालन करने को तैयार है तो न्यायालय ऐसी डिक्री को निरस्त कर सकेगा। इस आधार पर तलाक पानेवाली पत्नी को न्यायालय में अपनी विवाह-विच्छेद की याचिका के साथ निम्नलिखित कागजात प्रस्तुत करने होंगे—

- पति की संपत्ति के कानूनन वारिसों के नाम व पते।
- ऐसे वारिसों को बाद में सूचना भेजी जाएगी।
- ऐसे व्यक्ति वाद में सुने जाने के अधिकारी होंगे।

(ज) पति के द्वारा पत्नी का भरण-पोषण करने में असफलता—यदि पति दो वर्ष तक पत्नी का भरण-पोषण करने में असफल रहता है, तो पत्नी इस आधार पर अपने पति से विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है। पति द्वारा पत्नी के भरण-पोषण करने में असफलता जान-बूझकर हो सकती है। मानक खाँ बनाम मु. मलखान (1941), ए.एल.

167 के मामले में कहा गया कि यदि पति अपनी पत्नी का भरण-पोषण गरीबी, काम की कमी, अस्वस्थता, कारावास के कारण नहीं कर पा रहा है तो भी पत्नी अपने पति से विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है।

बदरुलनिसा बीवी बनाम मुहम्मद यूसुफ के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसी पत्नी, जो पति से अलग रहती है और अपने वैवाहिक कर्तव्यों का पालन करने से इनकार करती है, तो वह पति से भरण-पोषण का खर्च पाने की अधिकारिणी नहीं है।

नूर बीवी बनाम पीर बख्श ए.आई.आर. 1966, इला 548 में कहा गया कि पति अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं रहने के कारण भरण-पोषण नहीं देता है तो पति को उपेक्षा (भरण-पोषण देने में) का दोषी नहीं माना जा सकता है।

मुहम्मद बनाम मुसम्मात बूशरा ए.आई.आर. 1956, राजस्थान 102 के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने कहा कि विधि के प्रश्न पर हमारी यह राय है कि विघटन का दावा उत्पन्न होने के लिए भरण-पोषण देने में असफलता या उपेक्षा किसी औचित्य के बिना होनी चाहिए, क्योंकि औचित्य है तो यह नहीं कहा जा सकता कि उपेक्षा हुई है। उपेक्षा या असफलता से कर्तव्य का अपालन विवक्षित है, किंतु यदि पति स्वयं पत्नी के आचरण के कारण ऐसे कर्तव्य से विमुख हो जाता है तो पति के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने भरण-पोषण करने में उपेक्षा की है या वह असफल रहा है। यदि ऐसे मामलों में पति यह सिद्ध कर दे कि पत्नी का आचरण ऐसा रहा है, जिससे उसे मुसलिम विधि के अंतर्गत भरण-पोषण का खर्च प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो गया है, तो पत्नी इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त नहीं कर सकती है।

(झ) **पति का नपुंसक होना—**पति की नपुंसकता पर पत्नी अपने पति से विवाह-विच्छेद कर सकती है। इसमें पत्नी को यह सिद्ध करना होता है कि उसका पति नपुंसक था तथा अब विवाह-विच्छेद का आवेदन करते समय भी नपुंसक है। न्यायालय इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने से पहले पति के आवेदन पर एक आदेश पारित करेगा कि पति एक वर्ष के भीतर न्यायालय को संतुष्ट करे कि वह नपुंसक नहीं है, तो न्यायालय इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं करेगा।

(ञ) **पति की क्रूरता पर—**इस अधिनियम के अनुसार ये कार्य पत्नी के प्रति

क्रूरता माने जाते हैं—

- पति द्वारा मार-पीट करके जीवन को दु:खी बना देना। या
- पति द्वारा पत्नी के साथ बुरा व्यवहार किया जाना, लेकिन इसमें बुरा स्वभाव शामिल नहीं है। या
- वेश्याओं के साथ जीवन-यापन करना। या
- पति द्वारा एक से अधिक पत्नियाँ रखना तथा उनके साथ समानता का व्यवहार न करना। या
- पति द्वारा पत्नी को धार्मिक क्रिया-कलाप करने से रोकना। या
- पति के द्वारा पत्नी की संपत्ति को हस्तांतरित करना तथा पत्नी द्वारा उस संपत्ति के कानूनी उपयोग में बाधा डालना। या
- पत्नी को अनैतिक जीवन व्यतीत करने पर विवश करना।

यदि कोई पति (मुसलिम) उपर्युक्त किसी भी आधार पर पत्नी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता है तो वह पत्नी अपने पति से तलाक पाने की अधिकारिणी है। सिराज मोहम्मद खाँ बनाम हाजी जुन्निसा यासीन खाँ (ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 1992) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पति का नपुंसक होना पत्नी के लिए मानसिक क्रूरता है। पत्नी इस आधार पर पति के साथ रहने से इनकार कर सकती है।

संक्षेप में, मुसलिम पत्नी अपने पति से तलाक की डिक्री—पति के लापता होने, पति द्वारा भरण-पोषण न करना, पति की नपुंसकता, पति द्वारा वैवाहिक कर्तव्यों का पालन न करना, पति को कारावास होना, पति का पागल होना, पति को यौन रोग एवं कुष्ठ की बीमारी होना, पति द्वारा क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना आदि आधारों पर न्यायालय के माध्यम से—प्राप्त कर सकती है।

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम 1869 की धारा 2 के अनुसार, यह अधिनियम ईसाइयों पर लागू होता है। इस अधिनियम की धारा 10 के अनुसार, कोई पति जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय में विवाह-विच्छेद का आवेदन इस आधार पर कर सकता है कि उसकी पत्नी जारकर्म में संलग्न है।

धारा 10 के अनुसार कोई पत्नी अपने पति से विवाह-विच्छेद की माँग इन आधारों पर कर सकती है—

- पति ने ईसाई धर्म छोड़कर कोई दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया हो। या
- पति ने अन्य स्त्री के साथ किसी प्रकार का विवाह कर लिया हो। या
- पति जारकर्म का दोषी हो। या

- पति जारकर्म के साथ द्विविवाह का दोषी हो। या
- पति जारकर्म सहित अन्य स्त्री के साथ विवाह का दोषी हो। या
- पति बलात्संग, गुदा मैथुन अथवा पशु-गमन का दोषी हो। या
- पति जारकर्म के साथ ही ऐसी क्रूरता का दोषी हो, जो जारकर्म के बिना ही उसे विवाह-विच्छेद की हकदार बना देती है। या
- जारकर्म के साथ ही उचित कारण बिना दो वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए अभित्यजन (त्यागने) का दोषी रहा हो।

उपर्युक्त आधारों पर विवाह-विच्छेद चाहनेवाली पत्नी को स्पष्ट रूप से उन सभी तथ्यों का वर्णन करना चाहिए, जिनके आधार पर वह विवाह विघटित कराना चाहती है। इस प्रकार का आवेदन जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय में किया जा सकता है। यदि पत्नी का आवेदन जिला न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाए तो उसे वैसा ही आवेदन उच्च न्यायालय में करना चाहिए। (धारा 13)

इस अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, यदि न्यायालय को पता चलता है कि आवेदक विवाह के दौरान उक्त प्रकार का विवाह या जारकर्म विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किए जाने के संबंध में सहायक या मौन रहा है या रही है या उसने उस जारकर्म को (जिसका कि न्यायालय में परिवाद किया गया है) माफ कर दिया है तो न्यायालय ऐसा आवेदन खारिज कर देता है।

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 13 विवाह-विच्छेद के बारे में विस्तार से वर्णन करती है। इसी धारा की उपधारा (1) के खंड (i) के अनुसार, विवाह-विच्छेद के बाद (नीचे दिए गए आधारों पर) कोई भी व्यक्ति (इस शब्द में स्त्री-पुरुष दोनों शामिल हैं) किसी अन्य व्यक्ति से विवाह करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 13 के अनुसार, कोई हिंदू (इसमें सिख, जैन, बौद्ध आदि शामिल हैं) व्यक्ति (इसमें महिला एवं पुरुष शामिल हैं) निम्न आधारों पर न्यायालय में आवेदन कर तलाक की डिक्री प्राप्त कर सकता है—

जारकर्म—किसी विवाहित स्त्री द्वारा किसी पुरुष (पति को छोड़कर अन्य के साथ) के साथ सहमति से सहवास करना जारकर्म कहलाता है, अर्थात् किसी पुरुष द्वारा किसी विवाहिता स्त्री के साथ (यहाँ पुरुष उसका पति नहीं है) उसकी सहमति से सहवास करना जारकर्म कहलाता है। इसकी मूल परिभाषा भारतीय दंड संहिता की धारा 497 में दी गई है, जो इस प्रकार है—यदि कोई ऐसे व्यक्ति के साथ, जो कि किसी अन्य पुरुष की पत्नी है और जिसका किसी अन्य पुरुष की

पत्नी होना वह जानता है या विश्वास करने का कारण रखता है, उस पुरुष की सहमति या मौनानुकूलता के बिना ऐसा मैथुन करेगा, जो बलात्संग के अपराध की कोटि में नहीं आता है, वह जारकर्म के अपराध का दोषी होगा और दोनों में से कोई कारावास से, जिसकी अवधि पाँच वर्ष तक की हो सकती है जुरमाने से दंडित किया जाएगा। ऐसे मामले में पत्नी दुष्प्रेरक के रूप में दंडनीय नहीं होगी।

1. **जारकर्म के आधार पर विवाह-विच्छेद—** यदि विवाह के किसी पक्षकार द्वारा जारकर्म किया जाता है तो दूसरा पक्षकार न्यायालय में विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण का आवेदन कर सकता है; लेकिन जारकर्म का प्रयास करने के आधार पर विवाह-विच्छेद का आवेदन नहीं किया जा सकता है। पट्टैअम्माल बनाम मणिकम, ए.आई.आर. 1967, मद्रास 254 के मामले में कहा गया कि विवाह-विच्छेद का आवेदन करनेवाले को यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि दूसरा पक्षकार अब भी जारकर्म में लिप्त है। यदि न्यायालय में विवाह-विच्छेद की याचिका दायर करनेवाला जारकर्म के प्रति मौनानुकूलन या मौनानुमोदन कर रहा हो तो न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान नहीं करता है, अर्थात् यदि एक पक्षकार द्वारा जारकर्म करने पर दूसरा पक्षकार उसके लिए मौन स्वीकृति प्रदान कर देता है तो दूसरा पक्षकार न्यायालय से विवाह-विच्छेद की डिक्री जारी नहीं करवा सकता है।

   पुष्पा देवी बनाम राधेश्याम, ए.आई.आर. 1972, राजस्थान 260 के मामले में कहा गया कि जहाँ किसी पुरुष के प्रतिवादिनी (महिला) के सोने के कमरे में आधी रात के समय संदिग्धावस्था में पाए जाने का आरोप है और प्रतिवादिनी उस आरोप का कोई संतोषजनक उत्तर दे पाने में विफल रहती है, तो वहाँ उसे जारकर्म का दोषी ठहराया जा सकता है। इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री दी जा सकती है।

   चंद्र मोहिनी श्रीवास्तव बनाम ए.पी. श्रीवास्तव, ए.आई.आर. 1967, एस.सी. 581 के मामले में कहा गया कि जहाँ प्रेम-पत्र के आधार पर जारकर्म सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है, वहाँ मात्र दूसरे पुरुष का प्रेम-पत्र ही पर्याप्त नहीं है, अपितु पत्नी का प्रेम-पत्र भी उस परपुरुष के नाम होना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो आवेदक अपनी पत्नी को जारकर्म का दोषी सिद्ध नहीं कर सकता है।

   यदि पति किसी अन्य स्त्री के साथ सहवास करता है तो इस आधार पर

पत्नी न्यायालय के द्वारा अपने पति से विवाह-विच्छेद करवा सकती है।

क्रूरता के आधार पर—इसके आधार पर कोई भी व्यक्ति विवाह-विच्छेद का आवेदन कर सकता है। इसमें पति भी अपनी पत्नी के क्रूरतापूर्ण व्यवहार के आधार पर विवाह-विच्छेद का आवेदन कर सकता है। जैमिसन बनाम जैमिसन, ए.आई.आर. 1952, कलकत्ता 525 के मामले में कहा गया कि क्रूरता के आरोप के प्रत्येक मामले में यह आवश्यक नहीं रह गया है कि वैवाहिक संबंधों की परिधि में ही क्रूरता का व्यवहार किया गया हो। ऐसा व्यवहार पति और पत्नी के पृथक् रहने की दशा में भी किया जा सकता है।

कु. शोभारानी बनाम मधुकर रेड्डी (1988) 3 क्रम.नि.प. 199 के मामले में कहा गया कि 'क्रूरता' शब्द की परिभाषा नहीं की जा सकती है। 'क्रूरता' शब्द में मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार की क्रूरता शामिल है। मानसिक क्रूरता एक ऐसा आचरण है, जिसमें पक्षकार को ऐसी मानसिक पीड़ा और कष्ट देना कि जो उस पक्षकार के लिए ऐसा आचरण करनेवाले व्यक्ति के साथ रहना असंभव बना देता है।

बी. भक्त बनाम डी. भक्त ए.आई.आर. 1994, एस.सी. 710 के मामले में कहा गया कि मानसिक क्रूरता के लिए यह सिद्ध किया जाना आवश्यक नहीं है कि वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक थी।

प्रीति परिहार बनाम कैलाश सिंह परिहार, ए.आई.आर. 1978, राजस्थान 140 के मामले में कहा गया कि किसी पक्षकार का झक्की होना या स्वार्थी होना या कंजूस होना या कर्तव्यहीन होना अथवा अशिष्ट होना या चिड़चिड़े स्वभाव का होना उस पक्षकार की प्रकृति से जुड़े होने के कारण क्रूरता की कोटि में नहीं आता है; लेकिन इससे अधिक बातों का किसी व्यक्ति में एक साथ होना क्रूरता हो सकती है। इसी मामले में कहा गया कि क्रूरता के मामले में निर्णय लेते समय न्यायालय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देता है—

- घर का वातावरण
- समाज में उस व्यक्ति का स्तर
- उसकी शिक्षा
- स्थानीय प्रथा
- सामाजिक स्थिति
- पक्षकारों की शारीरिक एवं मानसिक परिस्थितियाँ
- रहन-सहन का स्तर
- पक्षकारों के बीच सामान्य जीवन में व्यवहार।

दास्ताने बनाम दास्ताने ए.आई.आर. 1975, एस.सी. 1534 के मामले में बताया गया कि पति-पत्नी की दैनिक जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ क्रूरता की श्रेणी में नहीं आती हैं। यदि दैनिक जीवन का आचरण गंभीर प्रकृति का हो तो उसे जीवन संबंधी घटनाओं के रूप में नहीं माना जा सकता है। पत्नी का मंगलसूत्र तोड़ देना, पति का ऑफिस से लौटने पर घर में ताला बंद कर देना, बच्चों को पीटना और उनकी जीभ पर मिर्च लगा देना आदि क्रूरता की श्रेणी में ही हैं।

ए बनाम बी ए.आई.आर. 1985, गुजरात 121 के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय ने कहा कि पति द्वारा अपनी पत्नी को अप्राकृतिक सहवास (मुख मैथुन) के लिए बाध्य करना पत्नी के प्रति क्रूरता ही है।

कौशल्या बनाम बिसाखीराम ए.आई.आर. 1961, पंजाब उच्च न्यायालय, पृष्ठ 520 तथा सप्तमी बनाम जगदीश (1969) 37 सी.डब्ल्यू.एन. 502 के मामलों में पत्नी से मार-पीट करना क्रूरता माना गया।

सयाल बनाम सरला (1961), पंजाब उच्च न्यायालय, पृष्ठ 125 में पति को विषपान कराना या अन्य अखाद्य पदार्थ का सेवन कराना क्रूरता है।

विवाह के किसी पक्षकार द्वारा निम्नलिखित कार्यों का करना क्रूरता माना जाता है—

- मारपीट करना
- आतंकपूर्ण आचरण, जिससे दूसरा पक्षकार असुरक्षित हो
- जारकर्म का झूठा आरोप
- शाकाहारी को मांसाहार के लिए बाध्य करना।

शांति देवी बनाम राघव प्रकाश ए.आई.आर. 1986, राजस्थान 13 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पत्नी द्वारा पति की पी-एच.डी. की शोध रचना को जला देना पति के प्रति मानसिक क्रूरता है।

राजेंद्र भारद्वाज बनाम अनिता शर्मा, ए.आई.आर. 1993, दिल्ली 135 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि अगर पत्नी अपने पति को विवाह के सात दिनों तक सहवास न करने दे, सास को गालियाँ दे, पति को जान से मरवाने की धमकी दे तथा श्वसुर के सोने के कमरे में अपने पति के साथ सहवास के फोटो सजाना आदि मानसिक क्रूरता है।

शकुंतला बनाम ओमप्रकाश, ए.आई.आर. 1981, दिल्ली, पृ. 53 के मामले में कहा कि जान-बूझकर सहवास करने से इनकार करना अथवा अप्राकृतिक सहवास की ओर प्रवृत्त होना मानसिक क्रूरता है। इसी प्रकार का एक फैसला

कोनडल बनाम रंगानायकी 1924, मद्रास 49, 1968 मैसूर 115 के मामले में दिया गया।

कौशल्या बनाम विनय (1973), राजस्थान 269 के मामले में फैसला दिया गया कि पति की नपुंसकता पत्नी के लिए एक मानसिक क्रूरता है। इसी प्रकार भगवत बनाम भगवत, ए.आई.आर. 1967, बंबई, पृष्ठ 80 के मामले में पति ने एक बार अपने साले का गला दबा दिया और दूसरी बार अपने लड़के का गला दबा दिया। पति के इस कृत्य को न्यायालय ने पत्नी के प्रति क्रूरता बताया।

दिग्विजय सिंह बनाम प्रताप कुमारी के मामले में उच्चतम न्यायालय ने नपुंसकता के विषय में नपुंसकता की परिभाषा इस प्रकार दी—A party is impotent if his or her mental or physical condition makes consumation of the marriage a practical impossibility. अर्थात् यदि विवाह का एक पक्षकार वैवाहिक सहवास करने में शारीरिक या मानसिक रूप सेअयोग्य है तो वह नपुंसक है। अत: नपुंसकता दो प्रकार की होती है—(अ) शारीरिक, (ब) मानसिक।

(अ) शारीरिक नपुंसकता—इस नपुंसकता की व्याख्या न्यायालय ने चंचल कुमारी बनाम केवल कृष्ण, ए.आई.आर. 1972, पंजाब 474 के मामले में की है। न्यायालय ने कहा कि पुरुष के मामले में सहवास की क्षमता लिंग के पूर्ण तनाव तथा योनि में पूर्ण प्रवेश की क्षमता से होती है। इस प्रकार की नपुंसकता में लिंग की विकृति सम्मिलित है। शारीरिक विकृति में लिंग का न होना, लिंग का अत्यधिक बड़ा या छोटा होना, पूर्ण रूप से तनाव में न आना आदि शामिल हैं। इससे सहवास पूर्ण नहीं हो पाता है। स्त्री के मामले में योनि का अत्यधिक छोटा होना या अन्य कोई ऐसी विकृति होना, जिससे लिंग योनि में प्रविष्ट न हो अथवा वास्तविक सहवास में बाधा पहुँचती हो तो यह स्त्री की नपुंसकता मानी जाएगी।

(ब) मानसिक नपुंसकता—ऐसी नपुंसकता, जिसमें पक्षकार मानसिक कारणों से सहवास नहीं कर पाए, मानसिक नपुंसकता कहलाती है। अर्थात् यदि कोई पुरुष शारीरिक रूप से समर्थ होते हुए भी अपनी पत्नी से मानसिक कारणों से सहवास नहीं कर पाता है तो यह मानसिक नपुंसकता कहते हैं। न्यायालय द्वारा इसी प्रकार के फैसले इन मामलों में दिए गए हैं—

- मुथुराज कोइलपीलाई बनाम इस्थर विक्टोरिया कन्नाम्माल ए.आई.आर. 1970, मद्रास 237।
- जगदीश बनाम सीतादेवी ए.आई.आर. 1963, पंजाब, पृष्ठ 114

- मंजीत कौर बनाम सुरेंद्र ए.आई.आर. 1972, पंजाब व हरियाणा, पृष्ठ 5।

प्रणव बिस्वास बनाम म्रिनमंजी ए.आई.आर. 1976, कलकत्ता, पृ. 156 के मामले में कहा गया कि पत्नी द्वारा अपने प्रेमी को प्रेम-पत्र लिखना क्रूरता नहीं है और इस आधार पर पति विवाह-विच्छेद की याचिका दायर नहीं कर सकता है, अर्थात् न्यायालय प्रेम-पत्र के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं करेगा।

ललिता देवी बनाम राधा मोहन ए.आई.आर. 1976, राजस्थान, पृष्ठ 1 के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने कहा कि पति द्वारा किसी अन्य स्त्री से प्रेम करना तथा उसे अपने घर में रखना और उससे शादी का वायदा करना पत्नी के लिए मानसिक क्रूरता है। पत्नी इस आधार पर पति से विवाह-विच्छेद करने का अधिकार रखती है।

सत्या देवी बनाम श्रीराम ए.आई.आर. 1983, पंजाब एवं हरियाणा, पृष्ठ 252 के मामले में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने कहा कि पति एवं घरवालों की इच्छा के लिए पत्नी द्वारा दो बार गर्भपात करवा लेना पति के लिए मानसिक क्रूरता है। इस प्रकार की क्रूरताओं के आधार पर पति अपनी पत्नी से विवाह-विच्छेद करने का अधिकार रखता है।

अभित्यजन—इसकी परिभाषा हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 13 (1)(i)(ख) में इस प्रकार है—जहाँ याची को अन्य पक्षकार ने याचिका उपस्थापन से ठीक पहले कम-से-कम दो वर्ष तक की निरंतर कालावधि तक अभित्यक्त रखा हो, वहाँ मामला विवाह-विच्छेद का बनता है। यहाँ पर अभित्यजन का अर्थ है—एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार से पृथक्करण कर लेना तथा सहवास स्थायी रूप से बंद कर देना।

सतत कुमार अग्रवाल बनाम नंदिनी अग्रवाल ए.आई.आर. 1990, एस.सी. 594 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि पति ने अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री हेतु अपना पक्ष सिद्ध कर दिया है तो पक्षकारों का पुनर्मिलन संभव नहीं है।

लक्ष्मण चंद कृपलानी बनाम मीना ए.आई.आर. 1964, एस.सी. 40 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभित्यजन की व्याख्या करते हुए कहा कि विवाह के एक पक्षकार द्वारा बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अन्य पक्षकार की इच्छा के बिना उसे स्थायी रूप से त्याग देना ही अभित्यजन है।

बलवीर कौर बनाम धीरदास ए.आई.आर. 1979, पंजाब और हरियाणा 162

के मामले में कहा गया कि पति द्वारा पत्नी को घर से निकाल देना, पत्नी का भरण-पोषण न करना, पत्नी के साथ रहने का प्रयास न करना अभित्यजन ही माना जाता है।

यदि विवाह के पक्षकार दो वर्ष पूर्ण होने से पहले वैवाहिक कर्तव्यों का पालन शुरू कर देते हैं तो अभित्यजन समाप्त हो जाता है। अभित्यजन में निम्नलिखत मूल तत्त्व पाए जाते हैं—

(क) **अभित्यजन की स्थिति**—इसमें विवाह के किसी पक्षकार द्वारा स्थायी रूप से घर त्याग देना आवश्यक है। यदि पति-पत्नी साथ रहते हैं तो सहवास न करने से अभित्यजन नहीं माना जा सकता है। यदि पति-पत्नी एक ही घर में अपरिचितों की भाँति रहते हैं तो इसे अभित्यजन कहा जाएगा। इस परिस्थिति को उत्पन्न करनेवाला पक्षकार अभित्यजन का दोषी माना जाएगा।

(ख) **अभित्यजन का आशय**—पक्षकार की अभित्यजन की इच्छा भी होनी चाहिए। इसमें घर हमेशा के लिए छोड़ा जाता है तथा सहवास भी बंद हो जाता है। यदि पति व्यापार के लिए विदेश जाता है और व्यस्तता के कारण दो वर्षों तक पत्नी से मिल (सहवास) नहीं पाता है तो पति को अभित्यजन का दोषी नहीं माना जा सकता, क्योंकि यहाँ पर पति की अभित्यजन की इच्छा नहीं है।

(ग) **युक्तियुक्त कारण का अभाव**—अभित्यजन बिना किसी कारण के होना चाहिए। यदि पति अपनी पत्नी को भरण-पोषण का खर्च नहीं देता है तो पत्नी उसका घर त्याग देती है। यहाँ पर पत्नी अभित्यजन की दोषी नहीं है, क्योंकि उसने भरण-पोषण न देने के कारण घर छोड़ा है।

(घ) **आवेदक की सहमति के बिना**—अभित्यजन याचिकाकर्ता की सहमति के बिना होना चाहिए। यदि अभित्यजन में दूसरे पक्षकार की सहमति है तो उसे अभित्यजन नहीं माना जाएगा तथा इसका दोषी पहला पक्षकार नहीं होगा।

(ङ) **जान-बूझकर उपेक्षा**—यदि विवाह का कोई पक्षकार जान-बूझकर ऐसा कर रहा है तो उसे अभित्यजन का दोषी माना जाएगा।

(च) **दो वर्ष की अवधि**—यदि कोई पक्षकार अभित्यजन के आधार पर संबंध-विच्छेद करना चाहता है तो अभित्यजन लगातार दो वर्षों तक होना चाहिए।

हिंदू धर्म से अन्य धर्म ग्रहण करना—यदि विवाह का कोई पक्षकार हिंदू धर्म त्यागकर अन्य धर्म ग्रहण कर लेता है तो विवाह का दूसरा पक्षकार इस आधार पर न्यायालय से विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करवा सकता है। यहाँ पर ध्यान रखना चाहिए कि 'हिंदू' शब्द में बौद्ध, जैन और सिख शामिल हैं।

मानसिक विकार—यदि विवाह का कोई पक्षकार मानसिक रूप से इस प्रकार पीड़ित है कि वह भविष्य में स्वस्थ नहीं हो सकता, तो विवाह का दूसरा पक्षकार विवाह-विच्छेद का अधिकारी हो जाता है।

मानसिक विकार में उन्मत्तता, मिरगी, मानसिक रोग, मस्तिष्क संरोध, मस्तिष्क का अपूर्ण विकास, मनोविकृति आदि शामिल हैं। यदि कोई पक्षकार इनसे पीड़ित है तथा स्वस्थ होने की संभावना नहीं है तो दूसरा पक्षकार इस आधार पर विवाह-विच्छेद का अधिकारी हो जाता है।

उग्र और असाध्य कुष्ठ रोग—यदि विवाह का कोई पक्षकार असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित हो जाता है तो दूसरा पक्षकार विवाह-विच्छेद का अधिकारी हो जाता है।

स्वराज लक्ष्मी बनाम डॉ. जी.जी. पद्‌मराव के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उग्र और असाध्य कुष्ठ रोग का उपचार संभव नहीं है, जो उस रुग्णावस्था का द्योतक है जब छाले उभर आते हैं और अंग गलने लगता है, तब उस अवस्था में सामाजिक सम्मिलन लगभग असंभव हो जाता है।

रोग—जब विवाह का कोई पक्षकार संक्रामक, यौन रोग से पीड़ित हो जाता है तो दूसरा पक्षकार इस आधार पर तलाक की माँग कर सकता है। अत: संक्रामक, प्रचंड, तीव्र यौन रोग के आधार पर विवाह का दूसरा पक्षकार विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का अधिकारी होता है।

धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण करना—यदि विवाह का कोई पक्षकार धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार हमेशा के लिए गृह-त्याग कर देता है या संन्यासी बन जाता है तो दूसरा पक्षकार विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकता है।

महंत शीतलदास बनाम संतदास ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 606 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब कोई व्यक्ति हिंदू धर्म के अनुसार वानप्रस्थ आश्रम या संन्यासाश्रम ग्रहण कर लेता है तब उस व्यक्ति की सांसारिक मृत्यु मानी जाती है। इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री जारी की जा सकती है।

उपधारित मृत्यु (लापता)—जब दूसरे पक्षकार के बारे में सात वर्ष या

इससे अधिक की अवधि में उन लोगों ने न सुना हो कि वह जीवित है, जो उसके बारे में, यदि वह जीवित होता तो स्वभावत: सुनते, तब उसकी मृत्यु के बारे में उपधारणा कर ली जाती है।

जब विवाह का कोई पक्षकार लगातार सात वर्षों तक लापता रहता है तथा उसके जीवित होने के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है (जो कि उसके जीवित होने पर मिलती) तो उसे मृत मान लिया जाता है। न्यायालय इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री जारी कर देता है। अत: यदि लापता व्यक्ति सात वर्षों में न तो देखा गया हो और न ही सुना गया हो, तो विवाह का दूसरा पक्षकार विवाह-विच्छेद का अधिकारी हो जाता है।

अप्राकृतिक व्यभिचार—यह अधिकार केवल हिंदू पत्नी को ही प्राप्त है। कोई पति अपने पत्नी से विवाह-विच्छेद इस आधार पर कर सकती है कि उसका पति बलात्संग, गुदा मैथुन, पशु-गमन का दोषी रहा है। यदि कोई व्यक्ति (पति) इस प्रकार का व्यभिचार मात्र एक बार कर लेता है तो उसकी पत्नी उससे विवाह-विच्छेद करने की अधिकारिणी हो जाती है। विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने के लिए पति का आपराधिक काररवाई में दोष सिद्ध होना आवश्यक नहीं है।

पति-पत्नी की पारस्परिक सहमति से तलाक—यदि विवाह के पक्षकार वैवाहिक संबंधों को बनाए रखना उचित नहीं समझते हैं तो वे पारस्परिक सहमति से विवाह विघटन की याचिका जिला न्यायालय में प्रस्तुत कर सकते हैं। जिला न्यायालय ऐसी अरजी प्राप्त होने के छह माह बाद तथा अठारह माह के भीतर दोनों पक्षकारों को सुनकर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर देगा। इस विवाह-विच्छेद की सहमति स्वतंत्र होनी चाहिए। यह सहमति छल-कपट से ली गई नहीं होनी चाहिए। यदि सहमति छल-कपट से ली गई है तो विवाह-विच्छेद नहीं किया जाएगा। इस प्रकार के विवाह-विच्छेद में पति-पत्नी एक वर्ष तक अलग-अलग रहने चाहिए तथा इसको सिद्ध करना भी आवश्यक है। इस आवेदन में उन परिस्थितियों का भी वर्णन होना चाहिए, जिनके आधार पर वे साथ-साथ नहीं रह सकते हों।

रवि शंकर बनाम शारदा ए.आई.आर. 1978, मध्य प्रदेश 44 के मामले में कहा गया कि यदि किसी पक्षकार ने विवाह-विच्छेद की सहमति वापस ले ली है (ले सकता है) तो धारा 13(ख) के तहत विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं की जा सकती है।

न्यायिक पृथक्करण—यह विवाह-विच्छेद से अलग होता है। इसमें पति-पत्नी को न्यायालय की डिक्री के द्वारा सहवास के भार से मुक्त कर दिया जाता है।

न्यायिक पृथक्करण के वे ही आधार हैं, जो कि विवाह-विच्छेद के हैं। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(क) के अनुसार न्यायालय विवाह-विच्छेद की याचिका पर परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित कर सकेगा। इस डिक्री द्वारा न्यायालय विवाह के पक्षकारों को अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का अवसर देता है। इस डिक्री से पक्षकारों के वैवाहिक अधिकार समाप्त नहीं होते हैं, बल्कि वे स्थगित हो जाते हैं।

न्यायिक पृथक्करण के निम्नलिखित वैध आधार हैं—

- किसी पक्षकार द्वारा जारकर्म करना [धारा 13 (1)]
- दो वर्षों तक अभित्याग करना [धारा 13 (1) (i ख)]
- धर्म बदल लेना [धारा 13 (1) (ii)]
- मानसिक रूप से विकृत होना [धारा 13 (1) (iii)]
- असाध्य कुष्ठ रोग होने पर [धारा 13 (1) (iv)]
- यौन रोग से गंभीर रूप से पीड़ित होना [धारा 13 (1) (v)]
- संन्यासी हो जाना [धारा 13 (1) (vi)]
- सात वर्षों तक लापता रहना [धारा 13 (1) (vii)]

□

17

उपभोक्ता संरक्षण कानून

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पारित करने का सबसे मुख्य कारण यह रहा कि उपभोक्ता को शोषण से बचाया जाए। बाजार में व्यापारियों की बढ़ती मुनाफाखोरी और शोषण की प्रवृत्ति से उपभोक्ता को बचाने के लिए एक कानून की आवश्यकता महसूस की गई। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय संसद् ने 24 दिसंबर, 1986 को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पारित किया। इसीलिए 24 दिसंबर को 'उपभोक्ता दिवस' मनाया जाता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम पारित होने से पहले बाजार में व्यापारी, ठेकेदार, औद्योगिक इकाइयाँ ग्राहक को नकली माल बेच देते थे और अधिक-से-अधिक लाभ कमा लेते थे। व्यापारी वर्ग बेहिचक ग्राहक से वस्तु पर अंकित मूल्य से अधिक पैसे वसूल करता था। दुकानदार के द्वारा खराब माल भी ग्राहक को बेच दिया जाता था और ग्राहक कुछ नहीं कर पाता था। अस्पतालों में डॉक्टर या अस्पताल के कर्मी की लापरवाही से मरीज को शारीरिक एवं मानसिक कष्ट होता था और कई बार अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता था; किंतु बेचारा मरीज अस्पताल प्रबंधकों के खिलाफ कोई काररवाई नहीं कर पाता था। लेकिन अब उपभोक्ता इस कानून के माध्यम से शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद कर न्याय प्राप्त कर सकता है।

लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एम.के. गुप्ता (1994) के मामले में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के उद्देश्यों पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उपभोक्ता के हितों की व्यापक रूप से रक्षा होनी चाहिए और इस कानून का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ता को हुई हानि का निर्धारण करना भी है।

अदालतों की बारीकियों से उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 को दूर रखा गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय न्यायालयों की प्रक्रिया बहुत ही विलंबकारी और महँगी है। इस कारण आम व्यक्ति इससे डरता है और न्यायालय में

अपना मुकदमा नहीं ले जाना चाहता है। इन सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के द्वारा उपभोक्ता को औपचारिक काररवाई से मुक्ति प्रदान की गई है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर शेष भारत में लागू है। यह कानून केंद्र-शासित प्रदेशों पर भी समान रूप से लागू है। यह कानून सभी वस्तुओं की खरीदारी एवं सेवाओं पर लागू होता है; लेकिन यदि सरकार किसी वस्तु या सेवा को इस अधिनियम से मुक्त कर देती है तो उस मुक्त हुई वस्तु या सेवा पर यह कानून लागू नहीं होता है।

उपभोक्ता कानून नौकर, कर्मचारी, मुफ्त सेवा या मुफ्त में मिली वस्तु पर लागू नहीं होता है। कंज्यूमर यूनिटी ऐंड ट्रस्ट सोसाइटी बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान के मामले में कहा गया कि यदि रोगियों को अस्पताल में मुफ्त सेवा दी जाती है तो रोगी उपभोक्ता नहीं माना जा सकता है।

उपभोक्ता कानून के अनुसार केवल वही व्यक्ति उपभोक्ता माना जाता है, जो वस्तु की कीमत या मूल्य चुकाता है या आधी कीमत चुकाता है या वस्तु की कीमत किस्तों (किस्तों की संख्या कितनी भी हो सकती है) में चुकाता है या पूरा मूल्य चुकाने का वायदा (वायदा पूरा करने का समय भी तय नहीं है) करता है।

उदाहरण—'क' बाजार से एक टी.वी. रुपए देकर खरीदता है। यहाँ पर 'क' उपभोक्ता है। वह व्यक्ति, जो मूल्य चुकाकर वस्तु या सेवा का क्रय करता है, 'उपभोक्ता' कहलाता है। इस कानून का लाभ केवल उसी व्यक्ति को मिलता है, जो उपभोक्ता है—अर्थात् उस व्यक्ति को लाभ मिलता है, जो वस्तु का उपभोग मूल्य चुकाकर करता है।

उदाहरण—'ख' बाजार से उधार में मिक्सी खरीदता है और वह खराब हो जाती है, तो 'ख' इस कानून के अंतर्गत उपभोक्ता माना जाएगा और उपभोक्ता कानून का लाभ लेकर दुकानदार से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

उपर्युक्त उदाहरण में 'ख' यदि मिक्सी नकद भुगतान करके या किस्तों में खरीदता, तो भी वह उपभोक्ता माना जाता। अत: कीमत का भुगतान कर वस्तु या सेवा का प्रत्यक्ष एवं अंतिम उपभोग करनेवाला व्यक्ति उपभोक्ता कहलाता है।

यदि कोई वस्तु गारंटी या वारंटी के समय में खराब हो जाती है तो उपभोक्ता दुकानदार के विरुद्ध काररवाई कर सकता है। यदि कोई वस्तु गारंटी की अवधि में खराब हो जाती है तो दुकानदार गारंटी की शर्तों के अनुसार वस्तु बदलने के लिए बाध्य होता है। यदि कोई वस्तु वारंटी की अवधि में खराब हो जाती है तो दुकानदार को वस्तु की आवश्यक मरम्मत कराना जरूरी है।

उदाहरण—'च' एक पंखा मै. 'क' ऐंड कंपनी से खरीदता है। कंपनी पंखे की वायरिंग की दो वर्ष की गारंटी देती है। पंखे की क्वाइल प्रथम छह माह में ही जल जाती है। यहाँ पर कंपनी को गारंटी की शर्त के अनुसार पंखे की क्वाइल बदलनी होगी। यदि मै. 'क' ऐंड कंपनी गारंटी की शर्त के अनुसार क्वाइल नहीं बदलती है तो 'च' उसके खिलाफ उपभोक्ता अदालत में काररवाई कर सकता है।

उपर्युक्त उदाहरण में यदि पंखे की दो वर्ष की वारंटी होती तो कंपनी क्वाइल की मरम्मत करने के लिए बाध्य होती, अर्थात् वारंटी में वस्तु की मरम्मत की जाती है और गारंटी में वस्तु उसकी शर्तों के अनुसार बदली जाती है।

इसी प्रकार बाट-माप कानून के अनुसार सामान के साथ पैकिंग का वजन करना भी गैर-कानूनी है। यदि कोई दुकानदार वस्तु के साथ पैकिंग (पैकिंग, डिब्बे, कागज आदि) को भी तौलता है तो उपभोक्ता ऐसे दुकानदार के खिलाफ काररवाई कर सकता है। वस्तु के साथ वस्तु की पैकिंग को तौलना उपभोक्ता का शोषण माना जाता है।

भाड़े पर ली गई सेवाओं पर भी यह कानून लागू होता है। इस कानून में कोई ऐसा व्यक्ति उपभोक्ता नहीं माना जाएगा, जो वस्तु का क्रय उस वस्तु को दोबारा बेचने के लिए करता है।

उदाहरण—'इ' साड़ियों का एक सेट अपने घर पर बेचने के लिए खरीदती है तो वह उपभोक्ता कानून के अंतर्गत उपभोक्ता नहीं मानी जाएगी।

'उपभोक्ता' शब्द को समझने के लिए एक अन्य उदाहरण देखकर आपको मालूम होगा कि व्यापार करने के लिए खरीदे गए उपकरण व्यापारी को भी उपभोक्ता की श्रेणी में ला देते हैं; लेकिन सामान्यत: दोबारा बेचने के लिए वस्तुओं का क्रय करनेवाला व्यक्ति उपभोक्ता नहीं माना जाता है।

उदाहरण—'अ' अपने पी.सी.ओ. में उपयोग के लिए एक टेलीफोन और फैक्स मशीन खरीदता है। ये उपकरण उस क्वालिटी के नहीं निकलते हैं जैसा कि दुकानदार ने बताया था। 'अ' उपभोक्ता कानून की मदद से दुकानदार से हरजाना वसूल कर सकता है।

उपर्युक्त उदाहरण में 'अ' को व्यवसायी नहीं माना जाएगा, क्योंकि यहाँ पर 'अ' उन मशीनों को दोबारा बेचने के लिए नहीं खरीदता है, बल्कि अपनी आजीविका चलाने के लिए उपभोग में लाता है।

आजीविका या रोजगार प्राप्त करने के लिए सामान खरीदनेवाला व्यक्ति उपभोक्ता की श्रेणी में आता है। वह व्यक्ति उपभोक्ता नहीं माना जाता है, जो माल

को पुन: बेचने के लिए माल क्रय करता है। राजीव मेटल वर्क्स बनाम मिनरल ऐंड मेटल ट्रेडिंग कॉरपोरेशन के मामले में मिनरल ऐंड मेटल ट्रेडिंग कंपनी एक सरकारी कंपनी है, जो विदेशों से सामान मँगवाकर भारतीय उद्योगों को देती है।

उक्त कंपनी से राजीव मेटल वर्क्स ने 300 मीट्रिक टन माल मँगवाने की प्रार्थना की, लेकिन उक्त सरकारी कंपनी ने 50 मी. टन माल देने की स्वीकृति दी और 250 मी. टन माल सीधा ही आयात करने को कहा; लेकिन विदेशी कंपनी ने राजीव मेटल वर्क्स को माल भेजने से इनकार कर दिया। इसपर सरकारी कंपनी ने राजीव मेटल वर्क्स को केवल 20 प्रतिशत माल देने की बात कही। राजीव मेटल वर्क्स ने केवल 20 प्रतिशत माल लेने से इनकार कर दिया और राष्ट्रीय आयोग में शिकायत दर्ज करवाई, लेकिन राष्ट्रीय आयोग ने यह मामला नहीं चलाया; क्योंकि उसकी दृष्टि में यह मामला उपभोक्ता कानून का नहीं था।

राजीव मेटल वर्क्स ने इस मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में की। उच्चतम न्यायालय के कानून के विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा है कि मामला उपभोक्ता संरक्षण कानून के अंतर्गत नहीं आता है, बल्कि व्यापारिक विवादों में आता है। अत: इस मामले को इस कानून के अंतर्गत नहीं चलाया जा सकता।

ए. श्रीनिवास मुर्थी बनाम बंगलौर डेवलपमेंट अथॉरिटी मामले में बिजली के तारों से एक भैंस की मौत हो गई, तो न्यायालय ने भैंस के मालिक को उपभोक्ता नहीं माना।

उदाहरण—'क' अपनी दुकान में उपयोग के लिए एक तिजोरी/गोलक खरीदता है तो यहाँ पर 'क' इस कानून के अंतर्गत उपभोक्ता माना जाएगा। यदि 'क' गोलक (यह सामान) अपनी दुकान में बेचने के लिए खरीदता है तो रामलाल को इस कानून का लाभ नहीं मिलेगा। इस स्थिति में यदि 'क' द्वारा क्रय गोलक खराब क्वालिटी का निकल जाता है तो 'क' किसी अन्य कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत काररवाई कर सकता है, लेकिन उपभोक्ता कानून के अंतर्गत काररवाई नहीं कर सकता है।

कई बार ऐसा होता है कि दुकानदार किसी वस्तु को एगमार्क, हॉल मार्क, आई.एस.आई. मार्क, एफ.पी.ओ. मार्क की बात बताकर घटिया वस्तु बेच देता है। दवा विक्रेता टाइम बारड ओषधि बेच देता है। इस प्रकार की घटना से पीड़ित उपभोक्ता दुकानदार के खिलाफ उपभोक्ता अदालत में काररवाई कर सकता है।

उपभोक्ता को हमेशा मानकीकृत वस्तुएँ खरीदनी चाहिए। बाजार में कई प्रकार के गुणवत्ता चिह्न प्रचलित हैं, जैसे—आई.एस.आई. मार्क, वूलन मार्क, एगमार्क, एफ.पी.ओ. मार्क आदि। माल खरीदते समय उपभोक्ता को माल का बिल या रसीद

या बाउचर अवश्य लेना चाहिए, ताकि भविष्य में उपभोक्ता न्यायालय में विक्रेता के खिलाफ काररवाई करने में बाधा न आए।

एफ.पी.ओ. मार्क एगमार्क आई.एस.आई. मार्क हॉल मार्क

दुकानदार या व्यापारी से शोषित व्यक्ति यदि उपभोक्ता फोरम (अदालत) में शिकायत करता है तो उसे 'शिकायतकर्ता' कहा जाता है और फोरम में व्यापारी के खिलाफ उपभोक्ता द्वारा लगाए गए आरोप (लिखित में) को 'शिकायत' कहा जाता है।

उपभोक्ता अदालत में निम्नलिखित शिकायतें लिखित में दर्ज करवाई जा सकती हैं—

1. माल खराब (दोषयुक्त) होने की शिकायत।
2. किराए पर ली गई सेवा में कमी पाए जाने की शिकायत।
3. दुकानदार द्वारा माल पर अंकित (दर्ज) मूल्य से अधिक मूल्य वसूलने की शिकायत।
4. किसी कानून के तहत वस्तु की निर्धारित कीमत से अधिक कीमत वसूलने की शिकायत।
5. घटिया क्वालिटी की ओषधि या माल की शिकायत।
6. यदि किसी कानून के अंतर्गत यह प्रावधान हो कि उस माल पर वस्तु के उपयोग की विधि या प्रभावों का वर्णन किया जाना चाहिए, लेकिन उस वस्तु के उत्पादनकर्ता व्यापारी द्वारा उसका उल्लेख नहीं किए जाने की शिकायत।
7. किसी व्यापारी के अनुचित व्यापार-व्यवहार की शिकायत।

अनुचित व्यापार-व्यवहार को इस पुस्तक में आगे विस्तार से समझाया गया है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत निम्नांकित व्यक्ति घटिया या निम्न श्रेणी के माल की शिकायत उपभोक्ता फोरम (उपभोक्ता अदालत) में दर्ज करवा सकते हैं—

- कोई भी ऐसा व्यक्ति, जो इस कानून के अनुसार उपभोक्ता की श्रेणी में आता है।
- कोई स्वयंसेवाभावी उपभोक्ता एसोसिएशन या संगठन या क्लब जो कंपनी कानून के अंतर्गत रजिस्टर्ड हो।
- केंद्र या राज्य सरकार।
- उपभोक्ता की ओर से अन्य कोई व्यक्ति।
- एक ही प्रकार के फायदे (हित) के लिए सभी व्यक्तियों की ओर से (जब मामले में कई व्यक्ति शामिल हों, अर्थात् जब कई उपभोक्ता एक ही घटना से पीड़ित हों तो) केवल एक व्यक्ति भी उपभोक्ता अदालत में वाद ला सकता है या अपनी प्रतिरक्षा (विपक्षी होने पर) कर सकता है।

इस प्रकार जब एक व्यक्ति उपभोक्ता फोरम (अदालत) में वाद चलाता है तो वह ऐसा वाद न्यायालय की आज्ञा से या उन सभी व्यक्तियों की इच्छा से दायर कर सकता है। ऐसा करने के लिए उपभोक्ता अदालत आदेश भी दे सकती है।

उदाहरण—'क', 'ख', 'ग', 'घ', 'च' किसी एक दुकानदार से पंप खरीदते हैं। इन सभी के द्वारा खरीदे गए पंप वारंटी समय में ही खराब हो जाते हैं और दुकानदार पंप सेटों की मरम्मत करने से इनकार कर देता है। इस परिस्थिति में इन पाँचों की राय से कोई एक व्यक्ति उपभोक्ता अदालत में मामला चला सकता है या अदालत ऐसा करने का आदेश भी दे सकती है।

ऐसे मामलों में नियुक्त व्यक्ति यदि उचित प्रकार से अपेक्षित कार्य नहीं करता है तो अदालत ऐसी स्थिति में किसी अन्य व्यक्ति को काररवाई करने के लिए नियुक्त कर सकती है, अर्थात् उपभोक्ता फोरम किसी एक मामले में समान हित रखनेवाले उपभोक्ताओं की ओर से किसी एक व्यक्ति को वाद (मामले या शिकायत) की काररवाई करने का आदेश दे सकता है या ऐसी प्रार्थना स्वीकार कर सकता है।

उपभोक्ता कानून उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान करता है। यह कानून व्यापारी वर्ग को माल पर अंकित मूल्य से अधिक मूल्य वसूलने से भी रोकता है।

उदाहरण—'च' बाजार से एक कूलर खरीदता है, लेकिन दुकानदार 'च' की अज्ञानता के कारण कूलर की कीमत 1200 रुपए वसूलता है, जबकि कूलर पर लोकल टैक्स सहित मूल्य 800 रुपए अंकित होता है। यहाँ पर दुकानदार ने 'च' का शोषण किया है। 'च' दुकानदार की शिकायत उपभोक्ता अदालत में कर सकता है और अपने शोषण का हरजाना वसूल सकता है। 'च' को अपना मामला अदालत में सिद्ध करने के लिए बिल की आवश्यकता होगी। अत: **माल खरीदते समय प्रत्येक**

उपभोक्ता को माल खरीद का बिल अवश्य लेना चाहिए।

उपभोक्ता कानून उपभोक्ता को सूचना पाने का भी अधिकार देता है। जैसा कि माल की मात्रा, माल का मूल्य, बैच नं., एक्सपायर डेट, उपयोग की विधि, वैधानिक जानकारी आदि। यह कानून माल उत्पादनकर्ता से अपेक्षा करता है कि वह उपभोक्ता को माल के बारे में संपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराए।

उदाहरण—'क' के भौंह और सिर के बाल सफेद हो गए थे और इन बालों को काला करने के लिए 'क' ने बाल काला करनेवाली काली मेहँदी खरीदी। 'क' ने इस काली मेहँदी का प्रयोग भौंह के बालों को काला करने में किया, इससे 'क' की आँखों की रोशन चली गई। यहाँ पर 'क' के सूचना पाने के अधिकार का हनन हुआ है; क्योंकि काली मेहँदी बनानेवाली कंपनी यदि काली मेहँदी के पैकेट पर इसके उपयोग की विधि और इसके प्रभावों का वर्णन करती तो 'क' की आँखों की रोशनी नहीं जाती। 'क' ने उपभोक्ता अदालत में काली मेहँदी बनानेवाली कंपनी के खिलाफ शिकायत की। 'क' ने न्यायालय में तर्क दिया कि काली मेहँदी बनानेवाली कंपनी को काली मेहँदी के पैकेट पर यह लिखना चाहिए था कि 'काली मेहँदी का प्रयोग आँखों के आस-पास न करें। यदि कंपनी ने ऐसा किया होता तो 'क' की आँखों को क्षति नहीं पहुँचती।'

उपभोक्ता कानून उत्पादकों से यह भी अपेक्षा करता है कि वे उपभोक्ता को माल के गुणों एवं अवगुणों की सूचना उपलब्ध कराएँ। यदि वे सूचना उपलब्ध नहीं करवाते हैं तो इस कानून के अंतर्गत उनको दंडित किया जा सकता है।

उदाहरण—'अ' एक मसाले का लगातार दस वर्षों तक सेवन करता रहा। उसे दस वर्षों के बाद पता चला कि वह कैंसर का रोगी बन चुका है। 'अ' ने उपभोक्ता अदालत में मसाला बनानेवाली कंपनी पर वाद चलाया और कहा कि कंपनी ने मसाले के बारे में पूरी सूचना नहीं दी।

उपर्युक्त मामले में यदि मसाला बनानेवाली कंपनी इसके दुष्प्रभावों का वर्णन करती तो शायद 'अ' कैंसर से ग्रस्त नहीं होता। अत: उपभोक्ता कानून उपभोक्ता को पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का अधिकार देता है।

यदि कोई उत्पादक उपभोक्ता को गलत सूचना देकर माल बेचता है तो वह उत्पादक या दुकाननदार इस कानून के अंतर्गत अपराधी माना जाएगा और उसे उपभोक्ता को उपभोक्ता न्यायालय के आदेशानुसार हरजाना देना पड़ेगा।

उदाहरण—एक दुकानदार आटे का एक पैकेट 5 कि.ग्रा. का बताकर बेचता है, जबकि वह आटे का पैकेट वास्तव में 4 कि. 800 ग्राम का होता है। 'ख' ऐसा

एक पैकेट उक्त दुकानदार से खरीद लेता है और उसे वास्तविकता मालूम हो जाती है। 'ख' उपभोक्ता अदालत में उक्त दुकानदार की शिकायत करता है तो उपभोक्ता न्यायालय व्यापारी के इस कार्य को उपभोक्ता का शोषण मानता है और 'ख' को दुकानदार से हरजाना भी दिलवाता है।

अत: स्पष्ट है कि उपभोक्ता कानून उपभोक्ता को शोषण के विरुद्ध भी अधिकार देता है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 उपभोक्ता को अनुचित व्यापार-व्यवहार से भी बचाता है। यदि कोई दुकानदार या उत्पादक किसी उपभोक्ता के साथ अनुचित व्यापार-व्यवहार करता है तो उस दुकानदार या उत्पादनकर्ता के खिलाफ उपभोक्ता फोरम में शिकायत करके हरजाना प्राप्त किया जा सकता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत निम्नांकित कार्यों को अनुचित व्यापार-व्यवहार कहा जाता है। इस कानून में उपभोक्ता को इनके खिलाफ सुरक्षा प्रदान की गई है—

1. माल की गुणवत्ता या गुण के बारे में कोई झूठी बात उपभोक्ता को बताना।
2. माल या सेवा के बारे में कोई झूठा (मिथ्या) मापदंड बताना।

उदाहरण—'प' को एक दुकानदार इलेक्ट्रिक उपकरण यह कहकर बेच देता है कि यह उपकरण आई.एस.आई. मार्कावाला है, जबकि उपकरण की क्वालिटी आई.एस.आई. मार्कावाली न होकर घटिया स्तर की होती है। इस मामले में दुकानदार का यह कार्य अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाएगा और 'प' उपभोक्ता न्यायालय की सहायता लेकर दुकानदार से हरजाना प्राप्त कर सकता है।

3. किसी व्यापारी द्वारा किसी वस्तु को उसके झूठे लाभ और गुण बताकर बेचना, जबकि वे लाभ और गुण वस्तु में मौजूद ही न हों।

उदाहरण—'स' को एक व्यापारी एक मोटरसाइकिल यह बताकर बेचता है कि मोटरसाइकिल का औसत 90 किलोमीटर प्रति लीटर है, जबकि वास्तव में उसका औसत 50 किलोमीटर प्रति लीटर मिलता जाता है। यहाँ व्यापारी का यह कृत्य अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाएगा और 'स' उपभोक्ता अदालत के माध्यम से अपने साथ हुए धोखे की क्षतिपूर्ति उस व्यापारी से वसूल कर सकता है। 'स' के पास व्यापारी के इस मिथ्या कथन का प्रमाण होना आवश्यक है, जिससे वह अदालत में अपना मामला सिद्ध कर सके। जैसे—मोटरसाइकिल कंपनी का विज्ञापन, जिसमें मोटरसाइकिल के गति औसत के बारे में बताया गया हो या मोटरसाइकिल का ऐसा कोई कागजात, जिसमें उसके औसत आदि का वर्णन हो।

4. किसी दूसरी कंपनी/व्यापारी/फर्म के माल के बारे में कोई भ्रमपूर्ण या झूठी

बात कहना या भ्रमपूर्ण तथ्य पेश करना भी अनुचित व्यापार-व्यवहार की श्रेणी में आता है।

उदाहरण—'अ' कंपनी अपने एक विज्ञापन में 'ब' कंपनी की मोटर-साइकिल को बेकार, खराब, कमजोर और खटारा बताती है और यह भी प्रचार-प्रसार करती है कि हमारी कंपनी की मोटरसाइकिल का औसत 'ब' कंपनी की मोटरसाइकिल से अधिक है, तो कंपनी 'अ' का यह कार्य अनुचित व्यापार-व्यवहार कहा जाएगा।

उपर्युक्त उदाहरण में 'ब' कंपनी 'अ' कंपनी के खिलाफ अदालत में काररवाई कर सकती है।

5. किसी वस्तु की गारंटी के बारे में या मरम्मत करने के बारे में झूठी बात कहना और समय आने पर इस कथन (वचन) का पालन न करना भी अनुचित व्यापार-व्यवहार की श्रेणी में आता है।

उदाहरण—एक कंपनी अपनी दिवार घड़ी को दो वर्ष की गारंटी देकर बेचती है और दावा करती है कि यदि दिवार घड़ी दो वर्षों में खराब हो जाए तो पूरा मूल्य ग्राहक को वापस देगी; लेकिन दिवार घड़ी खराब होने पर 'अ' नामक उपभोक्ता को कंपनी मूल्य वापस नहीं देती है। यहाँ पर दिवार घड़ी कंपनी का यह व्यवहार अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाएगा। 'अ' उपभोक्ता अदालत में अपना मामला पेश कर कंपनी से दूसरी दिवार घड़ी या हरजाना या मूल्य वापस अथवा दोनों (जैसा अदालत फैसला देती है) प्राप्त कर सकता है।

6. वस्तु की गारंटी यदि उत्पादनकर्ता द्वारा वस्तु के रैपर/बॉक्स/कार्टून/पत्री पर दी गई है, लेकिन वस्तु की गुणवत्ता उसके अनुसार नहीं है, तो व्यापारी या उत्पादक का यह व्यवहार भी अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाएगा।
7. झूठा और भ्रामक विज्ञापन देना भी अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाता है, क्योंकि उपभोक्ता विज्ञापन से प्रभावित होकर माल का क्रय कर सकता है। यदि किसी वस्तु में गुण उस वस्तु के विज्ञापन में दरशाए अनुसार नहीं मिलते हैं तो उस वस्तु का उपभोक्ता व्यापारी से हरजाना प्राप्त कर सकता है। विज्ञापन देनेवाली कंपनी या संस्था का यह कार्य अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाता है।
8. यदि व्यापारी या दुकानदार माल को बेचने या सेवा उपलब्ध कराने से इनकार करता है तो ऐसा करना अनुचित व्यापार-व्यवहार माना जाता है; लेकिन यहाँ पर अनुचित व्यापार-व्यवहार तभी माना जाएगा जब

उत्पादनकर्ता या व्यापारी का उद्‌देश्य माल की कीमत बढ़ाना हो।

9. यदि माल निर्धारित मापदंडों या मानकों के अनुसार नहीं मिलता है तो इस प्रकार के माल बेचने की प्रक्रिया अनुचित व्यापार-व्यवहार मानी जाती है।
10. यदि कोई व्यापारी किसी माल को विदेशी ब्रॉण्ड का बताकर बेचता है, जबकि उक्त माल विदेशी ब्रॉण्ड का नहीं पाया जाता है। यदि कोई व्यापारी पुराने माल को नया माल बताकर बेचता है तो उपर्युक्त दोनों कार्य अनुचित व्यापार-व्यवहार की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार की घटना का शिकार उपभोक्ता इस उपभोक्ता कानून का लाभ बड़ी आसानी से प्राप्त कर सकता है।

उपभोक्ता कानून पारित होने से पहले कानून में एक उक्ति (कहावत) प्रचलित है—Caveant Emptor—जिसका अर्थ है 'क्रेता सावधान रहे' अर्थात् माल का क्रय करनेवाले व्यक्ति को सावधानीपूर्वक खरीदारी करनी चाहिए और यदि वह माल क्रय करने में सावधानी नहीं बरतता है तो उसे ही नुकसान उठाना पड़ेगा; लेकिन अब उपभोक्ता कानून बनने के बाद यह उक्ति बदल गई है और इसका नया रूप Caveant Venditor हो गया है, जिसका अर्थ है 'विक्रेता सावधान रहें' अर्थात् विक्रेता अंतिम उपभोक्ता को हुई किसी भी प्रकार की क्षति के लिए जिम्मेदार होगा।

पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी उपभोक्ता उसको हुई हानि का हरजाना इस कानून के अलावा अन्य कानूनों से भी प्राप्त कर सकता है। उपभोक्ता कानून अन्य कानूनों को कम नहीं करता है। माल खरीदने से हुई हानि से संबंधित काररवाई संविदा अधिनियम 1872 और माल विक्रय अधिनियम 1931 के द्वारा भी की जा सकती है।

जो व्यक्ति माल खरीदता है और उपभोक्ता की श्रेणी में नहीं आता है, उस व्यक्ति को अपनी हानि के लिए सिविल कोर्ट में (संविदा अधिनियम 1872 और माल विक्रय अधिनियम 1931 या अन्य किसी कानून के अंतर्गत) मामला चलाना चाहिए।

सेवाओं को भाड़े या किराए पर लेनेवाला व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जाता है। ये सेवाएँ किसी भी प्रकार की हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, किसी प्राइवेट अस्पताल की सेवा, बस सेवा, रेल सेवा, डॉक्टर (निजी) की सेवा, होटल की सेवा, बिजली की सेवा आदि।

उपर्युक्त प्रकार की सेवाओं में कमी या खराबी पाए जाने पर उपभोक्ता अपने कष्टों एवं हुई असुविधाओं के लिए इस कानून की मदद से हरजाना प्राप्त कर सकता है; लेकिन नि:शुल्क सेवाओं के लिए उपभोक्ता इस कानून के अंतर्गत किसी प्रकार की काररवाई नहीं कर सकता है। इसी प्रकार कोई पुरस्कार प्राप्त करनेवाला व्यक्ति भी उपभोक्ता नहीं माना जाता है। पासपोर्ट का उपयोग करनेवाला व्यक्ति पासपोर्ट कार्यालय का उपभोक्ता नहीं माना जाता। पासपोर्ट को पासपोर्ट अधिनियम के अंतर्गत भारत सरकार की संपत्ति माना गया है। अत: पासपोर्ट का उपयोग करनेवाला कोई भी व्यक्ति उपभोक्ता नहीं माना जाता है।

उदाहरण—'क' के पति 'ख' की एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई। 'ख' ने एक कंपनी में जीवन बीमा पॉलिसी करवाई हुई थी और अपने जीवनकाल में बीमा कंपनी की सभी शर्तों का पालन कंपनी के नियमानुसार किया, लेकिन फिर भी कंपनी ने 'ख' की पत्नी 'क' को पॉलिसी का लाभ नहीं दिया और 'क' कंपनी के ऑफिस के चक्कर लगाती रही।

यहाँ पर 'क' के पास दो विकल्प हैं। पहला विकल्प यह कि वह अपना मामला किसी सिविल कोर्ट में चला सकती है और दूसरा विकल्प यह कि अपना मामला उपभोक्ता अदालत में चला सकती है। यहाँ पर विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि 'क' अपना मामला किसी सिविल कोर्ट में चलाती है और सिविल कोर्ट द्वारा मामला खारिज कर दिया जाता है तो 'क' अपना मामला दूसरी बार उपभोक्ता अदालत में नहीं चला सकती है। इसी प्रकार यदि 'क' का मामला उपभोक्ता अदालत में खारिज कर दिया जाता है तो वह मामला सिविल कोर्ट में नहीं चलाया जा सकता, अर्थात् उपभोक्ता किसी एक विकल्प का चुनाव कर सकता है और न्यायालय से फैसला होने पर दोबारा वही मामला किसी अन्य अदालत में नहीं चलाया जा सकता। यहाँ पर इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि पहली अदालत ने मामला स्वीकार किया है या अस्वीकार किया है, लेकिन उस मामले की अपील अवश्य की जा सकती है।

इंडियन मेडिकल ऐसोसिएशन बनाम वी.पी. संस्था के मामले में यह निर्णय दिया गया कि क्या रोगी व्यक्ति को उपभोक्ता माना जाए? इस मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा कि शुल्क लेकर सेवा उपलब्ध करानेवाले डॉक्टर एवं अस्पताल इस उपभोक्ता संरक्षण कानून के अंतर्गत आते हैं। ऐसे रोगी को उपभोक्ता माना जाएगा, जो शुल्क भुगतान करके चिकित्सकीय सेवाएँ प्राप्त करते हैं। इसी मामले में कहा गया कि सरकारी अस्पताल, जो नि:शुल्क चिकित्सकीय सेवा उपलब्ध कराते

हैं, इस कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं एवं ऐसे अस्पतालों में इलाज करानेवाले रोगी उपभोक्ता नहीं माने जाते हैं।

वैसे उपभोक्ता अदालतें कोर्ट फीस नहीं लेती हैं, लेकिन नवीन संशोधनों के अनुसार उपभोक्ता अदालतें कोर्ट फीस ले भी सकती हैं। उपभोक्ता अदालत में कोई भी उपभोक्ता अपनी शिकायत को निर्धारित तरीके से (जो आगे इसी पुस्तक में विस्तार से समझाया गया है) लिखित रूप में 4 से 5 प्रतियों में दर्ज करवा सकता है। इस काररवाई में किसी वकील की आवश्यकता नहीं होती है। उपभोक्ता अदालत में स्वयं उपभोक्ता अपनी पैरवी कर सकता है; लेकिन वकील से सलाह लेना अच्छा रहता है।

कोई भी यात्री, जो शुल्क देकर यात्रा करता है, उपभोक्ता की श्रेणी में आता है। प्रताप नारायण बनाम थॉमस कुक लि. के मामले में प्रताप नारायण ने लंदन से यूरोप की यात्रा करने के लिए थॉमस कुक लि. कंपनी में तीन सीटें बुक कराईं और कंपनी ने तीनों सीटों को ओ.के. भी कर दिया। प्रताप नारायण ने इस कार्य के लिए 15,000 रुपए कंपनी को भुगतान किए। थॉमस कुक लि. कंपनी ने बताया कि यात्रा शुरू करने के 48 घंटे पहले यात्रा का पूरा खर्चा जमा करवाकर आवश्यक कागजात प्राप्त कर लें। यात्रा से पहले प्रताप नारायण कंपनी के कार्यालय गए तो बताया गया कि उनकी तीनों सीटें रद्द की जा चुकी हैं, क्योंकि उन्होंने यात्रा शुरू होने से सात दिन पहले किराया जमा नहीं करवाया।

चूँकि प्रताप नारायण भारतीय थे, इसलिए उन्होंने दिल्ली पहुँचकर दिल्ली जिला मंच में अपना मामला पेश किया और अपने 15,000 रुपए तथा यात्रा खर्च का दावा किया। कंपनी ने अपने पक्ष में सफाई पेश की, लेकिन जिला फोरम ने थॉमस कुक लि. कंपनी द्वारा प्रताप नारायण को पूरे हरजाने का भुगतान करने का आदेश दिया।

लेकिन एस. पालानी स्वामी बनाम जी.एम. दक्षिण रेलवे के मामले में कहा गया कि कोई भी यात्री अपने सामान (लगेज) के संबंध में उपभोक्ता नहीं माना जाएगा। अर्थात् यात्रा करनेवाला व्यक्ति यात्रा कंपनी का उपभोक्ता माना जाता है, लेकिन वही व्यक्ति अपने सामान (जो कि वह साथ लेकर चलता है) के संबंध में उपभोक्ता नहीं माना जा सकता है, ऐसा फैसला उक्त मामले में दिया गया।

किसी ठेकेदार या बिल्डर या हाउसिंग बोर्ड से फ्लैट खरीदनेवाला व्यक्ति भी उपभोक्ता की श्रेणी में आता है और यदि बिल्डर कमजोर फ्लैट बेच देता है या घटिया निर्माण सामग्री से बना फ्लैट बेच देता है तो ऐसे फ्लैट का उपभोक्ता इस

कानून की सहायता प्राप्त कर सकता है।

तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड और एक अन्य बनाम पी. पार्थसारथी (1996) के वाद में पी. पार्थसारथी ने एक भूखंड के लिए तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड में आवेदन किया था। बोर्ड ने 25 प्रतिशत धनराशि जमा कराने का आदेश दिया। यह सूचना प्राप्त कर उपभोक्ता ने उक्त 25 प्रतिशत राशि जमा करवा दी।

उपभोक्ता को तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड ने अन्नानगर मद्रास में एक भूखंड आवंटित किया, लेकिन बोर्ड ने उपभोक्ता को भूखंड पर कब्जा नहीं दिया। इस कारण उपभोक्ता पी. पार्थसारथी ने अर्धवार्षिक किस्तों का भुगतान नहीं किया। कुछ समय बाद बोर्ड ने उक्त भूखंड का उपयोग एक सड़क निर्माण में कर लिया।

बोर्ड के इस कार्य को देखते हुए उपभोक्ता ने बोर्ड को कानूनी काररवाई करने की चेतावनी भरा एक पत्र लिखा। उपभोक्ता ने बोर्ड से एक वचन-पत्र लिया, जिसमें लिखा था कि बोर्ड के (उसके) पास कोई अन्य फ्लैट नहीं है, जबकि बोर्ड के पास एक अन्य फ्लैट उपलब्ध था। उपभोक्ता ने बोर्ड की सेवा में हुई भूल का हरजाना पाने के लिए 9 लाख रुपए का दावा राज्य आयोग में पेश किया तथा राज्य आयोग ने मामले को स्वीकार करते हुए 5 लाख रुपए 12 प्रतिशत ब्याज की दर से भुगतान करने का आदेश दिया।

उक्त आदेश के खिलाफ उपभोक्ता और तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड दोनों ने राष्ट्रीय आयोग में अपील की। राष्ट्रीय आयोग ने बोर्ड की अपील को खारिज करते हुए उपभोक्ता की अपील स्वीकार कर ली। राष्ट्रीय आयोग ने ब्याज की दर 12 प्रतिशत से बढ़ाकर 18 प्रतिशत कर दी। इस आदेश के खिलाफ तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड ने उच्चतम न्यायालय में अपील की।

उच्चतम न्यायालय ने मामले पर विचार करते हुए कहा कि बोर्ड की सेवा में कोई कमी या त्रुटि नहीं है और मामले में उपभोक्ता का आचरण इस प्रकार का नहीं रहा कि वह हरजाना प्राप्त करे। अत: उच्चतम न्यायालय ने दोनों आयोगों का फैसला खारिज कर दिया और बोर्ड को आदेश दिया कि वह एक माह के भीतर उपभोक्ता द्वारा जमा कराई गई रकम वापस उपभोक्ता को लौटा दे।

एक निचले न्यायालय के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में काररवाई करने को अपील कहते हैं।

डाक सेवा का उपयोग करनेवाला व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जाता है; क्योंकि वह मूल्य चुकाकर अपनी सामग्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजता है।

निवार्ड एंथोनी डिसिल्वा बनाम पोस्ट ऑफिस के मामले में निवार्ड एंथोनी डिसिल्वा को एयरपोर्ट ऑफिसर के रूप में नौकरी मिली थी। इस नौकरी की सूचना का टेलीग्राम (तार) पोस्ट ऑफिस की गलती के कारण बहुत देर से पहुँचा। निवार्ड एंथोनी डिसिल्वा के पिता ने बेलगाँव जिला मंच (कर्नाटक) में मामला चलाया और 99,000 रुपए के हरजाने की माँग की। जिला फोरम ने पूरे मामले पर विचार करके पोस्ट ऑफिस को आदेश दिया कि वह निवार्ड एंथोनी डिसिल्वा को 10,000 रुपए का भुगतान करे।

इसी प्रकार प्राइवेट डाक (कूरियर) की सेवा लेनेवाला व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जाता है और सेवा में कमी पाए जाने पर हरजाना प्राप्त कर सकता है।

एक मामले में प्रार्थी 'अ' ने सरकारी नौकरी के लिए एक कूरियर सर्विस के माध्यम से एक आवेदन भेजा। प्रार्थी 'अ' ने कूरियर सर्विस को डाक पहुँचाने की सेवा के लिए 15 रुपए शुल्क का भुगतान किया। इस 15 रुपए शुल्क की रसीद उक्त कूरियर सर्विस ने 'अ' को दी। सरकारी नौकरी के इंटरव्यू के लिए प्रार्थी 'अ' को नहीं बुलाया गया। प्रार्थी 'अ' ने सरकारी कार्यालय में पूछताछ की तो मालूम हुआ कि 'अ' का प्रार्थना-पत्र ऑफिस में आया ही नहीं। प्रार्थी 'अ' ने कूरियर सर्विस कंपनी से डाक वितरण के प्रमाण (ए.डी.) की माँग की, जो कूरियर कंपनी उपलब्ध नहीं करा सकी।

प्रार्थी 'अ' ने सेवा में त्रुटि और मानसिक परेशानी का हरजाना लेने के लिए जिला फोरम में मुकदमा दायर कर दिया। फोरम ने मामले और पेश सबूतों को देखते हुए कूरियर कंपनी को दोषी ठहराया और प्रार्थी 'अ' को 15,000 रुपए हरजाना तथा 2,000 रुपए मुकदमा खर्च कूरियर कंपनी से दिलवाया।

इस प्रकार उपभोक्ता अदालत किसी भी प्रकार की सेवा में हुई कमी के लिए सेवा देनेवाले व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराते हुए उपभोक्ता को हरजाना दिलवाती है।

पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि अदालत में मामला प्रमाणित करने के लिए आपके पास पर्याप्त सबूत (जैसे—बिल, गारंटी कार्ड एवं अन्य कागजात) होने चाहिए, वरना आप अदालत में अपना पक्ष साबित नहीं कर पाएँगे।

माल का क्रय करते समय बिल लेना कितना महत्त्वपूर्ण है, यह बात आप इस उदाहरण से समझ सकते हैं—

'अ' एक मेडिकल स्टोर से दवा खरीदता है, लेकिन दवा का बिल नहीं लेता है। 'अ' जब वह दवा चिकित्सक के निर्देशों के अनुसार अपने बेटे को देता है तो उसके लड़के की तबीयत और अधिक खराब हो जाती है। बाद में उसे मालूम होता

है कि दवा विक्रेता ने उसको नकली दवा बेच दी थी और पैसे भी ज्यादा वसूल कर लिये थे।

'अ' ने शपथ-पत्र के आधार पर दवा विक्रेता के खिलाफ उपभोक्ता अदालत में अपना मामला चलाया; लेकिन अदालत में दवा विक्रेता ने साफ झूठ कह दिया कि उसने 'अ' को दवा का विक्रय नहीं किया। 'अ' ने दवा किसी और विक्रेता से खरीदी होगी। 'अ' अपनी शिकायत उपभोक्ता अदालत में साबित नहीं कर पाया।

अत: आज के समय में दवा जैसे संवेदनशील माल को खरीदते समय माल का बिल अवश्य लेना चाहिए। इसका कारण यह है कि दवा जैसे माल की वारंटी/गारंटी जैसी माँग भी नहीं हो सकती, जैसे—दवा दो वर्ष तक चलेगी या दवा का सेवन करने पर मरीज रोग-मुक्त हो जाएगा आदि-आदि।

अत: माल, वस्तु, दवा का क्रय करते समय ग्राहक को दुकानदार से इन वस्तुओं का पक्का बिल अवश्य ले लेना चाहिए (सादे कागज पर रफ नहीं लेना चाहिए), ताकि माल की क्वालिटी घटिया होने पर दुकानदार के खिलाफ आवश्यक काररवाई की जा सके। किसी उपभोक्ता से अधिक मूल्य वसूल लेना या बिना किसी कार्य (प्रतिफल) के मूल्य वसूल लेना भी उपभोक्ता का शोषण माना जाता है।

उदाहरण—'इ' का एक बैंक में बचत खाता चल रहा था और उसी बैंक में उसने एक लॉकर भी किराए पर लिया। 'इ' और बैंक के बीच में लॉकर-किराया 'इ' के बचत खाते से वसूलना तय हुआ। 'इ' ने पाँच वर्ष बाद बैंक की लॉकर सेवा उपयोग में लेनी बंद कर दी और इस बाबत बैंक को सूचित भी कर दिया; लेकिन बैंक ने पाँच वर्ष बाद भी 'इ' से लॉकर-किराया वसूलना जारी रखा। बैंक के इस व्यवहार से दु:खी होकर 'इ' ने उपभोक्ता अदालत में शिकायत पेश की।

उपभोक्ता अदालत ने बैंक को दोषी माना और कहा कि बैंक लॉकर की सेवा उपलब्ध कराए बिना किराया वसूल नहीं कर सकता है। अदालत ने 'इ' को बैंक से लॉकर-किराया, मुकदमे का खर्च और 1,000 रुपए मानसिक हरजाने के रूप में दिलवाए।

अत: संक्षेप में, कोई भी उपभोक्ता अपने शोषण का परिवाद उपभोक्ता अदालत में पेश करके न्याय प्राप्त कर सकता है।

जलदाय विभाग से जल एवं बिजली विभाग से बिजली प्राप्त करनेवाला व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जाता है; क्योंकि यहाँ पर वह जल और बिजली सेवा मूल्य चुकाकर प्राप्त करता है। यदि इन सेवाओं में कोई कमी पाई जाती है तो

उपभोक्ता उस कमी का हरजाना प्राप्त कर सकता है।

एक मामले में प्रार्थी 'अ' अपने घर का बिजली बिल बिना किसी लापरवाही के भुगतान कर रहा था। बिजली बोर्ड ने एक बार प्रार्थी 'अ' को 12,000 रुपए का बिल भेजा, जो कि प्रार्थी 'अ' ने तुरंत भुगतान कर दिया; लेकिन बोर्ड ने अगले माह 4,000 रुपए जमा कराने का नोटिस भेज दिया और कुछ दिनों बाद बोर्ड के कर्मचारी प्रार्थी का बिजली कनेक्शन भी काट गए।

बिजली कनेक्शन कट जाने से प्रार्थी को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा और कॉलोनी में उसकी प्रतिष्ठा को भी आघात पहुँचा।

बिजली बोर्ड की इस काररवाई से दु:खी होकर प्रार्थी 'अ' ने जिला फोरम में बिजली बोर्ड पर मुकदमा दायर किया। विद्युत् बोर्ड ने अपना बचाव करते हुए अदालत में तर्क दिया कि प्रार्थी के घर नोटिस एक कर्मचारी की गलती से पहुँच गया। मामला सेवा में त्रुटि का नहीं है, अत: मामला खारिज किया जाना चाहिए।

अदालत ने पूरे मामले पर विचार करके कहा कि विद्युत् बोर्ड का यह तर्क एकदम निरर्थक है कि 'सेवा में कोई त्रुटि नहीं रही है।' अदालत ने विद्युत् बोर्ड के इस कार्य को सामान्य त्रुटि नहीं माना, बल्कि एक गंभीर त्रुटि करार दिया और कहा कि बोर्ड द्वारा कनेक्शन काटने की प्रक्रिया से प्रार्थी 'अ' को भारी पीड़ा पहुँची है, इसके लिए बोर्ड को 10,000 रुपए प्रार्थी को भुगतान करने होंगे और 1,000 रुपए मुकदमा खर्च भी बोर्ड को ही वहन करना पड़ेगा। यदि बोर्ड 11,000 रुपए एक माह में प्रार्थी को भुगतान नहीं करेगा तो इस अदालत में मामला चलने की तिथि से 9 प्रतिशत की दर से ब्याज का भी भुगतान बोर्ड को करना होगा।

यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु या स्थान की सेवा कुछ समय के लिए प्राप्त करता है तो भी वह व्यक्ति उपभोक्ता माना जाता है; जैसे—होटल की सेवा, सिनेमा हॉल की सेवा, बस सेवा, रेल सेवा, वायुयान सेवा, साइकिल स्टैंड सेवा, पार्किंग सेवा आदि।

एक मामले में प्रार्थी 'क' ने अपनी मोटरसाइकिल सिनेमा हॉल के पार्किंग स्टैंड में खड़ी कर दी; क्योंकि वह उस हॉल में सिनेमा देखने गया था। 'क' जब सिनेमा देखकर वापस आया तो उसकी मोटरसाइकिल स्टैंड पर नहीं मिली, जबकि उसने स्टैंड का किराया एक रुपया भुगतान किया था। 'क' ने अपनी हानि के लिए जिला फोरम में एक दावा पेश किया। जिला फोरम ने इसे साइकिल स्टैंड (पार्किंग स्टैंड) की सेवा में कमी माना। अदालत ने मामले पर विचार करके कहा कि पार्किंग स्टैंड मालिक ने लापरवाही से कार्य किया, जिससे 'क' को हानि हुई। अदालत ने

पार्किंग स्टैंड मालिक को आदेश दिया कि वह 'क' को 25,000 रुपए मोटरसाइकिल के तथा 1,000 रुपए मुकदमा खर्च के भुगतान करे। यदि उसने 26,000 रुपए की राशि एक माह में नहीं चुकाई तो 9 प्रतिशत ब्याज की दर से ब्याज का भी भुगतान करना होगा।

इस प्रकार सेवा में कमी के कारण हुई हानि का हरजाना उपभोक्ता आसानी से प्राप्त कर सकता है।

भावी या आनेवाली परेशानी से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने माल का बीमा करवाता है। बीमा आनेवाले खतरे से सुरक्षा की सेवा होती है और इसका लाभ लेनेवाला व्यक्ति कंपनी की सेवा का उपभोक्ता होता है, क्योंकि वह यह सेवा शुल्क चुकाकर प्राप्त करता है।

एक मामले में 'अ' ने 'ब' से एक बस खरीदी। बस का बीमा सन् 2000 से 2005 तक का था। सन् 2002 में कुछ लुटेरे बस चालक की हत्या कर बस को ले गए। इस घटना की रिपोर्ट 'अ' ने पुलिस थाने में दर्ज करवाई। कुछ महीनों बाद बस एक जंगल में बरामद की गई। बरामद बस के काँच, टायर, सीटें एवं अन्य सामान गायब मिले। 'अ' ने बीमा कंपनी से क्लेम माँगा तो बीमा कंपनी ने क्लेम यह कहते हुए खारिज कर दिया कि 'अ' ने बस 'ब' से खरीदने की सूचना कंपनी को नहीं दी। साथ ही बीमा कंपनी ने यह भी कहा कि 'अ' ने वाहन को अपने नाम स्थानांतरित नहीं करवाया।

बस मालिक 'अ' ने बीमा कंपनी के व्यवहार को देखते हुए अपना मामला जिला फोरम में दायर किया। फोरम ने पूरे मामले पर विचार किया और कहा कि इस मामले में बीमा कंपनी की सेवाओं में कमी स्पष्ट है। जिला फोरम ने बीमा कंपनी को आदेश दिया कि वह उपभोक्ता को 5,000 रुपए हरजाना और 2,000 रुपए मुकदमा खर्च का भुगतान करे। जिला फोरम ने बीमा कंपनी को इस बात की भी हिदायत दी कि यदि उसने यह रकम एक महीने में प्रार्थी 'अ' को नहीं भुगतान की तो 9 प्रतिशत की दर से वार्षिक ब्याज भी देना होगा।

उपभोक्ता संरक्षण कानून से संबंधित मामले फोरम या आयोग में दायर किए जाते हैं। इस कानून के अंतर्गत उपभोक्ताओं के मामलों को निपटाने के लिए इस प्रकार की अदालतों (फोरम) की स्थापना की गई है। सबसे निम्न श्रेणी का फोरम जिला फोरम होता है। प्रत्येक जिले में एक जिला फोरम है। फोरम का एक अध्यक्ष होता है। फोरम का अध्यक्ष जिला जज हो सकता है या वह व्यक्ति हो सकता है, जो जिला जज बनने की योग्यता रखता हो। प्रत्येक जिला फोरम में दो अन्य सदस्य भी

होते हैं, जिनमें एक महिला सदस्य भी होती है। जिला फोरम के सदस्यों का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है, लेकिन कोई भी सदस्य पैंसठ वर्ष की आयु से अधिक कार्य नहीं कर सकता। उपभोक्ता संरक्षण कानून के अनुसार जिला फोरम का कोई भी सदस्य अपना लिखित त्याग-पत्र दे सकता है।

गुलजारीलाल अग्रवाल बनाम लेखा अधिकारी (1997) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि किसी कारण से आयोग का अध्यक्ष उपस्थित नहीं हो तो उसकी अनुपस्थिति में पारित आदेश अवैध और शून्य नहीं होगा।

जिला फोरम में 20 लाख रुपए मूल्य तक का मामला दर्ज करवाया जा सकता है। उपभोक्ता शिकायत केवल उसी जिले के फोरम में दर्ज करवा सकता है जहाँ पर विरोधी पक्षकार (उत्पादनकर्ता) रहता है या व्यवसाय करता है अथवा कोई ऑफिस रखता है या शिकायत उस जिले में दर्ज करवा सकता है जहाँ पर विवाद उत्पन्न हुआ हो। 20 लाख रुपए से अधिक का मामला राज्य फोरम में चलाया जाता है।

उदाहरण—जयपुर में 'ग' मिनीडोर गाड़ी का एक हीटर खरीदता है। कंपनी के दिए गए गारंटी समय से पहले ही हीटर खराब हो जाता है और दुकानदार हीटर बदलकर देने से इनकार कर देता है। 'ग' दिल्ली का रहनेवाला है। यहाँ पर 'ग' अपना मामला दिल्ली की उपभोक्ता अदालत में नहीं चला सकता है, क्योंकि विरोधी पक्षकार जयपुर में रहता है और माल भी जयपुर में खरीदा गया, अत: रामलाल मामला जयपुर के उपभोक्ता न्यायालय में चला सकता है; जबकि हीटर बनानेवाली कंपनी मुंबई की है, अत: मामला मुंबई की उपभोक्ता अदालत में भी चलाया जा सकता है।

अत: संक्षेप में मामला उसी स्थान पर चलाया जा सकता है जहाँ पर एक या एक से अधिक या सारे विरोधी पक्षकार अपनी इच्छा से रहते हैं या अपना व्यापार चलाते हैं अथवा अपना कार्यालय रखते हैं या उस स्थान पर, जहाँ विवाद उत्पन्न हुआ हो।

प्रत्येक राज्य में एक राज्य आयोग होता है। इसमें एक करोड़ रुपए तक के विवाद चलाए जा सकते हैं। एक करोड़ रुपए से अधिक के विवाद राष्ट्रीय आयोग में चलाए जाते हैं, जो कि भारत में एक ही है और इसका मुख्यालय दिल्ली में स्थित है। जिला फोरम की अपील राज्य आयोग में और राज्य आयोग की अपील राष्ट्रीय आयोग में की जाती है। राष्ट्रीय आयोग की अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है।

उपभोक्ता अदालत उपभोक्ता को निम्नलिखित प्रकार से हरजाना या राहत दिलवाती है—

1. माल में पाई गई कमी को दूर करने का आदेश देकर।
2. माल बदलने का आदेश देकर तथा उपभोक्ता को नया माल दिलवाकर।
3. शिकायतकर्ता को माल की कीमत व्यापारी से वापस दिलवाकर।
4. यह अदालत उपभोक्ता को हानि (माल के प्रयोग से, खराब माल के कारण, अधिक मूल्य वसूलने के कारण) का हरजाना भी दिलवाकर।
   भारती निटिंग कंपनी बनाम बी.एच.एल. वर्ल्ड वाइड एक्सप्रेस कूरियर डिवीजन ऑफ एयरफ्रेट लि. (1996) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत स्थापित अदालतें या आयोग मामले में तय सीमा से अधिक क्षतिपूर्ति के लिए सामान्यत: अनुतोष (हरजाना) नहीं दे सकती हैं।
5. अनुचित व्यापार-व्यवहार बंद करने का आदेश देकर।
6. उत्पादनकर्ता (विक्रेता) को सजा के रूप में हरजाने का आदेश देकर।
7. खतरनाक और घटिया माल का उत्पादन बंद करने का आदेश देकर।
8. उपभोक्ता को विपक्षी (व्यापारी या उत्पादन करनेवाली कंपनी) से मुकदमे का खर्च दिलवाकर।
9. सेवाओं की कमियाँ दूर करवाकर।
10. गलत एवं भ्रामक विज्ञापनों का प्रचार-प्रसार बंद करने का आदेश देकर।

उपभोक्ता अदालतों को उपभोक्ता कानून ने अनेक शक्तियाँ प्रदान की हैं। उपभोक्ता अदालत सिविल एवं फौजदारी अदालतों की भाँति काररवाई कर सकती है। अब उपभोक्ता अदालत सजा भी दे सकती है।

उपभोक्ता अदालतों को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं—

1. **गवाहों को बुलाने की शक्ति**—उपभोक्ता अदालत गवाहों को अदालत में तलब कर सकती है। उपभोक्ता अदालत गवाहों के शपथ-पत्र का परीक्षण कर सकती है।
2. उपभोक्ता अदालत सबूत और कागजातों को पेश करवाने की भी शक्ति रखती है।
3. उपभोक्ता अदालत माल की गुणवत्ता की जाँच भी करवा सकती है।
4. उपभोक्ता अदालत को दीवानी अदालतों की सारी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।
   मैसर्स फेयर एयर इंजीनियर्स प्रा.लि. और एक अन्य बनाम एन.के. मोदी (1996)

के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जिला फोरमों, राज्य आयोगों और राष्ट्रीय आयोगों को सिविल न्यायालय और न्यायिक अधिकारी के सभी अधिकार प्राप्त हैं। उनके समक्ष जो कारररवाइयाँ होती हैं वे विधिक कारररवाइयाँ हैं। उपभोक्ता अदालत अधिनियम के अनुसार कारररवाई करने के लिए स्वतंत्र है। इसी प्रकार का निर्णय एक अन्य मामले में सरोजिनी रामास्वामी बनाम भारत संघ (1992) में भी दिया गया है।

5. उपभोक्ता अदालत जब्त किए गए कागजातों को अपने पास रख सकती है।
6. उपभोक्ता अदालत के आदेश की अवज्ञा करनेवाले की संपत्ति को न्यायालय कुर्क करवा सकता है।
7. उपभोक्ता अदालत किसी भी व्यक्ति से आवश्यक सूचना भी माँग सकती है।
8. उपभोक्ता अदालत सिविल कोर्ट की भाँति अस्थायी निषेधता भी जारी कर सकती है।
9. उपभोक्ता अदालत विपक्षी को सम्मन भी भेज सकती है।
10. उपभोक्ता अदालत किसी गवाह की गवाही के लिए कमीशन भी जारी कर सकती है।
11. उपभोक्ता अदालतें सिविल अदालतें नहीं होतीं, बल्कि उसके जैसी होती हैं।
12. उपभोक्ता अदालतें दंड या सजा भी दे सकती हैं।

कोई भी उपभोक्ता, जिसने जिला फोरम में मुकदमा चलाया हो और उस फोरम के फैसले से असंतुष्ट हो तो वह उपभोक्ता जिला फोरम के आदेश की तिथि से तीस दिन के अंदर राज्य आयोग में अपील कर सकता है। यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि अपील का समय केवल तीस दिन है।

लेकिन राज्य आयोग अपने विवेकानुसार मामले की परिस्थितियों को देखते हुए तीस दिनों के बाद भी अपील को ग्रहण कर सकता है।

अपील करने का यह प्रावधान धारा 15 में दिया गया है। पाठकों को यहाँ पर ध्यान रखना चाहिए कि धारा 15 में निम्न मामलों (धारा 27) के खिलाफ अपील नहीं की जा सकती है।

यदि कोई दुकानदार या उत्पादनकर्ता अथवा जिसके खिलाफ शिकायत दर्ज की गई है या शिकायतकर्ता किसी भी आयोग (जिला आयोग, राज्य आयोग, राष्ट्रीय आयोग) के किसी आदेश का पालन नहीं करता है तो उस दुकानदार या शिकायतकर्ता को अदालत इस प्रकार से सजा दे सकती है—

1. एक माह से लेकर तीन वर्ष तक का कारावास या
2. 2 हजार से लेकर 10 हजार रुपए तक का जुरमाना या

3. उपर्युक्त दोनों (धारा 27)।

अर्थात् फोरम के आदेश का उल्लंघन करने के फलस्वरूप मिलनेवाली सजा (धारा 27) की अपील नहीं की जा सकती है।

धारा 27 में वर्णित दंड को, वही अदालत जिसने दंड दिया है, मामले एवं परिस्थितियों को देखते हुए माफ भी कर सकती है।

धारा 15 में जिला फोरम के आदेश के खिलाफ अपील केवल राज्य फोरम में की जा सकती है।

उदाहरण—'अ' को एक दुकानदार ने दो वर्ष की गारंटी देकर एक साइकिल बेची। साइकिल टूट जाने के कारण 'अ' ने दुकानदार को दूसरी साइकिल देने को कहा, लेकिन गारंटी की शर्तों के अनुसार दुकानदार द्वारा दूसरी साइकिल नहीं देने के कारण 'अ' को उपभोक्ता अदालत की शरण लेनी पड़ी। उपभोक्ता अदालत ने दुकानदार को 'अ' को पूरी रकम वापस देने का आदेश दिया। दुकानदार के द्वारा 'अ' को तीस दिन तक धनराशि नहीं लौटाने के कारण अदालत ने दुकानदार पर 5,000 रुपए का जुरमाना लगाया।

उपर्युक्त उदाहरण में दुकानदार जिला फोरम के इस आदेश ('अ' को पूरे पैसे वापस लौटाने का आदेश) की अपील तीस दिनों तक राज्य आयोग में धारा 15 के अनुसार कर सकता था; लेकिन अब दुकानदार इस जुरमाने (धारा 27 के अंतर्गत) वाले आदेश की अपील राज्य आयोग में नहीं कर सकता, अर्थात् कोई भी वादी या प्रतिवादी जिला फोरम के आदेश की अपील राज्य आयोग में कर सकता; लेकिन कोई वादी या प्रतिवादी जिला फोरम के आदेश के उल्लंघन के फलस्वरूप फोरम द्वारा धारा 27 के अनुसार की गई काररवाई की अपील नहीं कर सकता है।

जिला फोरम के आदेशों के खिलाफ राज्य आयोग में अपील करनेवाले उपभोक्ता को राज्य फोरम को इस बात का कारण देना होगा कि उसने जिला फोरम के आदेश के तीस दिनों के अंदर अपील का आवेदन प्रस्तुत क्यों नहीं किया?

उदाहरण—एक उपभोक्ता 'अ' जिला फोरम के आदेश के खिलाफ तीस दिनों में राज्य आयोग में अपील नहीं कर पाता है और वह उपभोक्ता जिला फोरम के आदेश देने के छत्तीसवें दिन राज्य आयोग में अपील करता है तो उस उपभोक्ता 'अ' को राज्य आयोग के सामने छह दिनों के विलंब का कारण बताना होगा। अर्थात् राज्य आयोग में अपील करते समय प्रत्येक उपभोक्ता को अपील करने में हुई देरी के प्रत्येक दिन का हिसाब देना होगा। उपभोक्ता के द्वारा दिए गए इस हिसाब और मामले की परिस्थितियों पर विचार करके ही राज्य आयोग अपील

स्वीकार करता है।

अपील के मामले में पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि अपील करने में विलंब उपभोक्ता की उपेक्षा के कारण, असावधानी या कमी के कारण नहीं होना चाहिए। अपील में हुई देरी को माफ करना या न करना राज्य आयोग के विवेक पर थोड़ा-बहुत निर्भर करता है। कानून की हमेशा यही मंशा रही है कि प्रत्येक व्यक्ति को न्याय मिले, चाहे अपील में विलंब ही क्यों न हो। राज्य आयोग को विलंब के कारणों से संतुष्ट होना चाहिए, जो कि उपभोक्ता ने बताए हैं। उपभोक्ता संरक्षण कानून के अनुसार राज्य आयोग अपने राज्य की सीमा में स्थित किसी भी जिला फोरम के आदेश के खिलाफ अपील सुन सकता है तथा किसी भी जिला फोरम से मामले से संबंधित कागजात मँगवा सकता है। प्राय: उस समय जब राज्य आयोग को यह महसूस होता है कि जिला फोरम अपने अधिकारों का सही उपयोग नहीं कर रहा है या अपने अधिकारों से बाहर कार्य कर रहा है।

किसी भी राज्य आयोग के आदेशों के खिलाफ राष्ट्रीय आयोग में अपील की जा सकती है। राष्ट्रीय आयोग में अपील स्वयं पक्षकार कर सकता है या उसका कोई प्रतिनिधि।

यदि अपील प्रतिनिधि करता है तो उसे एक मेमोरैंडम (पत्रक) पेश करना पड़ता है। यह मेमोरैंडम व्यक्तिगत या रजिस्टर्ड डाक से पेश किया जा सकता है तथा यह कई पैराग्राफ के अंदर एवं पठनीय होना चाहिए।

राष्ट्रीय आयोग में अपील करते समय राज्य आयोग के फैसले की प्रमाणित प्रतिलिपि और अपील के कारणों का उल्लेख करते हुए अपील पेश की जानी चाहिए। यदि अपील देरी से की जा रही है तो देरी-माफी की एक अरजी एवं शपथ-पत्र भी पेश किया जाना चाहिए। अरजी में अपील स्वीकार करने का कारण लिखा गया होना चाहिए। सरल शब्दों में अपील करनेवाले पक्ष को देरी के प्रति राष्ट्रीय आयोग को संतुष्ट करनेवाले तथ्य लिखने चाहिए। प्रत्येक पक्षकार को राष्ट्रीय आयोग में सुनवाईवाली तिथि को उपस्थित होना चाहिए।

पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि यदि कोई पक्षकार राष्ट्रीय आयोग में सुनवाईवाले दिन उपस्थित नहीं हुआ तो आयोग अपील को निरस्त कर सकता है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उनको अपने मेमोरैंडम में सारे तर्क लिखने चाहिए और अपने बचाव के साक्ष्य पेश करने चाहिए। यदि आपने अपने मेमोरैंडम में कोई तर्क छोड़ दिया है तो राष्ट्रीय आयोग उस तर्क पर विचार नहीं करेगा अर्थात् राष्ट्रीय आयोग मेमोरेंडम में लिखी बात (तर्कों) पर ही विचार करके अपना फैसला देता है।

राष्ट्रीय आयोग मामले पर फैसला देने के बाद अपने सभी सदस्यों के हस्ताक्षर-युक्त फैसले की एक-एक प्रति प्रत्येक पक्षकार को नि:शुल्क देता है। राज्य आयोग के फैसले की तिथि के तीस दिनों के भीतर राष्ट्रीय आयोग में अपील की जा सकती है। राष्ट्रीय आयोग अपने विवेकानुसार तीस दिनों के बाद भी अपील स्वीकार कर सकता है। राष्ट्रीय आयोग को राज्य आयोग और जिला फोरम की सारी शक्तियाँ प्राप्त हैं। संक्षेप में राष्ट्रीय आयोग को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं—

1. गवाहों को बुलाने की शक्ति।
2. साक्ष्य/ प्रमाण ढूँढ़ने की शक्ति।
3. शपथ पर गवाही लेने की शक्ति।
4. प्रयोगशाला से माल की जाँच करवाने और रिपोर्ट प्राप्त करने की शक्ति।
5. गवाह परीक्षण करने का आदेश जारी करने की शक्ति।
6. सिविल अदालतों की सारी शक्तियाँ।
7. इसके आदेशों का प्रभाव डिक्री के समान होता है।
8. राष्ट्रीय आयोग राज्य आयोग और जिला फोरम के समान निम्नलिखित आदेश देने की भी शक्ति रखता है—

(क) प्रयोगशाला द्वारा दरशाई गई त्रुटि (कमी) को दूर करने का आदेश देने की शक्ति।

(ख) खराब (घटिया) माल को नए माल से बदलने का आदेश देने की शक्ति।

(ग) माल की कीमत परिवादी (शिकायतकर्ता) को लौटाने का आदेश देने की शक्ति।

(घ) दूसरे पक्ष को उसकी लापरवाही से उपभोक्ता को हुई हानि का हरजाना भुगतान करने का आदेश।

(ङ) सेवाओं (विवादित) की कमियों को दूर करने का आदेश देने की शक्ति।

(च) अनुचित व्यापार-व्यवहार को रुकवाने का आदेश।

(छ) किसी दुकानदार को खतरनाक माल (मानव एवं जीवों के लिए) नहीं बेचने का आदेश देने की शक्ति।

(ज) पक्षकारों को मुकदमे का पर्याप्त खर्चा देने का आदेश देने की शक्ति।

(झ) विक्रय के लिए प्रस्तुत संकटकारी वस्तुओं को विक्रय से रोकने का आदेश देने की शक्ति।

उपभोक्ता अदालत में मामला पेश करने का तरीका

किसी भी फोरम में अपना मामला पेश करते समय सबसे पहले बड़े-बड़े अक्षरों में उस फोरम का नाम लिखना चाहिए।

उदाहरण— जिला उपभोक्ता फोरम, चूरू (राज.) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में फोरम में पेश किए जानेवाले मामले का कोई प्रारूप नहीं दिया गया है। कर्नाटक स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम एसकान पी. लि. के मामले में कहा गया कि उपभोक्ता एक सामान्य प्रार्थना-पत्र के द्वारा भी अपना मामला उपभोक्ता अदालत में पेश कर सकता है। यहाँ पर मैं पाठकों को यह राय देना चाहूँगा कि उनको अपने क्षेत्र में प्रचलित तरीके से ही अपना मामला जिला फोरम में प्रस्तुत करना चाहिए।

फोरम का नाम लिखने के बाद परिवादी या उपभोक्ता को अपना नाम लिखना चाहिए, इसके तुरंत बाद विरोधी पक्षकार के नाम और पते का उल्लेख किया जाना चाहिए।

इन बातों के बाद शिकायत का मुख्य भाग क्या है? विवाद कैसे और क्यों उत्पन्न हुआ? विवाद कहाँ और कब उत्पन्न हुआ? इस भाग में उपभोक्ता को मामला साबित करनेवाले दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतिलिपि भी आवेदन-पत्र (शिकायत) के साथ संलग्न करनी चाहिए।

शिकायत में मामले के सारांश के साथ-साथ उपभोक्ता को यह भी लिखना चाहिए कि वह क्या चाहता है? उसको कितना नुकसान हुआ? माल की कीमत वापस लेना चाहता है या माल बदलकर लेना चाहता है आदि-आदि। क्योंकि कंज्यूमर यूनिटी ऐंड ट्रस्ट सोसाइटी बनाम बैंक ऑफ बड़ौदा का मामला केवल इस कारण खारिज कर दिया गया कि इस दावे में किसी प्रकार के नुकसान का वर्णन नहीं था।

शिकायत के अंत में सत्यापन लिखा जाता है, जिसमें परिवादी इस बात की शपथ लेता है कि शिकायत में वर्णित सभी कथन और तथ्य पूर्णतया सत्य हैं।

शिकायत लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शिकायत में वर्णित तथ्य स्पष्ट, क्रमशः, पठनीय होने चाहिए; क्योंकि भारत ट्रैक्टर बनाम रामचंद्र पांडे का मामला इस कारण स्वीकार नहीं किया गया, क्योंकि इसमें शिकायत का वर्णन स्पष्ट नहीं था।

पाठकगण और हम सभी जानते हैं कि हम लोग बाजार से बहुत सारी वस्तुएँ बिना कोई बिल लिये खरीदते हैं, जैसे—तेल, आटा, सब्जी, नमक, ठंडे पेय, चाय, नाश्ता आदि। यदि ऐसा सामान खराब आ जाए तो अदालत में शिकायत करते समय

उपभोक्ता को अपनी शिकायत के साथ एक शपथ-पत्र भी प्रस्तुत करना होगा।

शपथ-पत्र में इस बात का उल्लेख करना चाहिए कि उसका बिल खो गया है या उसने वस्तु का क्रय मौखिक रूप से किया था। उपभोक्ता को शपथ-पत्र में इस बात की भी शपथ लेनी चाहिए कि वह मामले से संबंधित सभी तथ्यों को भली-भाँति जानता है।

जिला आयोग और राज्य आयोग में अपना मामला पेश करते समय प्रत्येक उपभोक्ता को अपनी शिकायत पाँच-पाँच प्रतियों में पेश करनी चाहिए। यदि विरोधी पक्षकार एक से अधिक हों तो प्रत्येक पक्षकार के लिए एक-एक अतिरिक्त प्रति पेश की जानी चाहिए।

उदाहरण—'प' एक दुकानदार से साइकिल का एक टायर खरीदता है और टायर की एक वर्ष की गारंटी होने के बावजूद पहले माह में ही वह फट जाता है। दुकानदार 'प' को दूसरा साइकिल टायर देने में आनाकानी करता है। दुकान तीन व्यापारियों की साझेदारी में चलती है।

उपर्युक्त मामले में 'प' यदि उपभोक्ता अदालत में शिकायत करता है तो उसे शिकायत 5+3=8 प्रतियों में पेश करनी होगी। यदि शिकायत राज्य आयोग में पेश करने योग्य है तो भी यह शिकायत 5+3=8 प्रतियों में पेश करनी होगी। राष्ट्रीय आयोग में पेश करते समय शिकायत प्रतियों की संख्या 6+3=9 होगी। अर्थात् जिला मंच और राज्य आयोग में शिकायत पाँच प्रतियों (जब विरोधी पक्षकार एक ही हो) में तथा राष्ट्रीय आयोग में छह प्रतियों में पेश की जाती है।

पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ पर बताया जा रहा है कि उपभोक्ता मामले की पैरवी के लिए किसी वकील की आवश्यकता नहीं होती है और मामला चलाने से पहले विरोधी पक्षकार को किसी प्रकार की नोटिस देने की भी आवश्यकता नहीं होती है। उपभोक्ता अदालतों में प्राय: किसी प्रकार की कोर्ट फीस भी नहीं ली जाती है।

उपभोक्ता से संबंधित मामलों में परिवाद की तामील को ही नोटिस माना जाता है अर्थात् जिला फोरम/ राज्य आयोग/ राष्ट्रीय आयोग के द्वारा मामले की सूचना विरोधी पक्षकार को देना ही नोटिस माना जाता है। यदि कोई उपभोक्ता मामला चलाने से पहले विरोधी पक्षकार को नोटिस देता है तो नोटिस एवं शिकायत में वर्णित मामला समान होना चाहिए—अर्थात् नोटिस में वर्णित मामला और शिकायत में वर्णित मामला भिन्न नहीं होना चाहिए।

अदालत में मामला चलाने से पहले उपभोक्ता अपनी नोटिस किसी वकील

के द्वारा भेज सकता है या स्वयं पत्र लिखकर सामान की खराबी को दूर करने का निवेदन कर सकता है।

उदाहरण—'च' एक पंखा मै. 'अ' ऐंड संस से खरीदता है और दुकानदार पंखे की दो वर्ष की गारंटी देता है। पंखा एक माह के बाद ही खराब हो जाता है। 'च' गारंटी की शर्तों के अनुसार दुकानदार से दूसरा पंखा माँगता है, लेकिन दुकानदार दूसरा पंखा देने से साफ इनकार कर देता है।

उपर्युक्त उदाहरण में 'च' जिला फोरम में कोई भी कानूनी काररवाई करने से पहले दुकानदार को किसी वकील के माध्यम से निम्न प्रकार नोटिस भेज सकता है। (नीचे लिखी नोटिस काल्पनिक है।)

रजिस्टर्ड ए.डी. एवं कूरियर ए.डी.

बनाम

मै. 'अ' ऐंड संस,

ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

मेरे मुवक्किल 'च' पुत्र 'छ', आयु 40 वर्ष, जाति दरजी, सी-403, गांधी नगर, दिल्ली से प्राप्त हिदायतानुसार आपको निम्नलिखित नोटिस भेज रहा हूँ—

1. यह कि मेरे मुवक्किल ने आपकी दुकान से अमुक कंपनी का एक पंखा दिनांक 12-03-2002 को खरीदा था।
2. यह कि आपने उक्त पंखे का गारंटी समय 2 वर्ष बताया था।
3. यह कि मेरे मुवक्किल ने आपको 2,500 रुपए उक्त पंखे की कीमत अदा की थी और आपने उक्त भुगतान का बिल भी दिया था। आपके द्वारा दिए बिल का नं. 01402 है।
4. यह कि आपके द्वारा विक्रित उक्त पंखा एक माह बाद ही खराब हो गया।
5. यह कि मेरे मुवक्किल ने आपको पंखा खराब हो जाने की सूचना दी थी और पंखा बदलने का आपसे कई बार निवेदन भी किया था।
6. यह कि आपने मेरे मुवक्किल के निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया और हर बार टाल-मटोल का ही जवाब दिया।
7. यह कि मेरे मुवक्किल द्वारा आपसे अनेक बार निवेदन करने के बावजूद आपने न तो पंखा बदलकर दिया और न ही पंखे का मूल्य लौटाया।
8. यह कि आपने जान-बूझकर मेरे मुवक्किल को नुकसान पहुँचाने की दृष्टि

से खराब एवं घटिया क्वालिटी का पंखा बेच दिया।

9. यह कि आपने मेरे मुवक्किल के साथ धोखाधड़ी की है और पुराना पंखा देकर लूटने की कोशिश की है।
10. यह कि मेरे मुवक्किल ने मुझे आपके खिलाफ कानूनी काररवाई करने की हिदायत दी है। अत: कोई भी कानूनी काररवाई करने से पूर्व सद्भावना और एहतियात के तौर पर आपको यह नोटिस रजिस्टर्ड डाक और कूरियर से भेजा जा रहा है।
11. यह नोटिस प्रेषित कर रहा हूँ कि नोटिस-प्राप्ति के पंद्रह दिनों में आप उक्त पंखा बदलकर मेरे मुवक्किल को नया पंखा देवें और इस नोटिस का खर्चा 100 रुपए नकद भुगतान कर रसीद प्राप्त कर लेवें, साथ ही इसकी सूचना मुझे प्रेषित करें अन्यथा आपके खिलाफ जिला फोरम में कानूनी काररवाई की जाएगी। कानूनी काररवाई के तमाम हर्जे-खर्चे की जिम्मेदारी आपकी होगी, सो सूचित रहे।

भवदीय

दिनांक 01-06-02

(अधिवक्ता)

यदि उपर्युक्त मामले में उपभोक्ता 'च' वकील के माध्यम से नोटिस नहीं भेजना चाहता है तो वह स्वयं सद्भावना से उक्त दुकानदार मै. 'अ' ऐंड संस को एक पत्र भी लिख सकता है।

रजिस्टर्ड पत्र

'च',
सी-403, गांधी नगर, दिल्ली
दिनांक 01-06-02

प्रतिष्ठा में,
मै. 'अ' ऐंड संस,
ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

विषय—माल की शिकायत दूर करने हेतु।

महोदय,

सविनय निवेदन है कि मैंने आपके शोरूम से दिनांक 12-03-2002 को क ख ग कंपनी का एक पंखा खरीदा था। आपने पंखा विक्रय करते समय पंखे की

दो वर्ष तक सही प्रकार से चलने की गारंटी दी थी; लेकिन पंखे की खराब क्वालिटी के कारण पंखा एक माह बाद ही खराब हो गया।

मैंने आपको पंखे की मरम्मत कराने के लिए फोन भी किया था, लेकिन आपने पंखे की मरम्मत नहीं की। मैं आपसे पंखा बदलवाने के लिए व्यक्तिगत रूप से भी मिला था, लेकिन आपने पंखा नहीं बदला।

मैं आपके खिलाफ कोई कानूनी काररवाई करूँ, इससे पहले आपसे एक बार फिर निवेदन है कि गारंटी की शर्तों के अनुसार खराब पंखा बदलकर दूसरा नया पंखा या पैसे वापस देने का कष्ट करें।

यदि आपने इस पत्र के मिलने के बाद पंद्रह दिनों में इस खराब पंखे के स्थान पर दूसरा नया पंखा या पंखे की पूरी कीमत वापस नहीं दी तो मजबूरन मुझे आपके खिलाफ कानूनी काररवाई करनी पड़ेगी।

आपने इस पंखे के सौदे के साथ पंखे की कीमत भुगतान का बिल नं. 01402 और दो वर्ष का गारंटी कार्ड दिया था।

अत: आपसे निवेदन है कि पंखे की गारंटी की शर्तों के अनुसार दूसरा पंखा देने का कष्ट करें।

प्रार्थी

'च'

बिल नं. 01402

उपर्युक्त मामले में यदि 'च' को दुकानदार मै. 'अ' ऐंड संस पंखा बदलकर नहीं देता है तो 'च' (उपभोक्ता) निम्न प्रकार से मै. 'च' ऐंड संस के खिलाफ एक परिवाद जिला फोरम, नई दिल्ली में प्रस्तुत कर सकता है।

पाँच प्रतियों में (काल्पनिक)

जिला फोरम, नई दिल्ली (जिले का नाम भी)

1. **परिवादी का नाम एवं पता**—'च', पुत्र 'छ', सी-403, गांधी नगर, दिल्ली
2. **विपक्षी का नाम तथा पता**—मै. 'अ' ऐंड संस, ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली
3. **दिनांक, जिस दिन वस्तु खरीदी गई**—12-03-2002
4. **रकम जो वस्तु के बदले दी गई (क्रय मूल्य)**—2,500 रुपए
5. **वस्तु में पाए गए दोष**—गारंटी समय से पहले ही पंखा खराब हो गया।

6. **गारंटी का समय**—2 वर्ष
7. **बिल संख्या**—(यदि हो तो) 01402
8. **गारंटी पत्र**—(यदि हो तो) संलग्न है।

9. **शिकायत का वर्णन**—दिनांक 12-03-2002 को मैं तथा श्री 'घ' और 'ट' तीनों मिलकर मै. 'अ' ऐंड संस, ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली से क ख ग कंपनी का पंखा खरीदने गए। मुझे पंखा पसंद आ गया और मैंने पंखा खरीद लिया। मै. 'अ' ऐंड संस ने पंखे के बारे में दो वर्ष की गारंटी दी और वचन दिया कि यदि पंखा दो वर्षों में खराब हो गया तो वह नया पंखा देगा। मैंने पंखे का मूल्य 2,500 रुपए मै. 'अ' ऐंड संस को भुगतान कर दिया।

इस भुगतान की एक रसीद मै. 'अ' ऐंड संस ने मुझे दी। इस बिल का क्रमांक 01402 है। मैंने दूसरे दिन से ही इस पंखे का इस्तेमाल शुरू कर दिया। एक माह बाद, दिनांक 15-04-2002 को अचानक पंखा चलते-चलते बंद हो गया। मैंने पंखे का तार और अपने घर का प्लग सर्किट जाँचा तो वे सब ठीक थे, लेकिन पंखा नहीं चल रहा था।

पंखा खराब होने का प्रमुख कारण पंखे की खराब क्वालिटी थी। मैंने पंखे के खराब होते ही पंखे को ठीक कराने के लिए दुकानदार को फोन किया; लेकिन दुकानदार मै. 'अ' ऐंड संस ने कोई रुचि नहीं दिखाई।

पंखा खराब होने का प्रमुख कारण या तो यह है कि मै. 'अ' ऐंड संस ने पंखे के वास्तविक उपकरण पंखे से निकाल लिये और पंखे में घटिया किस्म के चलाऊ उपकरण डाल दिए या मुझे पुराना पंखा बेच दिया, जो कि पहले कई बार इनके पास ही खराब हो गया था।

मैंने मै. 'अ' ऐंड संस कंपनी से कई बार पंखा बदलने का अनुरोध किया, लेकिन इन्होंने पंखा नहीं बदला। मैंने कंपनी को एक नोटिस भी वकील के माध्यम से प्रेषित किया, लेकिन कंपनी ने पंखा बदलने की बाबत कोई काररवाई नहीं की।

पंखा खराब होनेवाले दिनों में मेरे बड़े लड़के की परीक्षा चल रही थी, पंखा खराब होने के कारण वह सहज रूप से पढ़ नहीं सका और इसके फलस्वरूप वह परीक्षा में असफल हो गया। उसकी परीक्षा का प्रवेश-पत्र एवं उसकी अंक तालिका मामले के साथ संलग्न है।

हमारे पूरे परिवार को भीषण गरमी का सामना करना पड़ा, जिससे हम परिवार सहित परेशान रहे।

मैं एक वर्ष तक पंखे के मूल्य 2,500 रुपए का कोई उपयोग नहीं कर सका।

यदि कंपनी मुझे पंखे का मूल्य 2,500 रुपए लौटा देती तो मैं किसी अन्य दुकान से दूसरा पंखा खरीद लेता, लेकिन कंपनी ने ऐसा नहीं किया। अंत में मानसिक और शारीरिक रूप से तंग होकर मुझे फोरम की सहायता लेनी पड़ रही है। अत: श्रीमानजी से निवेदन है कि मुझ उपभोक्ता को न्याय प्रदान करें।

10. **वस्तु की त्रुटि दूर करने के प्रयास**—पंखा खराब होते ही पंखा दुरुस्त करने के लिए मै. 'अ' ऐंड संस को टेलीफोन किया, लेकिन पंखा ठीक नहीं किया गया। पंखा बदलवाने के लिए मैं दो बार विपक्षी की दुकान पर गया, लेकिन दुकानदार ने मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और टाल-मटोलवाला जवाब दिया। अंत में परेशान होकर वकील के द्वारा नोटिस भेजा, लेकिन फिर भी दुकानदार मै. 'अ' ऐंड संस ने गारंटी की शर्तों के अनुसार पंखा नहीं बदला।
11. **लिखित में दिया गया नोटिस/ पत्र**—वकील द्वारा दिनांक 1-11-2000 को नोटिस दिया गया (यहाँ पर यदि उपभोक्ता स्वयं पत्र लिखता है तो उस पत्र का हवाला दिया जाता है, जैसा कि इस उदाहरण में उपभोक्ता 'च' ने कंपनी को पत्र लिखा), जिसकी एक प्रति शिकायत के साथ संलग्न है।
12. **शिकायत के समर्थन में कागजात**—
    (क) **बाउचर**—बिल सं. 01402 शिकायत के साथ संलग्न है, जो माल की रकम का भुगतान करते समय दुकानदार ने दिया था।
    (ख) **गवाह**—'घ', 'ट'।
    (ग) **स्वयं का शपथ-पत्र (यदि माल खरीद का व्यवहार मौखिक हो)**—माल खरीद का संव्यवहार मौखिक नहीं किया गया है, फिर भी उचित मूल्य के स्टांप पेपर पर शपथ-पत्र लिखकर मामले के साथ संलग्न किया गया है।
13. **इच्छित हरजाना (मानसिक क्षति सहित)**—मैं पंखे की पूरी कीमत 2,500 रुपए वापस लेना चाहता हूँ, क्योंकि अब मुझे मै. 'अ' ऐंड संस पर विश्वास नहीं रहा कि वे अब भी मुझे बढ़िया पंखा देंगे।

मै. 'अ' ऐंड संस ने मेरे 2,500 रुपए का एक वर्ष तक उपयोग किया है, अत: मैं उनसे 2,500 रुपए का 10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 250 रुपए ब्याज भी वसूल करना चाहता हूँ।

गरमी की भयंकरता के कारण मेरा लड़का सहजता से पढ़ नहीं सका और

अपनी परीक्षा में असफल रहा। इस हानि की क्षतिपूर्ति के लिए मैं दुकानदार से 10,000 रुपए वसूलना चाहता हूँ।

मैंने दुकानदार मै. 'अ' ऐंड संस को कई बार फोन किया और उसकी दुकान के कई चक्कर लगाए, जिसमें मेरे 200 रुपए खर्च हो गए। अत: मैं ये 200 रुपए भी दुकानदार से वसूलना चाहता हूँ।

मैंने अधिवक्ता से दुकानदार को एक नोटिस भी भेजा था, जिसका खर्च 100 रुपए आया। ये 100 रुपए मैं विपक्षी दुकानदार से वसूलना चाहता हूँ।

मैं इस कानूनी काररवाई का खर्च और जो खर्च अदालत मुझे दिलवाना चाहे, दुकानदार से वसूलना चाहता हूँ।

1.	पंखे की कीमत	2,500 रुपए
2.	रकम का ब्याज	250 रुपए
3.	मानसिक एवं शारीरिक परेशानी का हरजाना	10,000 रुपए
4.	फोन एवं अन्य खर्च	200 रुपए
5.	नोटिस खर्च	100 रुपए
6.	अनुमानित मुकदमा खर्च	1,500 रुपए
7.	अन्य अनुतोष जो अदालत दिलवाना चाहे	.... रुपए
	कुल राशि	14,550 रुपए

अत: माननीय जिला फोरम से निवेदन है कि मुझे प्रतिवादी मै. 'अ' ऐंड संस से कुल हरजाना 14,550 रुपए और जो अदालत दिलवाना चाहे, दिलवाकर न्याय प्रदान करे।

मैं 'च' पुत्र श्री 'छ', जाति दरजी, आयु 40 वर्ष, सी-403, गांधी नगर, दिल्ली का निवासी हूँ। मैं शपथपूर्वक घोषणा करता हूँ कि ऊपर जो जानकारी दी गई है वह सत्य है और ऊपर दिया गया कोई भी कथन मिथ्या नहीं है तथा न ही मैंने कोई तथ्य छुपाया है। यह सत्यापन आज दिनांक 01-03-03 को मेरे द्वारा परिवाद सत्यापन बमुकाम दिल्ली से किया गया। मामला श्रीमानजी के क्षेत्राधिकार में आता है।

शपथ गृहीता

'च'
(उपभोक्ता के हस्ताक्षर)

यदि उपभोक्ता के पास माल खरीद का बिल उपलब्ध नहीं हो या खरीद-फरोख्त मौखिक ही हुई हो, तो उपभोक्ता को निम्न प्रकार से 10 या 20 रुपए के नॉन-जुडिशियल स्टांप पर शपथ लिखकर शिकायत के साथ संलग्न करना चाहिए। क्योंकि आज के समय में हम लोग ज्यादातर खरीद मौखिक ही करते हैं, यह बात फोरम भी जानता है। शपथ-पत्र को दो गवाहों के साथ नोटरी पब्लिक से प्रमाणित अवश्य करवाना चाहिए। नमूना इस प्रकार है—

शपथ-पत्र (काल्पनिक)

मैं 'क' पुत्र 'ख', जाति—सोनी, आयु—50 वर्ष, निवासी—सी-20, इंद्रपुरी, दिल्ली निम्नलिखित कथन शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि—

1. मैंने 'च' गिफ्ट सेंटर, जेड-40 आजाद मार्केट, दिल्ली से एक दीवार-घड़ी खरीदी।
2. मैंने दीवार-घड़ी दिनांक 24-09-03 को सायं 4 बजे खरीदी थी।
3. यह कि इस संव्यवहार का दुकानदार ने मुझे कोई बाउचर/बिल/रसीद नहीं दिया।
4. यह कि दुकानदार 'च' गिफ्ट सेंटर ने इस दीवार-घड़ी की दो वर्ष की वारंटी दी थी।
5. यह कि दीवार-घड़ी खरीदते समय मेरा दोस्त 'ग' मेरे साथ था।
6. यह कि मैंने इस दीवार-घड़ी का पूरा मूल्य 400 रुपए दुकानदार 'च' गिफ्ट सेंटर को भुगतान कर दिया।

उपर्युक्त सभी कथन मेरी जानकारी एवं प्राप्त सूचना के अनुसार सत्य हैं और इसमें से कोई भी कथन असत्य नहीं है। ईश्वर मेरी सत्य-बयानी में सहायता करे।

शपथ गृहीता

'क'

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार कोई भी उपभोक्ता कानूनी काररवाई कर सकता है। यदि उपभोक्ता को यह महसूस हो कि उसे जिला फोरम से न्याय नहीं मिला तो उसे राज्य आयोग में अपील करनी चाहिए।

अपील करने के नियम

1. अपील अपीलार्थी द्वारा व्यक्तिगत रूप से या प्रतिनिधि के द्वारा या रजिस्टर्ड डाक से भेजी जा सकती है।

2. अपील को टाइप (टंकित) करके भेजनी चाहिए। अपील करने के कारणों को स्पष्ट रूप से एवं क्रमश: लिखना चाहिए।
3. अपील में वर्णित तथ्यों को क्रमांक के साथ देना चाहिए। जैसे—(1), (2), (3)...आदि।
4. अपील के साथ जिला फोरम के फैसले की प्रमाणित प्रतिलिपि (जिला फोरम के सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित) संलग्न करनी चाहिए।
5. अपील के साथ वे कागजात भी संलग्न करने चाहिए, जिनके आधार पर अपील की जा रही है।
6. यदि अपील तीस दिनों के बाद की जा रही है तो विलंब माफी की अरजी (प्रार्थना-पत्र) भी अपील के साथ संलग्न करनी चाहिए।
7. अपील में सबसे पहले आयोग का नाम लिखा जाता है। तत्पश्चात् अपील ज्ञापन संख्या लिखी जाती है। इसके बाद अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के नाम एवं पतों का वर्णन किया जाता है। उपर्युक्त बातों के बाद अपील करने के स्पष्ट कारणों का वर्णन किया जाता है।

'च' के उपर्युक्त उदाहरण में यदि जिला फोरम 'च' के पक्ष में फैसला नहीं सुनाता है और उसको क्षतिपूर्ति नहीं दिलवाता है तो 'च' राज्य आयोग में निम्न प्रकार से (कल्पना के आधार पर) फैसले के तीस दिनों के भीतर अपील कर सकता है।

अपील (धारा 15/19 के अंतर्गत)

राज्य आयोग, दिल्ली

2002 की अपील ज्ञापन सं. क ख ग

अपीलार्थी—'च' पुत्र 'छ', जाति—दरजी, आयु—40 वर्ष, निवासी—सी-403, गांधी नगर, दिल्ली

प्रत्यर्थी—मै. 'अ' ऐंड संस, ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

2002 का मामला सं. क ख ग में जिला मंच के फैसले के खिलाफ धारा 15/19 के अधीन अपील।

अपील करने के कारण

1. यह कि जिला फोरम ने अपने फैसले में भारी भूल की है।
2. यह कि फोरम ने मुझे क्षतिपूर्ति की राशि 3,000 रुपए दिलवाई है, जो बहुत कम है।

3. यह कि फोरम ने प्रत्यर्थी के झूठे गवाहों पर विश्वास किया कि पंखा उच्च स्तर के मानकों के अनुसार था। (यहाँ पर मामले का पूरा वृत्तांत लिखा जाता है)
4. यह कि अपीलार्थी ने प्रश्नगत आदेश के विरुद्ध कोई कारस्वाई नहीं की है।
5. यह कि अपील निर्धारित समय सीमा में प्रस्तुत की गई है।
6. यह कि मैंने इस अपील से संबंधित संपूर्ण औपचारिकताएँ पूर्ण कर ली हैं।
7. अपीलार्थी राज्य आयोग में अपीलीय प्रार्थना-पत्र पेश कर विनम्र निवेदन करता है कि उसकी अपील को ग्रहण किया जाए और फोरम के आदेश में संशोधन कर अनुतोष राशि 3,000 रुपए से बढ़ाकर 14,550 रुपए कर दी जाए। यह मामला श्रीमानजी के क्षेत्राधिकार में है।

सत्यापन

मैं 'च' पुत्र श्री 'छ', जाति—दरजी, आयु—40 वर्ष, सी-403, गांधी नगर, दिल्ली का निवासी हूँ। मैं शपथपूर्वक घोषणा करता हूँ कि ऊपर जो जानकारी दी गई है वह सत्य है। ऊपर दिया गया कोई भी कथन मिथ्या नहीं है और न ही मैंने कोई तथ्य छुपाया है। यह सत्यापन आज दिनांक 01-06-03 को मेरे द्वारा परिवाद सत्यापन बमुकाम दिल्ली से किया गया।

शपथ गृहीता

'च'

(अपीलार्थी)

विलंब माफी का प्रार्थना-पत्र

सेवा में,

श्रीमान् अध्यक्षजी,
दिल्ली राज्य आयोग, दिल्ली

विषय—विलंब माफी हेतु।

महोदय,

नम्र निवेदन है कि जिला फोरम ने मेरे परिवाद का फैसला दिनांक 20-04-03 को दिया था, लेकिन अपील करने के निर्धारित समय में मेरे द्वारा पाँच दिन का विलंब हो गया, परंतु इस विलंब में मेरी कोई लापरवाही नहीं रही है। 15-05-03 से 25-05-03 तक राज्य आयोग का कार्यालय सरकारी छुट्टी के कारण बंद था। (यहाँ पर यदि विलंब का अन्य कोई कारण हो तो उसका वर्णन किया जाता है) ये

छुट्टियाँ मेरे नियंत्रण से बाहर थीं। अत: आयोग से निवेदन है कि मेरी अपील स्वीकार की जाए।

दिनांक.......... हस्ताक्षर अपीलार्थी

'च'

विलंब माफी का शपथ-पत्र 10 रुपए या 20 रुपए के नॉन जुडिशियल स्टांप पर निम्न प्रकार से लिखकर अपील के साथ पेश किया जाना चाहिए, ताकि राज्य/राष्ट्रीय आयोग आपकी बात से संतुष्ट होकर आपके विलंब को माफ कर सके। शपथ-पत्र एवं प्रार्थना-पत्र में अपील में हुए विलंब के कारणों का उल्लेख किया जाता है, जैसे—रेल दुर्घटना, सड़क दुर्घटना, बाढ़, भूकंप आदि।

शपथ-पत्र

मैं 'च' पुत्र श्री 'छ', जाति—दरजी, आयु—40 वर्ष, सी-403, गांधी नगर, दिल्ली का निवासी हूँ और निम्नांकित कथन शपथपूर्वक बयान करता हूँ—

1. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि जिला फोरम ने मेरे परिवाद का फैसला दिनांक 20-04-03 को दिया।
2. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि मैं राज्य आयोग में 15-04-03 को अपील करना चाहता था।
3. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि राज्य आयोग में 15-04-03 से 25-04-03 तक सरकारी अवकाश था।
4. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि मैंने अपील करने में कोई लापरवाही नहीं की।
5. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि यह विलंब मेरी लापरवाही के कारण नहीं हुआ।

मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि उपर्युक्त कथन पूर्णतया सत्य हैं। मैंने कोई भी तथ्य छुपाया नहीं है।

दिनांक .... शपथ गृहीता
स्थान ....

(उपभोक्ता के हस्ताक्षर)

शपथ-पत्र का एक अन्य उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है, क्योंकि विलंब का

कारण उपभोक्ता के नियंत्रण में नहीं होना चाहिए और विलंब उसकी लापरवाही या भूल के कारण नहीं होना चाहिए।

शपथ-पत्र

मैं 'क' पुत्र 'ख', जाति—सैनी, आयु—50 वर्ष, निवासी—डी-500, टोंक रोड, जयपुर निम्नांकित कथन शपथपूर्वक बयान करता हूँ—

1. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि मेरे परिवाद का फैसला 01-05-90 को जिला फोरम ने किया था।
2. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि मैं 27-05-90 को अपील करने के लिए रेलगाड़ी से दिल्ली आ रहा था।
3. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि रेलगाड़ी रास्ते में मध्य-रात्रि को दुर्घटनाग्रस्त हो गई।
4. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि इस दुर्घटना में मुझे गंभीर चोटें आईं।
5. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि इन चोटों के कारण मुझे पाँच दिनों तक सर गंगाराम अस्पताल में भरती रहना पड़ा।
6. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि इस दुर्घटना के कारण मुझे अपील करने में पाँच दिन का विलंब हो गया।
7. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि यह विलंब मेरी किसी भूल या गलती के कारण नहीं हुआ।
8. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि मैंने जान-बूझकर विलंब नहीं किया है।

मैं शपथपूर्वक बयान करता हूँ कि ऊपर लिखित कथन मेरी जानकारी एवं सूचना के अनुसार सत्य हैं और मैंने कोई भी कथन छुपाया नहीं है। ईश्वर मेरी सत्यबयानी में मदद करें।

दिनांक.................. शपथ गृहीता

स्थान ....

(उपभोक्ता के हस्ताक्षर)

(नोट— शपथ-पत्र नोटरी पब्लिक से अवश्य प्रमाणित कराएँ।)

जब किसी दुकानदार/ व्यापारी/ उत्पादनकर्ता/ विपक्षी व्यक्ति को उपभोक्ता अदालत का सम्मन मिलता है तो उस प्रतिपक्षी व्यक्ति को अपने ऊपर लगे आरोपों का लिखित में जवाब देना होता है, अर्थात् व्यापारी अपने खिलाफ हुई उपभोक्ता अदालत की काररवाई से प्रतिरक्षा करने के लिए अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों का उत्तर लिखित में देता है। प्रतिपक्षी द्वारा लिखित में दिए गए उत्तरों को लिखित

कथन कहते हैं।

कोई भी व्यक्ति अपने खिलाफ आरोपों का उत्तर देते समय उपभोक्ता अदालत में निम्नलिखित बिंदुओं का लाभ ले सकता है—

1. दुकानदार यह कह सकता है कि उसने उपभोक्ता को सेवा / माल मुफ्त में उपलब्ध करवाया था।
2. दुकानदार यह कह सकता है कि माल का क्रेता एक व्यापारी है और उसने माल पुन: बेचने के लिए खरीदा था।
3. क्रेता ने सामान अपने निजी उपयोग के लिए नहीं खरीदा था।
4. उपभोक्ता ने माल बोली/ नीलामी में खरीदा था।
5. उपभोक्ता ने अपने आपको व्यापारी बताया था और व्यापारी के भाव से माल खरीदा था।
6. दुकानदार इस कथन से अपनी रक्षा कर सकता है कि वह उपभोक्ता द्वारा क्रय किए गए माल को अपने व्यापार में बेचता ही नहीं है।
7. माल का विक्रेता यह कह सकता है कि उसका माल उचित मानकोंवाला था, लेकिन उपभोक्ता ने उसका भली-भाँति उपभोग नहीं किया।
8. दुकानदार यह भी कह सकता है कि उपभोक्ता ने माल का प्रयोग सावधानीपूर्वक नहीं किया, इससे उपभोक्ता को हानि उठानी पड़ी।
9. दुकानदार यह कहकर परिवाद खारिज करने की प्रार्थना कर सकता है कि माल का क्रेता उपभोक्ता की श्रेणी में नहीं आता है।

पीछे 'च' का जो मामला दिया गया है, उस मामले में प्रतिपक्षी मै. 'अ' ऐंड संस उपभोक्ता अदालत में अपना बचाव करने के लिए मामले का लिखित कथन इस प्रकार से दे सकता है—

जिला फोरम, नई दिल्ली

परिवादी का नाम—'च' पुत्र 'छ', जाति—दरजी, निवासी—सी-403, गांधी नगर, दिल्ली

विपक्षी का नाम—मै. 'अ' ऐंड संस, ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

2003... का मामला सं. 'क ख ग' में विपक्षी (मै. 'अ' ऐंड संस) उपभोक्ता परिवादी द्वारा दायर परिवाद के खिलाफ अपना लिखित उत्तर सविनय इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

1. यह कि विपक्षी के खिलाफ परिवादी द्वारा पेश की गई परिवाद एकदम झूठी है।

2. यह कि उपभोक्ता परिवादी द्वारा लगाए गए आरोपों का विपक्षी दोषी नहीं है, अत: वह प्रत्येक आरोप से इनकार करता है।
3. यह कि विपक्षी इलेक्ट्रॉनिक्स सामान का विक्रेता है तथा उच्च कोटि का ही सामान बेचता है।
4. यह कि उपभोक्ता ने विपक्षी की दुकान से जो पंखा खरीदा था, वह उच्च कोटि का पंखा था।
5. यह कि परिवादी उपभोक्ता ने उस पंखे को असावधानीपूर्वक ऊपर से गिरा दिया होगा या उपभोक्ता की छत से पानी रिसकर पंखे की मोटर में चला गया होगा।
6. यह कि विपक्षी द्वारा बेचे गए पंखे आज तक कभी भी दो वर्ष से पहले खराब नहीं हुए हैं।
7. क्योंकि यह पंखा ही परिवादी उपभोक्ता की असावधानी से खराब हुआ है। इसलिए इसमें विपक्षी विक्रेता का कोई दोष नहीं है।

अत: विपक्षी की प्रार्थना है कि परिवादी के मिथ्या परिवाद को तुरंत खारिज किया जाए और उसे (विपक्षी) निर्दोष मानते हुए उपभोक्ता से हर्जा-खर्चा दिलवाया जाए।

दिनांक 25-03-03

स्थान—दिल्ली हस्ताक्षर विपक्षी

यदि इस मामले में विपक्षी मै. 'अ' ऐंड संस को यह लगता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है और वह दोषी नहीं है तो वह मामले की अपील (जब जिला फोरम उसके खिलाफ फैसला दे) राज्य आयोग में निम्न प्रकार से (कल्पना के आधार पर) कर सकता है—

अपील (धारा 15/19 के अंतर्गत)

राज्य आयोग, दिल्ली

2003 की अपील ज्ञापन सं. 'क ख ग'

अपीलार्थी—मै. 'अ' ऐंड संस, ए-40, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

प्रत्यर्थी—'च' पुत्र 'छ', जाति—दरजी, निवासी—सी-403, गांधी नगर, दिल्ली 2003, 'क ख ग' का मामला संख्या 'क ख ग' में जिला मंच के फैसले के खिलाफ धारा 15/19 के अधीन अपील।

अपीलार्थी अपनी अपील के कारण को इस प्रकार से सविनय प्रस्तुत करता है—

1. यह कि जिला फोरम ने जो आदेश (निर्णय) दिया है, वह एकदम कानून और न्याय के खिलाफ है।
2. यह कि निर्णय देने में फोरम से भारी भूल हुई है।
3. यह कि अपीलार्थी एक पाक-साफ व्यक्ति है और अपने ग्राहकों को उच्च कोटि का माल ही बेचता है।
4. यह कि उपभोक्ता ने पंखे का प्रयोग कंपनी के निर्देशों के अनुसार नहीं किया और पंखे को ऊँचाई से गिराकर क्षतिग्रस्त किया।
5. यह कि अपीलार्थी द्वारा बेचा गया पंखा निम्न क्वालिटी का नहीं था और सभी मानकों के अनुसार उच्च क्वालिटी का था।
6. यह कि अपीलार्थी परिवादी उपभोक्ता के किसी भी आरोप का दोषी नहीं है।
7. यह कि अपीलार्थी ने अपील समय सीमा में पेश की है।
8. यह कि अपीलार्थी ने प्रश्नगत आदेश के खिलाफ कोई काररवाई नहीं की है।
9. यह कि अपीलार्थी ने अपील करने से संबंधित सभी औपचारिकताएँ पूर्ण कर ली हैं।

अत: अपीलार्थी राज्य आयोग में अपीलीय प्रार्थना-पत्र पेश कर विनम्र निवेदन करता है कि उसकी अपील को ग्रहण किया जाए और जिला फोरम का आदेश निरस्त कर मुझे राहत प्रदान की जाए।

दिनांक—25-08-03 हस्ताक्षर अपीलार्थी

स्थान—दिल्ली

(मै. 'अ' ऐंड संस)

आप उपभोक्ता मामलों से संबंधित अपनी समस्याओं के निवारण के लिए हेल्पलाइन नं 1600-11-4000 से सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इस कानून की अधिक जानकारी के लिए आप **www.core.nic.in** और **www.fcamin.nic.in** पर लॉग ऑन कर सकते हैं। आप अपनी शिकायत को **spcad@bis.org पर e-mail** भी कर सकते हैं।

इस अधिनियम में खतरनाक माल—मिलावटी खाद्य सामग्री, विवादास्पद माल को परीक्षण हेतु समुचित प्रयोगशाला में भेजा जाता है। इसकी परिभाषा अधिनियम की धारा 2(1)क में दी गई है।

☐

18

श्रम कानून

श्रमिकों से संबंधित कानून श्रम कानूनों की श्रेणी में आते हैं। पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था और औद्योगिक अर्थव्यवस्था श्रमिकों के श्रम पर टिकी हुई है। इस कारण श्रमिकों के हितों की रक्षा करना बहुत आवश्यक है। भारत में प्रमुख रूप से निम्नलिखित श्रम कानून प्रचलित हैं—

1. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम 1923
2. राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम 1948
3. कर्मचारी भविष्य निधि एवं विधि प्रावधान अधिनियम 1952
4. मातृत्व लाभ अधिनियम 1961
5. उपदान भुगतान अधिनियम 1972
6. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948
7. मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936
8. बोनस भुगतान अधिनियम 1965
9. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976
10. भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926
11. औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947
12. औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946
13. कारखाना अधिनियम 1948
14. भारतीय श्रम सांख्यिकी अधिनियम 1953
15. ठेका मजदूर (नियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम 1970।

1. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम 1923—इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा श्रमिक कार्यस्थल पर दुर्घटना में मरने या अपंग होने पर अपने मालिक (नियोक्ता) से सहायता राशि प्राप्त कर सकता है।

2. राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम 1948—इस अधिनियम द्वारा कर्मचारियों एवं उनके आश्रितों को सुरक्षा प्रदान की गई है। इस अधिनियम के

प्रावधानों के अनुसार कर्मचारी, नियोक्ता, सरकार तीनों मिलकर अंशदान करते हैं। इससे श्रमिक का भावी जीवन सुरक्षित हो जाता है।

3. कर्मचारी भविष्य निधि एवं विधि प्रावधान अधिनियम 1952—इस अधिनियम के अंतर्गत कर्मचारी को कुछ धनराशि प्रदान की जाती है। यह अंशदान योजना है। इसके प्रावधानों के अनुसार कर्मचारी सेवानिवृत्ति के बाद अपनी वृद्धावस्था आराम से गुजार सकता है।

4. मातृत्व लाभ अधिनियम 1961—इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार महिला श्रमिक प्रसव के दौरान सवैतनिक अवकाश प्राप्त कर सकती है। इस अधिनियम के अंतर्गत महिला श्रमिक कार्य के समय अपने बच्चे को दुग्धपान कराने हेतु दिन में दो बार विराम ले सकती है। ऐसा सवैतनिक अवकाश गर्भपात की शिकार महिला भी ले सकती है।

5. उपदान भुगतान अधिनियम 1972—यह अधिनियम उन श्रमिकों पर लागू होता है, जिनका मासिक वेतन 1,600 रुपए से कम है। यह उन्हीं कार्यस्थलों पर लागू होता है जहाँ पर कारखाना अधिनियम 1948 लागू होता है। यह अधिनियम ऐसे कार्यस्थलों पर लागू है जहाँ 10 या 10 से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं। इसका लाभ पाँच वर्ष तक कार्य करनेवाले श्रमिकों को मिलता है।

6. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948—यदि कोई मालिक (नियोक्ता) अपने कार्यस्थल पर कार्य करनेवाले श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी नहीं देता है या इस अधिनियम के किसी प्रावधान का पालन नहीं करता है तो धारा 22 के अनुसार उसे छह माह के कारावास अथवा 500 रुपए का जुरमाना अथवा दोनों दंड दिए जा सकते हैं।

7. मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936—यह अधिनियम श्रमिकों की मजदूरी के भुगतान को नियमित करता है तथा श्रमिकों की मजदूरी भुगतान के दिनांक, जुरमाना, स्वीकृत कटौतियों से संबंधित विवादों को नियमित करता है। यह श्रमिकों की मजदूरी से की जानेवाली अनधिकृत कटौतियों पर रोक लगाता है।

8. बोनस भुगतान अधिनियम 1965—यह अधिनियम उन औद्योगिक संस्थाओं पर लागू होता है, जिनमें किसी लेखा वर्ष में 20 या इससे अधिक कर्मचारियों की नियुक्ति हुई है। इस अधिनियम का लाभ इन कर्मचारी वर्गों को दिया गया है—

- बीमा निगम के कर्मचारी
- भारतीय रेडक्रॉस के कर्मचारी

- केंद्र और राज्य सरकार के कर्मचारी
- डाक कर्मचारी अधिनियम 1948 के अधीन कर्मचारी
- शिक्षण संस्थाओं द्वारा नियुक्त कर्मचारी
- रिजर्व बैंक और औद्योगिक वित्त निगम द्वारा नियुक्त कर्मचारी।

कोई भी कर्मचारी, जिसने एक लेखा वर्ष में कम-से-कम साठ दिन कार्य किया है और जिसको 600 रुपए वेतन मिलता हो, को बोनस दिया जाता है। न्यूनतम वार्षिक बोनस मजदूरी तथा महँगाई भत्ते का 4 प्रतिशत या 40 रुपए, जो भी अधिक हो, दिया जाता है। अधिकतम बोनस 20 प्रतिशत तक दिया जा सकता है।

9. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976—इस अधिनियम के समान कार्य के लिए पुरुष तथा महिला श्रमिकों को समान वेतन दिया जाना चाहिए। कोई भी नियोक्ता लिंग के आधार पर पारिश्रमिक में भेदभाव नहीं कर सकता है।

10. भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926—इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा मजदूर वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए यूनियन का गठन कर सकते हैं। ट्रेड यूनियन (व्यवसाय संघ) श्रमिकों का स्थायी या अस्थायी संघ होता है, जो श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के संबंधों को नियमित करता है। इसमें दो या दो से अधिक व्यवसाय संघों का परिसंघ भी शामिल हो सकता है।

11. औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947—इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा औद्योगिक विवादों (श्रमिकों और मालिकों) की जाँच, निपटारा, न्याय-निर्णय किया जाता है। इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा हड़ताल, तालाबंदी, जबरन छुट्टी, घेराव जैसी औद्योगिक समस्याओं से निपटा जाता है। इसके अधीन निम्नलिखित प्राधिकारी एवं प्राधिकरण विवादों को समाप्त करने के लिए सक्रिय रूप से कार्य करते हैं—

- कार्य समितियाँ
- समझौता अधिकारी
- समझौता बोर्ड
- जाँच न्यायालय
- श्रम न्यायालय
- औद्योगिक अधिकरण
- राष्ट्रीय अधिकरण।

12. कारखाना अधिनियम 1948—इस अधिनियम में कारखाने में कार्यरत श्रमिकों के कल्याण के लिए ये प्रावधान किए गए हैं—

- श्रमिकों को कपड़े धोने की व्यवस्था दी जानी चाहिए। (धारा 42)
- श्रमिकों को वस्त्रों को एकत्रित करने एवं उनको सुखाने की व्यवस्था दी जानी चाहिए। (धारा 43)
- श्रमिकों को आराम करने एवं बैठने की सुविधा दी जानी चाहिए। (धारा 42)
- श्रमिकों के लिए फर्स्ट एड बॉक्स उपलब्ध होना चाहिए। (धारा 42)
- श्रमिकों के लिए जलपान-गृह की व्यवस्था होनी चाहिए। (धारा 46)
- श्रमिकों के लिए विश्राम, आराम, भोजन-कक्ष की व्यवस्था होनी चाहिए। (धारा 47)
- महिला श्रमिकों के बच्चों के लिए शिशु-गृह की व्यवस्था होनी चाहिए। (धारा 48)
- श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त होना चाहिए। (धारा 49)

□

(19)

व्यापारिक कानून

व्यापारिक कानूनों में प्रमुख रूप से भारतीय संविदा (Contract) अधिनियम 1872 का नाम लिया जाता है। इस अधिनियम की धारा 2 एच के अनुसार, एक ऐसा ठहराव, जो राज-नियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है, संविदा कहलाता है। धारा 10 के अनुसार, समस्त करार संविदा हैं, यदि वे उन पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति से किए जाते हैं, जिनमें संविदा करने की क्षमता है, जो वैधानिक प्रतिफल के लिए तथा वैधानिक उद्देश्यों के लिए किए जाते हैं और जो इस अधिनियम के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित नहीं किए गए हैं। इसके अतिरिक्त यदि भारत में प्रचलित किसी विशेष राज-नियम द्वारा अनिवार्य हो तो करार लिखित हो या साक्षी द्वारा प्रमाणित हो अथवा पंजीकृत हो।

अत: संक्षेप में, एक वैध संविदा में निम्नलिखित तत्त्व होते हैं—

1. एक से अधिक पक्षकार
2. करार
   - प्रस्ताव
   - स्वीकृति
3. करार का वैधानिक रूप से लागू होना
4. पक्षकारों के बीच वैधानिक संबंध स्थापित करने की इच्छा
5. सहमति
6. स्वतंत्र सहमति
7. पक्षकारों की संविदा करने की क्षमता
8. वैध प्रतिफल
9. वैध उद्देश्य
10. स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित न हो
11. यदि आवश्यक हो तो लिखित, प्रमाणित व पंजीकृत हो
12. अर्थ निश्चित हो
13. निष्पादन की संभावना।

1. एक से अधिक पक्षकार—किसी भी वैध संविदा में कम-से-कम दो पक्षकारों का होना आवश्यक है।

2. करार—दोनों पक्षकारों के बीच कोई करार होना आवश्यक है। एक पक्षकार द्वारा प्रस्ताव किया जाना चाहिए तथा दूसरे पक्षकार द्वारा स्वीकृति दी जानी चाहिए।

3. करार का वैधानिक रूप से लागू होना—करार ऐसा होना चाहिए, जो कानूनन दोनों पक्षकारों पर लागू हो। यदि ऐसा नहीं होता है तो संविदा नहीं होगी।

4. पक्षकारों के बीच वैधानिक संबंध स्थापित करने की इच्छा—पक्षकारों के बीच वैधानिक संबंध स्थापित करने की इच्छा का होना आवश्यक है। जो शब्द मनोरंजन, मजाक, क्रोध में बोले जाते हैं उनके द्वारा संविदा का गठन नहीं होता है।

5. सहमति—किसी वैध संविदा के लिए पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति आवश्यक है। सहमति के लिए यह आवश्यक है कि संविदा के दोनों पक्ष (प्रस्तावकर्ता और स्वीकारकर्ता) एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत हों। यह सहमति उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, छल, मिथ्या वर्णन, गलती से ली गई नहीं होनी चाहिए—अर्थात् पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति होनी चाहिए।

6. पक्षकारों की संविदा करने की क्षमता—भारतीय संविदा अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित योग्यताधारी व्यक्ति ही संविदा कर सकते हैं—

- वयस्क व्यक्ति
- स्वस्थचित्त व्यक्ति
- राजदूत
- दिवालिया
- संविदा करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति।

7. वैध प्रतिफल—प्रतिफल वह मूल्य है जिसके बदले दूसरा पक्षकार प्रतिज्ञा खरीदता है। प्रतिफल प्रस्तावकर्ता की इच्छा पर स्वीकृतिकर्ता द्वारा किया गया कार्य है। एक वैध संविदा के लिए करार में प्रतिफल का होना आवश्यक है। प्रतिफल निश्चित, सुगम, वैध, नैतिक तथा कानून की दृष्टि में मूल्यवान् होना चाहिए।

8. वैध उद्देश्य—संविदा का उद्देश्य हमेशा वैध होना चाहिए। अवैध उद्देश्यों के लिए किया गया करार अवैध होता है।

9. स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित न हो—भारतीय संविदा अधिनियम में इन नौ संविदाओं को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किया गया है—

धारा 20—जब संविदा (करार) के दोनों पक्षकार करार के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर हैं।

धारा 26—अवयस्क को छोड़कर किसी व्यक्ति की शादी में रुकावट डालनेवाले करार।

धारा 27—व्यापार में बाधा डालनेवाले करार।

धारा 28—कानूनी कार्यों में बाधा डालनेवाले करार।

धारा 29—अनिश्चित अर्थवाले करार।

धारा 30—बाजी लगानेवाले करार।

धारा 56 (2)—आरंभ से ही असंभव करार।

धारा 23—आरंभ से ही अवैध उद्देश्यों के लिए किए जानेवाले करार। उदाहरण—किसी की हत्या के लिए सुपारी देना।

धारा 11 (i)—अवयस्क व्यक्ति द्वारा किया गया करार।

(ii)—अस्वस्थ व्यक्ति द्वारा किया गया करार।

10. यदि आवश्यक हो तो लिखित, प्रमाणित अथवा पंजीकृत हो—यदि भारत में प्रचलित किसी कानून के अधीन कोई करार लिखित, प्रमाणित अथवा पंजीकृत होना आवश्यक हो तो ऐसा किया जाना चाहिए।

उदाहरण—निम्नलिखित संविदाएँ मौखिक न होकर लिखित होनी चाहिए—

(क) बीमा की संविदा

(ख) पंच-निर्णय का समझौता

(ग) चेक, प्रतिज्ञा-पत्र, हुंडी, बिल आदि।

11. अर्थ निश्चित हो—किसी भी करार का अर्थ निश्चित होना चाहिए। अनिश्चित अर्थवाले करार कानूनन मान्य नहीं होते हैं।

12. निष्पादन की संभावना—संविदा का मुख्य उद्देश्य उसका निष्पादन किया जाना है। यदि करार का निष्पादन संभव नहीं है तो वह संविदा का रूप नहीं ले सकता है।

यदि संविदा का कोई पक्षकार वैध संविदा करने के बाद उसे भंग करता है या उसका पालन नहीं करता है तो संविदा का दूसरा पक्षकार न्यायालय के माध्यम से उस संविदा को लागू करवा सकता है या अपना हरजाना प्राप्त कर सकता है। संविदा भंग करनेवाला पक्षकार दूसरे पक्षकार को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी होता है।

□

20

संपत्ति अंतरण

सामान्य रूप से संपत्ति दो प्रकार की होती है—

(1) चल संपत्ति, (2) अचल संपत्ति।

चल संपत्ति—अचल संपत्ति को छोड़कर शेष सभी प्रकार की संपत्ति चल संपत्ति कहलाती है।

अचल संपत्ति—इसमें भूमि, भूमि से उत्पन्न लाभ तथा भूमि से जुड़ी वस्तुएँ शामिल होती हैं; परंतु अचल संपत्ति में खड़ी काष्ठ, उगनेवाली फसलें, घास शामिल नहीं हैं। अत: अचल संपत्ति में निम्न तीन प्रकार की संपत्ति शामिल हैं—

(क) भूमि

(ख) भूमि से उत्पन्न लाभ

(ग) भूमि से जुड़ी हुई वस्तुएँ।

मानव अपने जीवन में अनेक वस्तुओं का लेन-देन करता है और ये वस्तुएँ या तो चल संपत्ति में आती हैं या अचल संपत्ति में। सामान्यतया संपत्ति का अंतरण (Transfer) किया जा सकता है। संपत्ति का अंतरण केवल संपत्ति अंतरण अधिनियम 1882 के प्रावधानों के अनुसार ही किया जा सकता है।

संपत्ति अंतरण अधिनियम 1882 (टीपीए) की धारा 6 के अनुसार, निम्न प्रकार की संपत्ति का अंतरण नहीं किया जा सकता है—

- देवोत्तर संपत्ति
- सेवायती संपत्ति
- पत्नी के भरण-पोषण का अधिकार
- पत्नी की मेहर का अधिकार (मुसलिम कानून)
- वक्फ की संपत्ति
- मुतवल्ली का पद

- संभावित उत्तराधिकारी उत्तराधिकार की संपत्ति का अंतरण नहीं कर सकता
- पुन: प्रवेश का अधिकार
- सुखाचार का अलग से अंतरण
- हकशुफा (प्रिएंप्शन) का अधिकार
- माफी की भूमि
- धार्मिक पद
- परवरिश के लिए अनुदान
- यजमान वृत्ति
- महाब्राह्मण की आजीविका
- इनाम/ पुरस्कार
- केवल वाद लाने का अधिकार
- लोक अधिकारी का अंतरण
- लोक अधिकारी का पद
- लोक अधिकारी का वेतन
- पेंशन का अंतरण।

कोई भी स्वस्थचित्त एवं वयस्क व्यक्ति अपनी संपत्ति का अंतरण कर सकता है। इस अधिनियम की धारा 54 के अनुसार, कीमत के बदले किसी वस्तु के स्वामित्व (मालिकाना हक) के अंतरण को विक्रय कहा जाता है। सामान्यतया संपत्ति का अंतरण विक्रय द्वारा ही किया जाता है। किसी वैध विक्रय में निम्नलिखित तत्त्व होने आवश्यक हैं—

1. **विक्रय के पक्षकार**—विक्रय का पक्षकार संपत्ति का स्वामी होता है। वह विक्रय करने में सक्षम (स्वस्थचित्त एवं वयस्क) होना चाहिए।
2. **विक्रय की विषय व वस्तु (संपत्ति)**—विक्रय की एक विषय व वस्तु होनी चाहिए। इसमें कोई अधिकार भी हो सकता है, जैसे—मछली पकड़ने का अधिकार, कॉपीराइट का अधिकार आदि।
3. **अंतरण**—किसी विषय व वस्तु के अंतरण के बिना विक्रय संभव नहीं होता है। इस प्रकार का अंतरण किसी मूल्य के बदले किया जाता है। इसमें किसी वस्तु के स्वामित्व का अंतरण विक्रेता द्वारा क्रेता को किया जाता है।
4. **मूल्य या प्रतिफल**—किसी वस्तु के अंतरण के लिए मूल्य या प्रतिफल का भुगतान किया जाता है। विक्रय को पूर्ण करने के लिए मूल्य का पूर्व

में भुगतान करना आवश्यक नहीं है।

5. **क्रेता**—विक्रय में एक क्रेता भी होता है, जो मूल्य का भुगतान करके किसी वस्तु का अंतरण ग्रहण करता है।

संपत्ति अंतरण अधिनियम में विक्रय पूर्ण करने से पहले विक्रेता पर निम्नलिखित दायित्वों को पूरा करने का भार डाला गया है—

1. **कमियों को उजागर करना**—विक्रेता को विक्रय की जानेवाली संपत्ति की सभी कमियों को उजागर कर देना चाहिए। यदि विक्रेता ऐसा नहीं करता है तो क्रेता संविदा को छोड़ सकता है या विक्रेता पर क्षतिपूर्ति का वाद चला सकता है। क्रेता विक्रय को रद्द करने का परिवाद भी ला सकता है।
2. **हक विलेखों को प्रस्तुत करना**—अचल संपत्ति को बेचते समय विक्रेता को उस संपत्ति का स्वामी होने के विलेखों को प्रस्तुत करना चाहिए। इससे संपत्ति का क्रेता उसके मालिकाना हक के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है। विक्रेता संपत्ति के संबंध में क्रेता के सभी तर्कसंगत प्रश्नों के उत्तर देने के लिए बाध्य है।
3. **अंतरण का निष्पादन**—विक्रेता जब क्रेता से संपत्ति का पूरा मूल्य प्राप्त कर लेता है तब वह क्रेता के हक में अंतरण-पत्र निष्पादन के लिए बाध्य हो जाता है।
4. **संपत्ति की देखभाल**—बेचने के करार की तिथि से लेकर क्रेता को उस संपत्ति पर कब्जा देने की तिथि तक संपत्ति की देखभाल करने का दायित्व संपत्ति विक्रेता का होता है।
5. **करों की अदायगी**—विक्रय पूर्ण होनेवाली तिथि तक संपत्ति पर बकाया सभी करों के भुगतान की जिम्मेदारी संपत्ति विक्रेता की मानी गई है, अर्थात् विक्रय पूर्ण होने की तिथि तक का लोक-प्रभार व भाड़ा अदायगी का कर्तव्य विक्रेता का होता है।

विक्रय पूर्ण होने पर संपत्ति का अंतरण ग्रहण करनेवाले को निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करना होगा—

1. **तथ्यों को बताने का कर्तव्य**—क्रेता को संपत्ति पर अपने अधिकार की सीमा विक्रेता को बता देनी चाहिए।
2. **मूल्य का भुगतान करने का कर्तव्य**—संपत्ति के क्रेता को संपत्ति का मूल्य/प्रतिफल का भुगतान नियत तिथि को कर देना चाहिए।

3. **हानि उठाने का कर्तव्य**—संपत्ति अंतरण (विक्रय) के बाद यदि संपत्ति पर अचानक हानि होती है या संपत्ति नष्ट हो जाती है तो यह हानि क्रेता को ही उठानी होगी। इसके लिए विक्रेता किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं होगा।
4. **प्रभार भुगतान करने का कर्तव्य**—संपत्ति का क्रय करने के बाद क्रेता को ऐसी संपत्ति के सभी करों का भुगतान करना होगा। संपत्ति अंतरण के बाद संपत्ति के करों के भुगतान का दायित्व विक्रेता का नहीं होता है।
5. **लाभ एवं वृद्धियों पर अधिकार**—जब विक्रेता संपत्ति का अंतरण क्रेता को कर देता है तब उस संपत्ति के मूल्य में वृद्धि हो जाती है या आकस्मिक सुधार हो जाता है, तो इन सभी लाभों का हकदार क्रेता होता है। संपत्ति के अंतरण के बाद उसमें हुए सुधार का लाभ विक्रेता (संपत्ति अंतरक) प्राप्त नहीं कर सकता है।

□

21

आय कर

प्रत्येक देश की सरकार अपने नागरिकों पर अनेक प्रकार के कर लगाती है। आय कर एक प्रत्यक्ष कर है। इससे आम नागरिक सीधा प्रभावित होता है। आय कर व्यक्ति की वार्षिक आय पर लगता है। सरकार अपने नागरिकों के जीवन-स्तर में सुधार के लिए—बेहतर स्वास्थ्य एवं शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु—धन की आवश्यकता महसूस करती है। इस प्रकार की सेवाओं में लगाया जानेवाला धन सरकार अपने नागरिकों से कर के रूप में प्राप्त करती है। पाठकों की सुविधा के लिए बताया जा रहा है कि आयकर के प्रावधान प्रत्येक वित्तीय वर्ष में परिवर्तित होते हैं। अत: आयकर की गणना संबंधित वित्तीय वर्ष के प्रावधानों के अनुसार ही की जाती है। यहाँ पर आयकर की गणना करने का (प्रारंभिक) परिचय मात्र दिया जा रहा है।

आय कर से जुड़ी हुई कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं—

1. अधिभार— आय कर के निर्धारण (गणना) के बाद उसपर निर्धारित दर से एक कर और लगता है, उसे अधिभार कहते हैं। अधिभार शुद्ध आय कर पर लगता है।

2. वित्तीय वर्ष— 1 अप्रैल से 31 मार्च तक का समय एक वित्तीय वर्ष कहलाता है।

3. शुद्ध आय कर— आय कर में से धारा 88 की छूट (Rebate) घटाने पर शेष बचा आय कर ही शुद्ध आय कर (Net Income Tax) कहलाता है।

4. कर निर्धारण वर्ष— किसी वित्तीय वर्ष का आगामी वित्तीय वर्ष उसका कर निर्धारण वर्ष कहलाता है।

5. सकल आय— किसी एक वित्तीय वर्ष में सभी स्रोतों से प्राप्त आय का योग सकल आय होती है।

6. सकल आय से कटौतियाँ— सकल आय में से आय कर अधिनियम 1961 की धारा 80 सी सी सी से 80 यू के अधीन निर्धारित राशियाँ कटौतियाँ कहलाती हैं।

आय कर अधिनियम 1961 की धारा 10 के अनुसार, अग्रलिखित प्रकार की आय को कर-मुक्त आय घोषित किया गया है—

धारा 10 (1)	—	कृषि आय
धारा 10 (2)	—	हिंदू अविभाजित परिवार से आय
धारा 10 (2 ए)	—	फर्म की आय में साझेदार का भाग
धारा 10 (3)	—	आकस्मिक आय केवल 5,000 रुपए तक कर-मुक्त मानी गई है और घुड़दौड़ से प्राप्त आकस्मिक आय 2,500 रुपए तक ही कर-मुक्त है।
धारा 10 (4)	—	अनिवासी करदाता को ब्याज की आय
धारा 10 (4 बी)	—	अनिवासी करदाता को बचत-पत्रों पर मिलनेवाला ब्याज
धारा 10 (5)	—	यात्रा-व्यय में सहायता
धारा 10 (5 बी)	—	प्रविधिज्ञों के वेतन पर नियोक्ता द्वारा चुकाया गया कर, यदि सेवा 31 मार्च, 1993 के बाद शुरू की हो
धारा 10 (6)	—	विदेशी नागरिक की कर-मुक्त आय
धारा 10 (4 ए)	—	विदेशी कंपनी की ओर से चुकाया गया कर
धारा 10 (6 बी)	—	अनिवासी एवं विदेशी कंपनियों की आय
धारा 10 (6 बी बी)	—	विदेशी सरकार या विदेशी उद्यम की आय
धारा 10 (6 सी)	—	विदेशी कंपनी की आय
धारा 10 (7)	—	भारतीय नागरिक के भत्ते एवं अनुलाभ
धारा 10 (8)	—	सहकारी तकनीकी सहायता कार्यक्रम का वेतन
धारा 10 (8 ए)	—	सलाहकार का पारिश्रमिक
धारा 10 (8 बी)	—	एक व्यष्टि का पारिश्रामिक
धारा 10 (9)	—	परिवार के सदस्यों की आय
धारा 10 (10)	—	मृत्यु अथवा सेवानिवृत्ति पर प्राप्त उपदान
धारा 10 (10 ए)	—	पेंशन के बदले मिलनेवाली एक रकम
धारा 10 (6 ए ए)	—	उपार्जित अवकाश की अवधि का वेतन
धारा 10 (10 बी)	—	कर्मचारी को प्राप्त क्षतिपूर्ति
धारा 10 (10 बी बी)	—	भोपाल गैस कांड में पीड़ितों को प्राप्त रकम

धारा 10 (10 सी)	—	कुछेक कर्मचारियों को ऐच्छिक सेवानिवृत्ति पर प्राप्त रकम
धारा 10 (10 डी)	—	जीवन बीमा पॉलिसी की रकम पर प्राप्त भुगतान
धारा 10 (10) (12) (13)	—	भविष्य निधि जैसे फंडों से प्राप्त रकम
धारा 10 (10 ए)	—	मकान किराया भत्ता
धारा 10 (14)	—	कर्मचारियों को दिए गए विशेष भत्ते और लाभ
धारा 10 (14 ए)	—	विनिमय जोखिम प्रीमियम की आय
धारा 10 (15)	—	प्रतिभूतियों तथा जमा राशि पर ब्याज
धारा 10 (16)	—	छात्रवृत्तियाँ
धारा 10 (17)	—	सांसदों तथा विधायकों के भत्ते
धारा 10 (17 ए)	—	पुरस्कार
धारा 10 (19 ए)	—	भूतपूर्व शासकों (राजा-महाराजा) के मकानों की आय
धारा 10 (20)	—	स्थानीय सत्ता की आय
धारा 10 (21)	—	वैज्ञानिक अनुसंधान संघ की आय
धारा 10 (22 बी)	—	समाचार एजेंसी की आय
धारा 10 (23)	—	खेलकूद क्लबों की आय
धारा 10 (16 सी)	—	सरकारी सहायता कोष की आय
धारा 10 (24)	—	श्रमिक संघों की आय
धारा 10 (25 ए)	—	राज्य कर्मचारी बीमा कोष की आय
धारा 10 (26)	—	अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की आय
धारा 10 (25 ए)	—	लद्दाखवासियों की आय
धारा 10 (32)	—	अवयस्क बालक की आय
धारा 11	—	धार्मिक उद्देश्य के लिए रखी संपत्ति की आय
धारा 13 (ए)	—	राजनीतिक दलों की आय।

कुछ अन्य तरीकों से प्राप्त आय को भी पूर्ण रूप से कर-मुक्त किया गया है, लेकिन वे पाठकों के लिए उपयोगी न होने के कारण इसमें शामिल नहीं की गई हैं। यहाँ केवल वेतनभोगी (कर्मचारी) व्यक्तियों के आय कर की गणना के बारे में जानकारी दी गई है। किसी वेतनभोगी की आय से आय कर की गणना करते समय इस प्रकार की धनराशियाँ आय में शामिल नहीं की जाती हैं—अर्थात् इस प्रकार की

स्वीकृत कटौतियाँ हैं; लेकिन यहाँ पर आय में मकान किराया भत्ता शामिल नहीं किया गया है।

धारा 16 (i) मानक कटौती—

	आय	*मानक कटौती की रकम*
1.	1.5 लाख रुपए तक	33.33 प्रतिशत (अधिकतम 30 हजार रुपए)
2.	1.5 लाख से अधिक लेकिन 3 लाख से कम	25 हजार रुपए
3.	3 लाख से अधिक लेकिन 5 लाख से कम	20 हजार रुपए
4.	5 लाख रुपए और उससे अधिक	कुछ नहीं

उदाहरण—'क' की सकल आय 2,00,000 रुपए है तो उसके आय कर की गणना करते समय उसके सकल वेतन आय में से उपर्युक्त धारा 16 (i) के प्रावधानों के अनुसार 25,000 रुपए घटा दिए जाएँगे और आय कर योग्य राशि 1,75,000 रुपए होगी।

धारा 16 (iii) व्यवसाय कर—

मासिक सकल वेतन	*मानक कटौती की राशि*
12,501 से 15,500 रुपए तक	100 रुपए
15,501 से 20,500 रुपए तक	1,500 रुपए
20,500 से अधिक	200 रुपए

उदाहरण—'क' की सकल वेतन 2,00,000 रुपए है तथा वह 150 रुपए व्यवसाय करके प्रतिमाह अपने वेतन से कटवाता है तो 150×12= 1800 रुपए उसकी सकल आय से घटा दी जाएगी।

वेतन	= 2,00,000 रुपए
मानक कटौती	= 25,000 रुपए
शेष आय	= 1,75,000 रुपए
व्यवसाय कर	= 1,800 रुपए
शेष आय	= 1,75,000–1,800 रुपए
	= 1,73,200 रुपए
अत: कर की गणना योग्य आय होगी	= 1,73,200 रुपए

धारा 80 के अनुसार कुछ कटौतियाँ इस प्रकार हैं—

(i) धारा 80 CCC (i) — बीमा कंपनी द्वारा जारी पॉलिसियों की किस्त, जो कि अधिकतम 10,000 रुपए हो।

(ii) धारा 80 G — सकल आय का 10 प्रतिशत तक का दान। इन कोषों में दिया गया दान 100 प्रतिशत कर-मुक्त है—

(क) प्रधानमंत्री राहत कोष

(ख) राष्ट्रीय रक्षा कोष

(ग) प्रधानमंत्री सूखा राहत कोष

(घ) मुख्यमंत्री भूकंप राहत कोष, महाराष्ट्र

(iii) धारा 80 L — यदि किसी के सकल वेतन में निम्नलिखित आय शामिल हो तो—

(क) केंद्र व राज्य सरकार की प्रतिभूतियों का ब्याज

(ख) राष्ट्रीय बचत-पत्र के अष्टम निर्गमन

(ग) सहकारी समितियों से प्राप्त ब्याज व लाभ के अंश

(घ) डाकघर में जमा राशि पर ब्याज

(ङ) बैंक की जमा राशि पर ब्याज।

इस धारा के अधीन 12,000 रुपए तक की कटौती की जाती है। 12,000 रुपए की कटौती देने के बाद केंद्र व राज्य सरकार की प्रतिभूतियों की ब्याज की आय यदि शेष रहती है तो अधिकतम 3,000 रुपए की अतिरिक्त कटौती की जाती है।

धारा 88 के अधीन आय कर में छूट—इस धारा के अधीन 70,000 रुपए तक निम्न मदों में आय कर में छूट मिलती है—

(क) राज्य बीमा

(ख) जीवन बीमा

(ग) सामान्य एवं लोक भविष्य निधि

(घ) नया मकान बनवाने व खरीदने पर किए गए भुगतान की 20,000 रुपए तक की कटौती

(ङ) इन्फ्रास्ट्रक्चर बॉण्ड में 30,000 रुपए तक का निवेश।

उपर्युक्त धारा 88 के अंतर्गत निम्नलिखित प्रकार से छूट देने का प्रावधान है—

सकल आय	*प्रतिशत*
1.5 लाख रुपए से कम	20
1.5 लाख रुपए से अधिक	15
5 लाख रुपए से कम	—
5 लाख रुपए से अधिक	कुछ नहीं

धारा 88 C — कामकाजी महिलाओं को आय कर गणना में अतिरिक्त 5,000 रुपए की छूट प्रदान की जाती है।

स्थायी खाता संख्या (PAN)—प्रत्येक आय कर देनेवाले व्यक्ति को एक पैन कार्ड (PAN Card) जारी किया जाता है। इसका उल्लेख आय कर रिटर्न में करना आवश्यक है। पैन कार्ड बनाने के लिए आप इस पते पर संपर्क कर सकते हैं—

यू टी आई टेक्नोलॉजी सर्विस लि.,
इन्कम टैक्स पैन सर्विस यूनिट,
पोस्ट बॉक्स नं. 20, प्लाट नं. 3
सेक्टर 11, सी.बी.डी., बेलापुर
नई मुंबई-400614

आय कर रिटर्न के साथ निम्न कागजात लगाए जाने चाहिए—

- आय या आमदनी का प्रमाण-पत्र
- जीवन बीमा किस्त का प्रमाण
- एनएससी पीपीएफ की जमा रसीदें
- नियोक्ता द्वारा जारी किया गया मूल प्रपत्र 16 ए, जिसमें कुल वेतन, भत्ते, राज्य बीमा, भविष्य निधि, कटौतियों आदि का वर्णन हो।

आय कर गणना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

उदाहरण 1—'प' का वार्षिक वेतन 1,91,800 रुपए है, जिसमें मकान किराया भत्ता शामिल नहीं है। 'प' प्रति माह 150 रुपए व्यवसाय कर एवं 4,000 रुपए भविष्य निधि में जमा करवाता है। 'प' जीवन बीमा के 14,000 रुपए भी जमा करवाता है। 'प' के आय कर का निर्धारण निम्न प्रकार से होगा—

सकल आय = 1,91,800 रुपए

मानक कटौती = 25,000 रुपए, क्योंकि मानक कटौतीवाली सारणी देखने पर मोहन की सकल आय का वर्ग 1.5 लाख से अधिक और 3 लाख रुपए से कम वाला है।

शेष = 1,91,800–25,000 = 1,66,800 रुपए

व्यवसाय कर = 150×12 = 1800 रुपए

शेष = 1,66,800–1800 = 1,65,000 रुपए

अत: 'प' की कर योग्य आय 1,65,000 रुपए है। किसी भी व्यक्ति की कर योग्य आय पर आय कर की गणना आगे दी गई सारणी के अनुसार की जाती है—

आय	***कर की दर प्रतिशत***
50 हजार रुपए	कर–मुक्त
50,001 से 60,000 रुपए तक	10
60,001 से 1,50,000 तक	20
1,50,000 से अधिक पर	30

अत: 'प' का आय कर

प्रथम 50,000 रुपए	—	कुछ नहीं
50,001 से 60,000 तक	—	10 प्रतिशत =1000 रुपए
60,001 से 1,50,000 तक	—	20 प्रतिशत =18,000 रुपए
1,50,000 से अधिक पर (अर्थात् शेष रकम 15 हजार पर)	—	30 प्रतिशत =4500 रुपए
कुल आय कर		23,500 रुपए

कर में छूट पाने के लिए स्वीकार्य निवेश रकम

भविष्य निधि में किया गया वार्षिक

निवेश = 12×4,000	=	48,000 रुपए
जीवन बीमा में निवेश	=	14,000 रुपए
कुल निवेश	=	62,000 रुपए

धारा 88 सी के अंतर्गत कर में छूटवाली सारणी देखने पर 'प' की सकल आय का वर्ग 1.5 लाख रुपए से ज्यादा तथा 5 लाख रुपए से कमवाला है। अत: 'प' को स्वीकार्य निवेश पर 15 प्रतिशत की छूट मिलेगी।

$$62{,}000 \times \frac{15}{100} = 9{,}300 \text{ रुपए}$$

अत: 'प' द्वारा देय आय कर = 23,500 – 9,300

= 14,200 रुपए

अधिभार = $14,200 \times \frac{5}{100}$ = 710 रुपए

अत: 'प' को अपने सकल वेतन 1,91,800 रुपए पर 710+14,200= 14,910 रुपए आय कर देना होगा।

उदाहरण 2—'क' की वार्षिक आय 97,500 रुपए है। 'क' सुनामी- पीड़ितों की सहायता के लिए 1,500 रुपए प्रधानमंत्री राहत कोष में दान देता है। वह प्रतिमाह 500 रुपए भविष्य निधि में जमा करवाता है। 'क' प्रतिमाह 250 रुपए जीवन बीमा निगम में जमा करवाता है।

सकल आय = 97,500 रुपए
मानक कटौती = 30,000 रुपए
शेष = 97,500−30,000 = 67,500 रुपए

प्रधानमंत्री राहत कोष में सुनामी-पीड़ितों के लिए
दान = 1,500 रुपए
शेष = 67,500 − 1500 = 66,000 रुपए

आय कर गणना

प्रथम 50,000 रुपए कर-मुक्त
अगले 10,000 रुपए 10 प्रतिशत = 1,000 रुपए
अगले 6,000 रुपए 20 प्रतिशत = 1,200 रुपए

कुल आय कर = 2,200 रुपए

कर में छूट हेतु निवेशित धन =
भविष्य निधि में 500×12 = 6,000 रुपए
जीवन बीमा में 250×12 = 3,000 रुपए

कुल = 9,000 रुपए

धारा 88 के द्वारा छूट = $9,000 \times \frac{20}{100}$ = 1,800 रुपए

अत: देय आय कर = 2,200 रुपए − 1,800 रुपए
= 400 रुपए

अधिभार = $\frac{5}{100} \times 400$ = 20 रुपए

अत: कुल आय कर, जो कि 'क' को चुकाना है = 400 + 20 = 420 रुपए।

आय कर की गणना करनेवाले फॉरमेट (Format) का नमूना पत्र (केवल वेतनभोगियों के लिए) इस प्रकार है—

नाम..............................पद...........................विभाग (संस्था)
..................पता...
स्थायी खाता संख्या (PAN)...
वित्तीय वर्ष.............................कर-निर्धारण वर्ष......................

आय

1. मूल वेतन.......................................रुपए
2. भत्ते...रुपए
3. अन्य स्रोत..रुपए

सकल आय................................रुपए

मानक कटौती (धारा 16 (i) के अनुसार)

(क) 50,000 रुपए ....रुपए
(ख) 1,50,000 रुपए तक ....रुपए
(ग) 1,50,000 रुपए से अधिक परंतु
3,00,000 रुपए से कम तक ....रुपए
(घ) 5,00,000 रुपए तथा अधिक कुछ नहीं
व्यवसाय कर [धारा 16 (iii) के अनुसार]
....

कटौतियाँ (धारा 80 के अनुसार)

(क) पेंशन कोष [धारा 80 सी सी सी (i)]
10,000 रुपए तक..
(ख) दान (धारा 80 जी के अनुसार)..
(ग) ब्याज (धारा 80 एल के अनुसार)
(i) बैंक से (12,000 तक)..
(ii) सरकारी प्रतिभूतियाँ (3,000 रुपए तक)...........................
कुल कटौतियाँ...
कुल कर योग्य शुद्ध आय..

आय कर की गणना

(i) 50,000 रुपए तक कुछ नहीं
(ii) 50,000 रुपए से ज्यादा लेकिन 60,000 तक 10 प्रतिशत = ...
(iii) 60,000 रुपए से ज्यादा लेकिन 1.5 लाख रुपए तक 20 प्रतिशत = ...

(iv) 1.5 लाख रुपए से अधिक 30 प्रतिशत = ...

कुल आय कर =

आय कर राशि में छूट (धारा 88 के अनुसार)

(क) 70,000 रुपए तक

(i) राज्य बीमा किस्तें (SIP) = ...

(ii) जीवन बीमा किस्तें (LIP) = ...

(iii) यूनिट लिंक बीमा किस्तें (ULIP) = ...

(iv) सामान्य भविष्य निधि (GPF) = ...

(v) लोक भविष्य निधि (PPF) = ...

(vi) राष्ट्रीय बचत पत्र (NSS) व उसपर ब्याज = ...

(vii) अन्य स्वीकार्य मद = ...

कुल योग =

(ख) इन्फ्रास्ट्रक्चर बॉण्ड = ...

प्रतिशत हेतु परिकलन (सकल आय वर्ग के अनुसार)

(i) 1.5 लाख रुपए से कम (20 प्रतिशत) = ...

(ii) 1.5 लाख रुपए से ज्यादा या तक लेकिन
5 लाख रुपए से कम (15 प्रतिशत) = ...

(iii) 5 लाख रुपए तथा उससे अधिक (कुछ नहीं) = ...

(iv) धारा 88 C के अनुसार महिलाओं के लिए = ...

अत: शुद्ध देय आय कर राशि = ...

अधिभार 5 प्रतिशत (60,000 रुपए से ज्यादा सकल आय
होने पर) = ...

शुद्ध आय कर = ...

टी.डी.एस. = ...

कुल कर = शुद्ध आय कर—टी.डी.एस. = ...

देय आय कर = ...

स्थान : ....

दिनांक : ....

....

हस्ताक्षर आयकर दाता

22

बीमा

जोखिम और खतरे मानव जीवन के साथ-साथ चलते हैं। खतरों से मानव का चोली-दामन का साथ रहा है। इन खतरों के कारण घटनेवाली घटनाओं से मानव को अपार हानि होती है। ये घटनाएँ मानव की मृत्यु, चोरी-डकैती, अग्निकांड, बाढ़, भूकंप, युद्ध, सुनामी आदि के रूप में घटित हो सकती हैं। बीमा कंपनी ऐसी ही घटनाओं से होनेवाली हानि की पूर्ति करती है। बीमा की संविदा में बीमा कंपनी प्रीमियम के बदले बीमाधारक की मृत्यु, दुर्घटना आदि से होनेवाली हानि की पूर्ति करती है। अत: बीमा को क्षतिपूर्ति की संविदा कहते हैं।

गाउल्ड बनाम कुर्टिंस का (1913), 3 किंग्स बेंच 84, कॉमन अपील्स में कहा गया कि जीवन बीमा एवं बीमारी के बीमा क्षतिपूर्ति की संविदा नहीं है। इस प्रकार के बीमा में धन की हानि को सिद्ध करना आवश्यक नहीं होता है।

बीमा के प्रकार

1. समुद्री विमानन और परिवहन बीमा—इस प्रकार का बीमा जलयान, वायुयान, मोटरगाड़ी, ट्रक या इनकी मशीनरी, फर्नीचर आदि का होता है। इस प्रकार का बीमा इन पर लदे माल का भी किया जाता है।

2. मोटरयान बीमा—इस प्रकार का बीमा सड़क दुर्घटनाओं से सुरक्षा पाने के लिए किया जाता है।

3. संपत्ति बीमा—इस प्रकार का बीमा संपत्ति को क्षय या हानि से बचाने के लिए किया जाता है। यहाँ संपत्ति में जलयान, वायुयान, मोटरगाड़ी आदि शामिल नहीं हैं।

4. मामूली दीर्घकालिक बीमा—इस प्रकार का बीमा एक निश्चित समय के लिए किया जाता है। इस समय में किसी घटना के कारण हुई व्यक्तिगत मानवीय (मानव जीवन) क्षति का जोखिम बीमा कंपनी वहन करती है।

5. वैयक्तिक दुर्घटना बीमा—इस प्रकार के बीमा में किसी विशेष प्रकार

की दुर्घटना से (सड़क हादसा, फिसलना, बीमारी, साँप काटना आदि) हुई हानि की पूर्ति बीमा कंपनी द्वारा की जाती है।

6. औद्योगिक बीमा—उद्योगों को संकट से बचाने के लिए इस प्रकार का बीमा किया जाता है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

7. अग्नि बीमा—इसमें बीमा कंपनी (बीमाकर्ता) प्रीमियम के बदले बीमाकृत संपत्ति की अग्नि से होनेवाले नुकसान की क्षतिपूर्ति का वचन देती है। बीमाकर्ता अग्नि से होनेवाली हानि की क्षतिपूर्ति एक सीमा तक करता है।

जीवन बीमा का नियंत्रण बीमा अधिनियम 1938 व बीमा निगम अधिनियम 1956 द्वारा होता है। जीवन बीमा निगम द्वारा निम्नलिखित पॉलिसियाँ जारी की जाती हैं—

1. पूर्ण जीवन पर बीमा पॉलिसी—इस प्रकार की पॉलिसी में बीमा की राशि व्यक्ति की मृत्यु पर ही दी जाती है। इस बीमा का लाभ केवल उसके आश्रितों एवं वारिसों को ही मिलता है। इस प्रकार की पॉलिसी में प्रीमियम व्यक्ति जीवन भर जमा कराता है। इसमें बीमा की रकम का भुगतान बीमित व्यक्ति के नॉमिनी को किया जाता है।

2. इंडोमेंट पॉलिसी—इस प्रकार की पॉलिसी में बीमा की राशि एक निश्चित समय के बाद बीमित व्यक्ति को दी जाती है। यदि निश्चित समय से पूर्व बीमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो यह राशि उसके वारिसों या नॉमिनी को प्रदान की जाती है। यह एक प्रकार की पेंशन योजना है, जिससे वृद्धावस्था में जीवन-निर्वाह के साथ-साथ परिवार की आर्थिक सुरक्षा भी होती है।

3. संयुक्त जीवन पॉलिसी—इस प्रकार की पॉलिसी दो या दो से अधिक व्यक्तियों के जीवन पर ली जाती है। बीमा की रकम एक निश्चित समय बाद या बीमाकृत व्यक्तियों में से किसी एक की मृत्यु होने पर दी जाती है।

4. वार्षिकी पॉलिसी—इस प्रकार के बीमा में बीमा की राशि का भुगतान एक साथ नहीं किया जाता, बल्कि वार्षिकी के रूप में किया जाता है। नियमित आय प्राप्त करने के लिए यह अच्छी पॉलिसी है।

5. विवाह/शिक्षा सावधि पॉलिसी—बच्चों की शिक्षा एवं उनके विवाह के लिए धन की व्यवस्था के लिए इस प्रकार की पॉलिसी की जाती है। इस प्रकार की पॉलिसी में बीमाकृत व्यक्ति अपने जीवनकाल तक प्रीमियम का भुगतान करता है। बीमा कंपनी बच्चों की निश्चित आयु पर बीमा राशि का भुगतान करने का वचन

देती है। यदि बीमित व्यक्ति की असामयिक मृत्यु हो जाती है तो भी बीमा कंपनी बीमा की रकम का भुगतान करती है।

जीवन बीमा पॉलिसी के दावों का निपटारा

जीवन बीमा पॉलिसी का निर्धारित समय पूरा होने पर या बीमाकृत (बीमाधारी) व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर बीमा की रकम प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित काररवाई की जानी चाहिए—

1. निष्पन्न संविदा का प्रमाण-पत्र—पॉलिसी की अवधि पूर्ण होने पर या बीमाधारी की मृत्यु होने पर उसके वारिसों (विधिक प्रतिनिधियों) को इस बात का प्रमाण पेश करना होगा कि मृतक ने बीमा कंपनी (निगम) से जीवन बीमा की संविदा की थी अर्थात् बीमा पॉलिसी का वास्तविक प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना होगा।

2. हक का प्रमाण—पॉलिसी का समय पूर्ण होने पर या बीमित व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके वारिसों को पॉलिसी की रकम प्राप्त करने के लिए जीवन बीमा निगम के कार्यालय में हक का प्रमाण पेश करना होगा। यदि बीमा की रकम में परस्पर कोई विवाद है तो इसका निपटारा न्यायालय के माध्यम से किया जा सकता है।

3. आयु एवं स्वस्थता का प्रमाण-पत्र—बीमा पॉलिसी में प्रीमियम का निर्धारण आयु के आधार पर किया जाता है, इसलिए बीमा का क्रय करनेवाले को अपनी वास्तविक आयु प्रकट करनी चाहिए। आयु का प्रमाण-पत्र बीमा पॉलिसी जारी करते समय प्रस्तुत किया जाना चाहिए। एक बार आयु का प्रमाण-पत्र स्वीकृत होने पर इसके बारे में किसी भी प्रकार का विवाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। यदि बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो गई है तो उसकी मृत्यु का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। यह मृत्यु प्रमाण-पत्र नगरपालिका या मृत्यु रजिस्ट्रार या ऐसे व्यक्ति की गवाही से (जो कि मृतक के दाह-संस्कार और क्रिया-कर्म के समय उपस्थित था) जारी किया जा सकता है। यहाँ पर मृत्यु के अंतर्गत मृत्युदंड के कारण होनेवाली मृत्यु शामिल नहीं है।

जीवन बीमा-पत्र की प्रमुख शर्तें

1. जोखिम की शर्तें—जोखिम की शर्तें तभी लागू होती हैं जब बीमाकर्ता ने बीमा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया हो तथा बीमित व्यक्ति ने प्रीमियम का भुगतान कर दिया हो। जिस तिथि से बीमा प्रस्ताव किया गया है उससे भी पहले की तिथि से बीमा-पत्र को चालू कराने पर जोखिम भी पहलेवाली तिथि से आरंभ हो जाता है।

2. आयु प्रमाण की शर्त—बीमाकर्ता नामित व्यक्ति की सही आयु के आधार पर ही प्रीमियम प्राप्त कर सकता है, चाहे बीमा-पत्र में आयु कुछ भी लिखी हो।

3. प्रीमियम की शर्तें—बीमा के प्रीमियम का भुगतान मासिक, त्रैमासिक, छमाही, वार्षिक रूप में हो सकता है। प्रीमियम का भुगतान करने के लिए बीमित व्यक्ति को अतिरिक्त दिनों (Days of Grace) की छूट भी दी जा सकती है। मासिक प्रीमियम को छोड़कर शेष सभी प्रीमियमों की सूचना बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति को भेजता है।

4. बीमा-पत्र जारी करने की शर्तें—बीमा अधिनियम के अनुसार बीमा-पत्र जारी करने के दो वर्ष बाद इस आधार पर बीमा-पत्र को खारिज नहीं किया जा सकता कि कोई तथ्य प्रकट नहीं किया गया था। जोखिम भरे कार्य करनेवाले व्यक्ति को बीमा कंपनी को सूचित करना चाहिए, क्योंकि ऐसे व्यक्तियों से प्रीमियम कुछ ज्यादा दर से लिया जाता है। बीमा-पत्र जारी करने के बाद इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, लेकिन कुछ शर्तों के अधीन ऐसा आवेदन किया जा सकता है। बीमा-पत्र के खो जाने पर क्षतिपूर्ति विलेख लिखा जाना आवश्यक होता है। बीमा पर ऋण लेने के लिए वास्तविक बीमा-पत्र का होना आवश्यक है। बीमा पॉलिसी के चोरी होने पर इसकी सूचना शीघ्र पुलिस थाने तथा कंपनी के मंडल कार्यालय को देनी चाहिए। इसके बाद इसकी दूसरी प्रति जारी की जाती है। इसी प्रकार बीमा-पत्र के नष्ट हो जाने पर इसकी सूचना मंडल कार्यालय को दी जानी चाहिए। यदि बीमित व्यक्ति बीमा पॉलिसी के जारी होने के एक वर्ष के भीतर आत्महत्या कर लेता है तो बीमा कंपनी किसी भी प्रकार के भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं होती है।

5. बीमा-पत्र का लैप्स होना—यदि बीमित व्यक्ति भारतीय जीवन बीमा निगम की शर्तों के अधीन अपने प्रीमियम का भुगतान समय पर नहीं करता है तो उसका बीमा-पत्र लैप्स (Lapse) हो जाता है। जिनका तीन वर्षों का बकाया प्रीमियम जमा करवा दिया गया है, वे बीमा-पत्र पूर्ण रूप से व्यर्थ नहीं होते हैं। यदि बकाया प्रीमियम जमा कराने की तिथि से छह माह के भीतर बीमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो बीमा निगम से भुगतान प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कम-से-कम तीन वर्षों का प्रीमियम जमा करवा दिया गया हो। इसी प्रकार यदि किसी ने पाँच वर्षों का प्रीमियम जमा करवा दिया है और अदत्त प्रीमियम देय होने के बारह माह के अंदर बीमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो भी बीमा कंपनी से भुगतान प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति बीमा-पत्र की शर्तों का पालन नहीं करता है तो बीमा-पत्र जब्त किया जा सकता है। कालातीत (Lapse) पॉलिसियों का नवीनीकरण (पुनरारंभ) कुछ शर्तों के अधीन किया जा सकता है।

□

23

प्रमुख फैसले

उच्चतर न्यायालयों (उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय) के फैसले (Ruling) अधीनस्थ न्यायालयों के लिए मार्गदर्शक होते हैं। उच्चतम न्यायालय के फैसले संपूर्ण भारत की अदालतों के लिए मार्गदर्शक होते हैं और सभी अधीनस्थ अदालतें इनको आधार मानकर ही फैसला देती हैं। इसी प्रकार एक राज्य में उच्च न्यायालय सर्वेसर्वा होता है और उसका विनिर्णय (Ruling) संपूर्ण राज्य की अदालतों के लिए प्रकाश-पुंज होता है।

यहाँ पर पाठकों की सुविधा के लिए उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के प्रमुख फैसले प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इन फैसलों को पढ़कर आप कानून को निकटता से समझ सकेंगे। पाठकगण कुछ विशेष फैसलों का पूर्ण विवरण लेखक से संपर्क करके भी प्राप्त कर सकते हैं।

1. धनराज बनाम श्रीमती सूरज बाई (1973) 3 उम.नि.प. 826 के मामले में कहा कि सौतेली माता अपने सौतेले पुत्र को गोद नहीं ले सकती है।

[हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम 1956 की धारा 4, 5 (1) और 9 (1) के संदर्भ में]

2. बाई विजया (मृत) (विधिक प्रतिनिधियों द्वारा) बनाम भाई चेलाभाई और अन्य (1980) 1 उम.नि.प. 1178 के मामले में कहा कि किसी विधवा को किसी संपत्ति के उपभोग का अधिकार उस समय तक के लिए रहता है जब तक कि वह जीवित रहती है, तो किसी भी व्यक्ति को उसे ऐसे अधिकार से वंचित करने का अधिकार नहीं होता है।

[हिंदू (उत्तराधिकार) अधिनियम 1956 की धारा 14 (1) और 14 (2) के संदर्भ में]

3. वी.के. गुप्त बनाम श्रीमती निर्मला गुप्त (1982) 3 उम.नि.प. 652 के मामले में कहा कि पति द्वारा विवाह-विच्छेद (तलाक) के लिए न्यायालय में आवेदन देने पर पति-पत्नी के बीच समझौता कराने का प्रयास करना न्यायालय का

प्रथम कर्तव्य होता है।

[हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 23 (2) के संदर्भ में]

4. पेरुमल नडार (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के मार्फत बनाम पुन्नुस्वामी (1974) 3 उम.नि.प. 1675 के मामले में कहा कि एक हिंदू पुरुष और एक ईसाई महिला में विवाह के लिए ईसाई महिला के हिंदू धर्म में संपरिवर्तन होने का प्रमाण आवश्यक नहीं है। इसके लिए संपरिवर्तित करने का सद्भावपूर्ण आशय और उस आशय को अभिव्यक्त करने का आचरण पर्याप्त होगा। इस प्रकार संपरिवर्तित नारी और हिंदू पुरुष में हुआ विवाह कानूनी रूप से मान्य होगा।

5. एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स प्रा.लि. बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1986, एस.सी. 872 के मामले में कहा गया कि प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। इससे व्यक्ति के मानसिक एवं बौद्धिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

6. बदरुलनिसा बीबी बनाम मोहम्मद यूसुफ, ए.आई.आर. 1947, इलाहाबाद 3 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसी पत्नी, जो पति से अलग रहती है और अपने वैवाहिक कर्तव्यों का पालन नहीं करती है, तो वह पति से भरण-पोषण पाने की अधिकारिणी नहीं है।

7. हरिजय सिंह तथा विजय कुमार, ए.आई.आर. 1997, एस.सी. 73 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि प्रेस की स्वतंत्रता सदैव अबाध, अपरिसीमित एवं अप्रतिबंधित नहीं है। प्रेस को अबाध स्वतंत्रता देने का अर्थ उसे अनियंत्रित लाइसेंस देना होगा। ऐसा करने से समाज में अव्यवस्था एवं अराजकता उत्पन्न हो जाएगी।

8. पन्नीलाल बनाम राजिंदर सिंह और एक अन्य ए.आई.आर. 1993, एस.सी. 2444 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सामान्यतया अवयस्क का नैसर्गिक संरक्षक उसका पिता होता है, जब पिता अपनी अवयस्क संतान के काम-काज में कोई रुचि न ले रहा हो और ऐसा अवयस्क अपनी माता की अनन्य अभिरक्षा में हो तब माता को उसके नैसर्गिक संरक्षक के रूप में माना जा सकता है।

9. जोली जॉर्ज वर्गीज बनाम कोचीन बैंक, ए.आई.आर. 1988 स.को. 470 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि एक निर्धन परंतु ईमानदार कर्जदार को इस आधार पर गिरफ्तार करना और जेल में बंद करना कि वह अपनी गरीबी के कारण डिक्री में प्रदान की गई ऋण की रकम चुकाने में असमर्थ है, संविधान के अनुच्छेद 21 और इंटरनेशनल कोवनेंट ऑन सिविल ऐंड सिविल पॉलिटिकल राइट्स की धारा 11 का अतिक्रमण होगा।

10. एजुकेशन सोसाइटी ऑफ सोफिया, कोटा बनाम कैलाश चंद्र सिंहल

(अपील सं. 45/89, राजस्थान आयोग) के मामले में कहा गया कि शिक्षण संस्थाएँ व्यापार का स्थल नहीं हैं तथा शिक्षण संस्था में शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्र और उनके अभिभावक उपभोक्ता नहीं हैं।

लेकिन हाल ही में एक शिक्षण संस्था द्वारा कंप्यूटर शुल्क लेकर छात्रों को कंप्यूटर शिक्षा का उपलब्ध नहीं कराया जाना उपभोक्ता के अधिकारों का हनन माना गया तथा न्यायालय द्वारा विद्यालय को आदेश दिया गया कि संस्था छात्रों का शुल्क निश्चित ब्याज दर के साथ तुरंत लौटाए।

11. एस.पी. गोयल बनाम कलक्टर ऑफ स्टांप्स दिल्ली, ए.आई.आर. 1996 के मामले में कहा गया कि रजिस्ट्रीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करनेवाला व्यक्ति 'उपभोक्ता' की परिभाषा में नहीं आता है।

12. राज्य आयोग, आंध्र प्रदेश ने एक मामले में कहा कि डॉक्टर द्वारा रोगी को भुगतान के बदले उपलब्ध करवाई गई चिकित्सा सेवा, जो कि व्यावसायिक सेवा की श्रेणी में है, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत आती है।

13. राजकुमार बनाम राज्य सरकार (वाद संख्या 27, दिनांक 18.12.1979, एडीशनल सेशन न्यायालय, संगरूर) के मामले में फैसला दिया गया कि किसी भी राज्य में नामांकित या सूचीकृत या पंजीकृत व्यक्ति देश के किसी भी भाग में आर.एम.पी. के रूप में चिकित्सा कर सकता है।

14. जगतार सिंह बनाम निदेशक—केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य (1994) 1 उम.नि.प. 263 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित अभ्यर्थियों में से एक अभ्यर्थी को अनुपयुक्त मानकर नियुक्त न किया जाना और अभ्यर्थी द्वारा प्रस्तुत रिकॉर्ड को सरसरी तौर पर देख करके नियुक्ति के अधिकार से वंचित करना अनुचित है। अभ्यर्थी द्वारा प्रस्तुत चरित्र और पूर्ववृत्त से संबंधित दस्तावेजों की जाँच गंभीरता से की जानी चाहिए।

अर्थात् संघ लोक सेवा आयोग चयनित अभ्यर्थियों के चरित्र से संबंधित रिकॉर्ड को सरसरी नजर से देखकर अभ्यर्थियों को भरती से रोकना अनुचित है। संघ लोक सेवा आयोग को प्रस्तुत दस्तावेजों की गंभीरता से जाँच-पड़ताल करनी चाहिए।

15. भारत संघ और अन्य बनाम एस.एल. अब्बास (1994) 1 उम.नि.प. 303 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अखिल भारतीय सेवा में कार्यरत किसी व्यक्ति के स्थानांतरण को निश्चित (कि स्थानांतरण कहाँ करना है ?) करना समुचित अधिकारी का काम है। न्यायालय किसी स्थानांतरण आदेश में कोई दखल नहीं देगा, जब तक वह असद्भावनापूर्ण न हो।

16. राज्य सरकार (प्रतिनिधि ओषधि निरीक्षक) बनाम दीनानाथ (परिवाद सं. 230/85, दिनांक 30.8.1985, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मंडी, हि.प्र.) के मामले में कहा गया कि बिहार राज्य से पंजीकृत वैद्य ने मंडी में बिना लाइसेंस के एलोपैथिक दवा का प्रयोग करने और बेचने में कोई अपराध नहीं किया।

17. शीला बार्से बनाम भारत संघ (1994) 4 उम.नि.प. 137 के मामले में कहा गया कि पश्चिम बंगाल में मानसिक रूप से बीमार गैर-अपराधी व्यक्तियों को कारागारों में रखा जाना अवैध तथा असंवैधानिक है। [पागलपन अधिनियम 1913, धारा 13 तथा संविधान 1950 अनुच्छेद 21 और 32 के अंतर्गत]

18. पश्चिम बंगाल खेत मजदूर समिति बनाम पश्चिम बंगाल (1996) 45 सी सी 37 मामले में रेलगाड़ी से गिरकर घायल हुआ व्यक्ति सरकारी अस्पताल में स्थान की कमी के कारण भरती नहीं किया गया। इस घायल व्यक्ति को एक निजी नर्सिंग होम में भरती होना पड़ा। इस व्यक्ति ने सरकारी अस्पताल की स्थिति का वर्णन करते हुए उच्चतम न्यायालय में एक याचिका पेश की।

न्यायालय ने इस मामले में पीड़ित व्यक्ति को 25,000 रुपए की सहायता दिलवाई तथा कहा कि यह सरकार का कर्तव्य है कि अस्पतालों में स्थान की कमी को दूर करे।

19. मोहरी बीवी बनाम धर्मदास के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अवयस्क व्यक्ति के साथ किया गया अनुबंध/ संविदा/ एग्रीमेंट शुरू से ही शून्य होता है।

20. बकुला बाई और एक अन्य बनाम गंगाराम और एक अन्य (1988) 3 उम.नि.प. 581 के मामले [धारा (सीआर.पी.सी.) 125 तथा हिंदू अधिनियम 1955 की धारा 11 व 5 (1) (i)] में कहा गया कि हिंदू अधिनियम 1955 के लागू होने के बाद यदि कोई हिंदू स्त्री किसी ऐसे पुरुष के साथ विवाह करती है जिसकी पहली पत्नी या पत्नियाँ जीवित हों तो वह विवाह गैर-कानूनी और शून्य होता है। ऐसी स्त्री पति से भरण-पोषण पाने की अधिकारिणी नहीं होती है। इसी मामले में कहा गया कि संतान को भरण-पोषण देनेवाला आदेश 1984 में अंतिम हो गया था, किंतु मुद्रास्फीति के कारण धन के मूल्य और संतान की आयु को ध्यान में रखते हुए भरण-पोषण की राशि बढ़ाई जाएगी, अर्थात् महँगाई बढ़ने के साथ-साथ भरण-पोषण की रकम बढ़ाई जा सकती है।

21. के. बिमला बनाम के. बीरास्वामी (1991) 3 उम.नि.प. 603 के मामले में कहा गया कि पत्नी को दी जानेवाली भरण-पोषण की रकम पति के साधनों की समानुपातिक होनी चाहिए तथा पत्नी के पास भरण-पोषण के साधनों का अभाव होना आवश्यक है।

22. पीर मुहम्मद बनाम मुसम्मात बूशरा ए.आई.आर. 1956, राजस्थान 102 के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने कहा कि विधि (कानून) के प्रश्न पर हमारी राय है कि विघटन (तलाक) का दावा उत्पन्न होने के लिए भरण-पोषण देने में असफलता या उपेक्षा किसी औचित्य के बिना होना चाहिए, क्योंकि औचित्य है तो यह नहीं कहा जा सकता कि उपेक्षा हुई है।

23. पी. रत्लाय बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्राणों के अधिकार में मरने का अधिकार सम्मिलित नहीं है।

24. सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, ए.आई.आर. 1958, एस सी 1985 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि न्यायालय की अवमानना का प्रश्न किसी एक न्यायाधीश की गरिमा का प्रश्न नहीं है अपितु संपूर्ण न्यायपालिका के सम्मान का प्रश्न है। प्रेस का दायित्व है कि वह न्यायाधीश एवं न्यायपालिका की गरिमा और सम्मान की रक्षा करे।

25. एम. हसन बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, ए.आई.आर. 1998, एस.सी. 35 में कहा गया कि न्यायालय की गरिमा को बनाए रखना प्रेस का अहम दायित्व है।

26. नेशनल फेडरेशन ऑफ ब्लाइंड बनाम संघ लोक सेवा आयोग के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि विकलांग व्यक्ति प्रशासनिक सेवा परीक्षा (I.A.S.) में सहायक लेखक विधि (किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता से परीक्षा देना) द्वारा दे सकता है।

27. हनुमान प्रसाद दरबान बनाम डॉ. सी.एस. शर्मा, एस.एम.एस. हॉस्पिटल, जयपुर (परिवाद सं. 3/89, राजस्थान राज्य आयोग) के मामले में आयोग ने कहा कि नि:शुल्क चिकित्सा सेवाएँ प्राप्त करनेवाला व्यक्ति उपभोक्ता नहीं है।

28. राजस्थान राज्य बनाम गंगाधर (आपराधिक प्रकरण सं. 265/97, धारा आई.पी.सी. 304 ए) के मामले में फैसला दिया गया कि उपेक्षा द्वारा मृत्यु होने पर चिकित्सक द्वारा उपेक्षा साबित करना आवश्यक है।

29. पृथ्वी चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (1989) 4 उम.नि.प. 278, सीआर.पी.सी. धारा 154 के मामले में फैसला दिया कि अवयस्क लड़की के साथ हुए बलात्कार के बारे में एफ.आई.आर. (प्राथमिकी) दर्ज कराने में विलंब—पीड़िता द्वारा अपनी माता और अन्य महिलाओं को तत्काल घटना का बताया जाना, लेकिन अपने पिता के आने पर एफ.आई.आर. दर्ज करवाने गई, क्योंकि पहले दिन शाम को अँधेरा हो गया था। ऐसी स्थिति में अगले दिन एफ.आई.आर. दर्ज करवाया जाता है तो इसे विलंब नहीं माना जाएगा।

30. भगवान सिंह और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य (1992) 3 उम.नि.प.

449, धारा 160 और 161 सीआर.पी.सी. के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को पुलिस द्वारा पूछताछ के दौरान यंत्रणा देना या तृतीय श्रेणी के तरीकों का प्रयोग करना गैर-कानूनी और बर्बर तरीका है। पुलिस को ऐसे व्यक्तियों के साथ शारीरिक यंत्रणा का प्रयोग करने के बजाय कोई वैज्ञानिक पद्धति अपनानी चाहिए।

31. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (C.B.I.) बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी (1992) 3 उम.नि.प. 427, सीआर.पी.सी. धारा 167(2) के मामले में न्यायालय ने कहा कि अभियुक्त की पुलिस अभिरक्षा केवल पंद्रह दिनों तक होगी। इसके बाद यथास्थिति नब्बे दिनों या साठ दिनों की अवधि के दौरान अतिरिक्त प्रतिप्रेषण केवल न्यायिक अभिरक्षा में होगा। इसी मामले में कहा गया कि गिरफ्तारी के बाद अभियुक्त की अभिरक्षा की अवधि पंद्रह दिन से अधिक नहीं हो सकती, चाहे वह पुलिस अभिरक्षा हो या न्यायिक अभिरक्षा।

32. नूरशबा खातून बनाम मोहम्मद कासिम ए.आई.आर. 1997, एस.सी. 3280 के मामले में न्यायालय ने कहा कि एक मुसलिम तलाकशुदा महिला अपने पति से भरण-पोषण (गुजारा-भत्ता) तब तक प्राप्त कर सकती है जब तक उसके बच्चे वयस्क नहीं हो जाते हैं।

33. जनरल मैनेजर साउथ-ईस्टर्न रेलवे बनाम आनंद प्रसाद सिन्हा (अपील सं. 3/88, राष्ट्रीय आयोग) के मामले में राष्ट्रीय आयोग ने कहा कि टिकट लेकर रेल में यात्रा करनेवाला व्यक्ति उपभोक्ता माना जाता है।

34. मित्तल ट्रेडिंग एजेंसी बनाम पंजाब राज्य सरकार एवं अन्य (सिविल रिटपिटीशन नं. 6308, 1975 दिनांक 10.11.1982) के मामले में पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय ने कहा कि भारत के किसी भी राज्य में रजिस्टर्ड वैद्य संपूर्ण भारत में रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिसनर (RMP) माना जाएगा।

35. सुरजीत सिंह उर्फ गुरमीत सिंह बनाम पंजाब राज्य (1992) 4 उम.नि.प. 107, धारा 154 सीआर.पी.सी. के मामले में कहा गया कि आपराधिक मामलों में एफ.आई.आर. एक मूल्यवान् दस्तावेज होता है, लेकिन एफ.आई.आर. गवाह (साक्ष्य) का सारवान भाग नहीं होता है। एफ.आई.आर. का उपयोग केवल सूचना देनेवाले के कथन का समर्थन या उसका विरोध करने के लिए किया जाता है।

36. खुज्जी उर्फ सुरेंद्र तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1992) 2 उम.नि.प. 1, धारा 174 सीआर.पी.सी. के मामले में कहा गया कि हत्या के मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 के अंतर्गत तैयार की गई मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में किसी चश्मदीद गवाह के नाम का उल्लेख न होने से उसका साक्ष्य अग्राह्य (लेने योग्य

नहीं) नहीं हो जाता है।

37. दौलतराम बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर. 1972, एस.सी. 2423 के मामले में कहा गया कि कम आयु के अपराधी को जेल नहीं भेजा जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ वह पेशेवर अपराधियों के संपर्क में आता है और अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाता है।

38. जनवेद सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1972, एस.सी. 2427 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि परिवीक्षा अधिनियम केवल उन मामलों में लागू होता है, जिनमें मृत्युदंड या आजीवन कारावास की सजा न हो। इसी प्रकार का निर्णय सोमनाथ पुरी बनाम राजस्थान राज्य ए.आई.आर. 1972, एस.सी. 1490 के मामले में दिया गया था।

39. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1982, एस.सी. 1473 के मामले में फैसला दिया जा चुका है कि बेगार या जबरदस्ती काम कराना अपराध है। जबरदस्ती काम करवाकर मजदूरी देने या नहीं देने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

40. मोहिंद्रा गैस एंटरप्राइजेज बनाम जगदीश पोसवाल (आर.एल.टी. 1993, पृष्ठ 52) के मामले में फैसला दिया कि गैस वितरक के यहाँ रजिस्ट्रेशन करानेवाला व्यक्ति उपभोक्ता है और वह उपभोक्ता की हैसियत से परिवाद ला सकता है।

41. कॉस्मोपोलिटिन अस्पताल बनाम श्रीमती वंसथा पी. नायर (सी.पी.आर. पृष्ठ 820, 1992, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली) के मामले में कहा गया कि मरीज से मूल्य प्राप्त करके चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराना उपभोक्ता अधिनियम 1986 के अंतर्गत आता है। यदि यह सेवा किसी चिकित्सक द्वारा उपेक्षापूर्ण तरीके से उपलब्ध कराई गई है तो चिकित्सक के खिलाफ परिवाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

42. पवित्री देवी और एक अन्य बनाम दरबारी सिंह और अन्य (1994) 1 उम.नि.प. 980 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संयुक्त (हिंदू) परिवार के प्रबंध को वेतन के बदले हिंदू संयुक्त परिवार की संपत्ति में अविभक्त हित का अन्य संक्रमण करने का अधिकार होता है।

43. चंद्रशेखर बनाम उत्तर प्रदेश, 1978, क्रि.एल.जे. 540, इलाहाबाद के मामले में सीआर.पी.सी. की धारा 125 की व्याख्या करते हुए उच्च न्यायालय ने कहा कि 'भरण-पोषण में असमर्थ' का यह अर्थ नहीं है कि वह औरत दीन-हीन अवस्था में सड़कों पर दर-दर की ठोकरें खा रही हो, भीख माँग रही हो और फटे-पुराने कपड़े पहने हो। इस प्रकार की व्याख्या एक अन्य मामले में की गई।

44. के. कृष्ण अय्यर बनाम केरल राज्य और एक अन्य (1994) 1 उम.नि.प. 362 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने दंडशास्त्र के संदर्भ में कहा कि किसी गंभीर अपराध के लिए किसी अभियुक्त को आरोपित किया गया हो और दोष-सिद्धि नहीं होने के बाद भी न्यायालय अभियुक्त को किसी छोटे अपराध के लिए दोष-सिद्ध कर सकता है। इसी मामले में आगे कहा गया कि अपराध समाज के लिए अनैतिक कार्य है और अभियुक्त किसी भी सहानुभूति का पात्र नहीं है। [दंडशास्त्र]

45. नूर बीवी बनाम पीर बख्श, ए.आई.आर. 1950, सिंध 8 के मामले में फैसला दिया गया कि यदि कोई मुसलिम पत्नी अपने पति से लगातार दो वर्षों तक भरण-पोषण प्राप्त नहीं करती है और पति गुजारा भत्ता देने में असफल रहता है, तो उस स्थिति में पत्नी तलाक लेने का अधिकार रखती है।

46. जनरल मैनेजर टेलीकॉम, जयपुर बनाम नीलेश अग्रवाल (रिवीजन सं. 1/89, राजस्थान आयोग) के मामले में टेलीफोन धारक को उपभोक्ता माना गया और कहा गया कि टेलीफोन का उपयोग करनेवाला (धारक) परिवाद प्रस्तुत कर सकता है।

47. पंजाब सरकार बनाम दीप सिंह (मुकदमा सं. 365, दिनांक 30.12.1974, निर्णय दिनांक 18.12.1976, गोशवारा नं. 5004 जी.एफ.) के मामले में (ओषधि प्रसाधन अधिनियम 1940) न्यायिक मजिस्ट्रेट रोपड़ ने कहा कि किसी दूसरे राज्य में रजिस्टर्ड वैद्य अपने रोगियों को एलोपैथिक दवा दे सकता है और स्टॉक में भी रख सकता है।

48. स्वराज लक्ष्मी बनाम डॉ. जी.जी. पद्मराज (1974) 1 उम.नि.प. 136 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि लेप्रोमा से ग्रस्त उग्र और असाध्य कुष्ठ रोग के कारण तलाक की डिक्री (विवाह-विच्छेद की डिक्री) दी जानी चाहिए।

49. जे.एल. नंदा बनाम श्रीमती वीना नंदा (1988) 2 उम.नि.प. 802 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 19 (1) क, ख और धारा 13 की व्याख्या करते हुए कहा कि यदि पति अपनी पत्नी से तलाक लेने के लिए यह दलील देता है कि उसकी पत्नी की क्रूरता के कारण उसे बीमारियाँ हो गई हैं और इनको साबित करने के लिए उसके पास कोई सामग्री न हो तो वह तलाक का हकदार नहीं होगा।

50. श्रीमती सुरेशटा देवी बनाम ओम प्रकाश (1991) 3 उम.नि.प. 434 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने हिंदू विवाह-विच्छेद अधिनियम 1955 की धारा 13 (ख) की व्याख्या करते हुए कहा कि तलाक की अरजी पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से देने के बाद तलाक की डिक्री पारित होने तक किसी

भी समय कोई भी पक्षकार अपनी सम्मति (अरजी) एकपक्षीय रूप से वापस ले सकता है। इसी मामले में धारा 13 (ख) और 23 (1) (ख) के बारे में कहा गया कि न्यायालय यह तय करने के लिए तलाक की अरजी में दिए गए तथ्य और पक्षकारों की सहमति बल-कपट द्वारा नहीं ली गई है, तथ्यों की जाँच कर सकता है और दोनों पक्षकारों को सुनने के बाद उनकी परीक्षा कर सकता है।

51. जुगराज सिंह बनाम जसवंत सिंह, ए.आई.आर. 1971, एस.सी. 761 के मामले में न्यायालय ने फैसला दिया कि पब्लिक नोटरी पद में विदेश के नोटरी भी सम्मिलित होते हैं।

52. भारतीय जीवन बीमा निगम, मुंबई बनाम चतुर बिहारी लाल, उदयपुर (अपील सं. 29/89) के मामले में कहा गया कि जीवन बीमा करवानेवाला उपभोक्ता माना जाता है। इसी प्रकार का फैसला श्रीमती उर्मिला गोयल बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम (वाद सं. 98/89, राजस्थान आयोग) के मामले में दिया गया।

53. कंज्यूमर यूनिटी ऐंड ट्रस्ट सोसाइटी, जयपुर बनाम सेक्रेटरी, मेडिकल ऐंड हेल्थ डिपार्टमेंट, जयपुर (परिवाद सं. 1, 1988 राजस्थान आयोग, दिनांक 3.1.1989) के मामले में कहा गया कि नसबंदी के मामलों में सरकार द्वारा नियुक्त चिकित्सक की सेवाएँ अवक्रम की परिधि में नहीं आती हैं।

54. साऊ आशाबाई काटे बनाम विट्ठल भीका नाडे (1990) 3 उम.नि.प. 588 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 14 (1) के संदर्भ में कहा कि सहदायिक (संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य) के मरने के बाद उसका आधा हिस्सा उसकी विधवा को पूर्ण स्वामिनी के रूप में प्राप्त होता है। विधवा के पुत्र का आधा उसकी विधवा द्वारा दूसरा विवाह किए जाने के बाद पौत्री को प्राप्त होता है।

55. सहेली महिला संसाधन केंद्र, सुश्री नलिनी भनोट और अन्य की मार्फत बनाम पुलिस आयुक्त, पुलिस मुख्यालय दिल्ली और अन्य (1990) 1 उम.नि.प. 562 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सरकारी सेवक द्वारा किए गए कृत्य के प्रति राज्य का दायित्व होता है। पुलिसकर्मी के बल-प्रयोग द्वारा नौ वर्षीय एक बालक की मृत्यु होने पर बालक की माता को राज्य द्वारा 75,000 रुपए हरजाने के रूप में मिलने चाहिए।

56. ईशरदास बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1972, एस.सी. 1295 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अपराधी की आयु इक्कीस वर्ष से ज्यादा होने पर परिवीक्षा अधिनियम के प्रावधानों का प्रयोग उदार नहीं होना चाहिए।

57. अब्दुल कयूम बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1972, एस.सी. 214 के मामले अभियुक्त आई.पी.सी. की धारा 497 का दोषी था, लेकिन अभियुक्त पेशेवर अपराधी नहीं होने के कारण और उसकी आयु अठारह वर्ष होने के कारण उसको परिवीक्षा का लाभ दिया गया। इस मामले में अभियुक्त ने बंध-पत्र तथा उसके पिता ने प्रतिभू (गारंटी) के पत्र प्रस्तुत किए थे।

58. एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1987, एस.सी. 1087 के मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा कि कोई भी निर्धन व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में पत्र लिखकर लोकहित का मुकदमा चला सकता है। इसके लिए शपथ-पत्र की आवश्यकता नहीं होती है।

59. कन्हैयालाल माथुर बनाम राजस्थान आवासन मंडल (परिवाद सं. 1/89, राजस्थान आयोग) के मामले में आयोग ने कहा कि आवासन मंडल (हाउसिंग बोर्ड) द्वारा भूखंड या मकान आवंटन में भूखंड अथवा मकान प्राप्त करने के लिए आवेदन करनेवाले व्यक्ति को उपभोक्ता माना जाता है।

60. रामलाल बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (क्रिमिनल रिवीजन सं. 92, 1979, निर्णय दिनांक 22.12.1982) के मामले में कहा गया कि रजिस्टर्ड वैद्य अंग्रेजी दवाएँ मरीजों के लिए रख सकते हैं, लेकिन विक्रय नहीं कर सकते हैं।

61. रशीद अहमद बनाम अनीसा खातून (1932) 59 आई.ए. 21 के मामले में कहा गया कि यदि मुसलिम मौखिक तलाक में बोले गए शब्द स्पष्ट होते हैं तो उन शब्दों के अर्थ या आशय को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है, जैसे—'मैं तुम्हें तलाक देता हूँ', 'मैं हमेशा के लिए अपनी बीवी को छोड़ता हूँ और उसको हराम समझता हूँ' आदि।

62. मैना बीवी बनाम चौधरी वकील अहमद, 52 आई.ए. 145 के मामले में कहा गया कि यदि विधवा अपने पति की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर शांत व वैध तरीके से कब्जा प्राप्त कर लेती है तो उस संपत्ति को कब्जे में उस समय तक रख सकती है जब तक कि उसका मेहर ऋण अदा नहीं कर दिया जाए। मेहर ऋण की एवज में काबिज संपत्ति पर विधवा का मालिकाना अधिकार नहीं होता है और वह ऐसी संपत्ति को किसी अन्य को हस्तांतरित नहीं कर सकती है। यदि विधवा ऐसी संपत्ति का हस्तांतरण करती है तो उसका स्वयं का कब्जा बनाए रखने का अधिकार भी समाप्त हो जाता है।

63. गरीबदास बनाम मुंशी अब्दुल हमीद, ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 1035 के मामले में उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा कि वक्फ की पूर्णता के लिए वक्फ करने का आशय व घोषणा काफी है। एक बार वैध वक्फ हो

जाने पर उसे खंडित करने का अधिकार किसी को भी नहीं होता है। वक्फ का व्यवस्थापक प्रथम मुतवल्ली हो सकता है और ऐसी स्थिति में वक्फ संपत्ति का कब्जा हस्तांतरित करना आवश्यक नहीं होता है।

64. मोहम्मद अहमद खाँ बनाम शाह बानू बेगम, ए.आई.आर. 1985, एस.सी. 945 के मामले में कहा गया कि सीआर.पी.सी. की धारा 125 में 'तलाकशुदा पत्नी' शब्द में मुसलिम महिला भी शामिल है। इस धारा के अंतर्गत प्रत्येक मुसलिम पति को अपनी तलाकशुदा पत्नी को भरण-पोषण देना होगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 तथा मुसलिम व्यक्तिगत विधि में कोई विरोधाभास नहीं है।

65. परमानंद कटरा बनाम भारत संघ के मामले में कहा गया कि दुर्घटना में घायल व्यक्ति का पहले अस्पताल में उपचार किया जाना चाहिए। पुलिस संबंधी काररवाई बाद में की जानी चाहिए। यदि कोई चिकित्सक ऐसा नहीं करता है तो घायल व्यक्ति उस चिकित्सक के विरुद्ध काररवाई करने के लिए स्वतंत्र है।

66. उम्मेदी लाल अग्रवाल बनाम के.के. नागपाल (परिवाद सं. 4/88, राजस्थान आयोग) के मामले में निर्णय दिया गया कि प्रत्येक उपभोक्ता परिवादी है और वह परिवाद ला सकता है।

67. अब्दुल कादिर बनाम सलीमा (1886) 8 इलाहाबाद 149 (फु.बै.) के विद्वान् न्यायाधीश श्री महमूद ने कहा कि मुसलमानों में विवाह एक संस्कार न होकर एक दीवानी संविदा है। 'कुरान' की आयतों के पठन के बाद भी यह मात्र एक संविदा (Contract) है। विवाह के बाद पत्नी का अधिकार अपने देय मेहर पर तुरंत हो जाता है। पत्नी तुरंत देय मेहर की माँग कभी भी कर सकती है। इसकी कोई समय सीमा नहीं है। मेहर प्राप्त करने का अधिकार सहवास करने के अधिकार से पूर्व का या बाद का अधिकार नहीं है, अर्थात् इन दोनों अधिकारों की उत्पत्ति एक साथ ही होती है। सहवास करने के बाद इस आधार पर पति द्वारा दायर किया गया दांपत्य अधिकारों के पुनर्स्थापना का वाद असफल नहीं होगा कि पति ने मेहर की राशि अदा नहीं की है।

68. सिराज मोहम्मद खाँ बनाम हाजी जुन्निसा यासीन खाँ, ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 1992 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पति का नपुंसक होना पत्नी के लिए मानसिक क्रूरता है। पत्नी इस आधार पर पति के साथ रहने से इनकार कर सकती है तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत भरण-पोषण पाने की अधिकारिणी बन जाती है।

69. मुंशी बुदजल-उल-रहीम बनाम लतीफुतुन्निसा (1861) 8 एम.आई.ए. 179 के मामले में फैसला दिया गया कि मुसलिम विधि (कानून) में विवाह-विच्छेद

तलाक अथवा खुला द्वारा हो सकता है। तलाक पति द्वारा किसी भी समय दिया जा सकता है, जबकि खुला में विवाह-विच्छेद का अधिकार पत्नी द्वारा प्रतिफल की एवज में खरीदा जाता है। खुला में पत्नी द्वारा प्रतिफल की राशि नहीं चुकाए जाने पर विवाह-विच्छेद अवैध नहीं हो जाता। तलाक में पति पत्नी की देय मेहर देने के लिए बाध्य है, जबकि खुला में पत्नी अपने देय मेहर को पति के पक्ष में त्याग (छोड़) सकती है।

70. अब्दुल फता मोहम्मद इशक बनाम रसोमयधर चौधरी, 22 आई.ए. 76 के मामले में कहा गया कि मुसलिम विधि के अंतर्गत पारिवारिक बंदोबस्त, जो वक्फ के रूप में किया गया हो और जिसमें गरीबों के तथा खैरात प्रयोजन के लिए किए गए प्रावधान केवल भ्रांतिपूर्ण हों तो वह वैध नहीं है।

71. मोहित जैन बनाम कर्नाटक राज्य, ए.आई.आर. 1992 के मामले में न्यायालय ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्येक नागरिक को शिक्षा पाने का अधिकार है।

72. श्रीमती कारलिल बनाम कार्बोलिक स्मॉक बाल कंपनी (1833) 1 क्यू.बी. 256 के मामले में कहा गया कि यदि किसी विज्ञापन के द्वारा जनसाधारण से कोई कार्य करवाया गया है या किसी कार्य के बदले में किसी पुरस्कार की घोषणा की गई है तो वह विज्ञापन प्रस्ताव माना जाएगा। विज्ञापन प्रस्ताव की स्वीकृति की संसूचना आवश्यक नहीं है। विज्ञापन की शर्तों का पालन करने से विज्ञापनदाता को होनेवाला लाभ ही संविदा का प्रतिफल होता है।

73. अजय कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1997, एस.सी. 260 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने किसी व्यक्ति द्वारा न्यायिक मामलों में न्यायालय को कलंकित करनेवाली भाषा का प्रयोग करना न्यायालय की आपराधिक अवमान माना है। न्यायालय किसी भी दोषी व्यक्ति की क्षमा-प्रार्थना को तब तक स्वीकार नहीं करेगा जब तक अवमानकर्ता के अंदर खेद की वास्तविक भावना नहीं हो।

74. केदारनाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1962, एस.सी. 955 के मामले में कहा गया कि यदि कोई प्रावधान एक व्याख्या से संविधान के अनुकूल हो और दूसरी व्याख्या से संविधान के प्रतिकूल हो तो न्यायालय पहली व्याख्या को मानेगा।

75. बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1980 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि मौत की सजा नहीं दी जानी चाहिए।

76. सुकदास बनाम यूनियन टैरिटरी ऑफ अरुणाचल प्रदेश, ए.आई.आर.

1986, एस.सी. 991 के मामले में कहा गया कि कानूनी सहायता प्राप्त करना एक मूल अधिकार है। प्रत्येक आरोपी को नि:शुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना राज्य का संवैधानिक दायित्व है। न्यायाधीश का भी यह कर्तव्य है कि वह अपने समक्ष पेश हुए प्रत्येक आरोपी से पूछे कि क्या उसे विधिक सहायता की आवश्यकता है। यदि वह 'हाँ' करता है तो उसके लिए नि:शुल्क विधिक सहायता उपलब्ध करानी चाहिए। यदि किसी राज्य का न्यायालय किसी असहाय आरोपी को नि:शुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने में विफल रहता है तो उसका न्यायिक परीक्षण दूषित माना जाएगा और इस परीक्षण के आधार पर की गई दोष-सिद्धि का पारित दंड भी असंवैधानिक माना जाएगा।

इसी प्रकार का फैसला शीला वार्से बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1983, एस.सी. 378 के मामले में दिया गया।

77. प्रेम शंकर बनाम दिल्ली प्रशासन, ए.आई.आर. 1998, एस.सी. 898 के मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा कि किसी अभियुक्त को तब तक हथकड़ी नहीं लगानी चाहिए जब तक उसके भागने की आशंका न हो।

78. म्युनिसिपल कॉरपोरेशन दिल्ली बनाम सुभागवती, ए.आई.आर. 1966, एस.सी. 1750 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि साधारणतया असावधानी के मामलों में असावधानी सिद्ध करने का भार वादी का होता है, लेकिन कुछ परिस्थितियों में यह सिद्ध करने का भार प्रतिवादी पर होता है कि प्रतिवादी की असावधानी नहीं थी। यह भार प्रतिवादी पर उस समय आता है जब घटना पूर्णरूप से प्रतिवादी के नियंत्रण में होती है।

79. महंत श्री गोविंद लालजी बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई.आर. 1963, एस.सी. 1630 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने सार्वजनिक मंदिर और निजी मंदिर में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा कि सार्वजनिक मंदिर वह मंदिर है जिसके हितग्राही अनिश्चित व अस्पष्ट होते हैं। इसका उद्देश्य आम जनता के लिए दर्शन तथा पूजा-अर्चना का अधिकार देना है। निजी मंदिर में हितग्राही निश्चित एवं स्पष्ट होते हैं तथा इनमें आम लोगों को प्रवेश का अधिकार नहीं होता है। सार्वजनिक मंदिर की संपत्ति की देखभाल करना एक धार्मिक कृत्य है, यह संविधान के अंतर्गत कोई मूल अधिकार नहीं है।

80. एम.एम. होस्कर बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1978, एस.सी. 1548 के मामले में फैसला दिया गया कि प्रत्येक दोष-सिद्ध व्यक्ति को कानूनी सहायता प्राप्त करने का मूल अधिकार प्राप्त है।

81. नामदार खान बनाम बीबनबी नि.प. 1983, बंबई 132 के मामले में

उच्च न्यायालय ने कहा कि पति द्वारा दूसरा विवाह कर लेने पर प्रथम पत्नी उसके साथ रहने के लिए बाध्य नहीं है और अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ पत्नी का भरण-पोषण करने के लिए पति बाध्य है। [सीआर.पी.सी. 125 (3)]

82. सूरज प्रसाद बनाम श्रीमती दमयंती और अन्य नि.पा. 1984, इलाहाबाद 458 के मामले में न्यायालय ने कहा कि सौतेली माँ अपने पुत्रों से किसी भी प्रकार का भरण-पोषण प्राप्त करने की हकदार नहीं है, चाहे उसने उन सौतेले पुत्रों का प्रारंभ से ही लालन-पालन किया हो। इसी मामले में कहा कि अपनी 'माता' शब्द में वास्तविक माता आती है, न कि सौतेली माता। [दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 (i) (घ)]

83. रूदल शाह बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1984 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि मूल अधिकारों के हनन पर राज्य सरकार हरजाना देने के लिए दायी है।

84. जग्गू बनाम रामकली और अन्य नि.प. 1983, बंबई 13 के मामले में न्यायालय ने कहा कि कोई पत्नी पति के भावी वेतन को कुर्क कराने के लिए आवेदन नहीं कर सकती है। भावी वेतन को दंड संहिता की धारा 22 के अंतर्गत न तो मूर्त संपत्ति और न ही शोध्य रकम माना गया है। अत: धारा 125 (3) के अंतर्गत पति के भावी वेतन को कुर्क करने के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा वारंट जारी करना अवैध है।

85. कंडूकरी श्रीधर राव बनाम कंडूकरी कामा क्षम्मा नि.प. 1983, आंध्र प्रदेश 30 के मामले में उच्च न्यायालय ने कहा कि पत्नी विवाह विघटन के बाद भरण-पोषण का दावा कर सकती है, चाहे उसने प्रत्यस्थापन की डिक्री का पालन करने से इनकार कर दिया हो। वह पति से तब तक भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी होगी जब तक दूसरी शादी नहीं कर लेती है।

86. एम.पी. शर्मा बनाम सतीश चंद्र, ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 300 के मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा कि अभियुक्त को अपने खिलाफ सबूत पेश करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

87. उर्मिला दास और एक अन्य बनाम पीताबस दास नि.प. 1983, उड़ीसा 98 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भरण-पोषण का आवेदन केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि आवेदक पत्नी मजदूरी करके अपना भरण-पोषण करती है। यदि कोई महिला कष्ट में शरण लेने के लिए दूसरे पर आश्रित रहती है या अपनी भूख मिटाने के लिए मजदूरी करती है या अन्य कोई कार्य करती है तो उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपना भरण-पोषण करने में समर्थ है।

88. पी.एन. कुमार बनाम दिल्ली नगर निगम के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उच्चतम न्यायालय में केवल अपील की जानी चाहिए।

89. देवाराम बनाम राजस्थान राज्य नि.प. 1984 राजस्थान-75 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि जमानत-आवेदन किए जाने के समय अभियुक्त का निरोध (कैद) वैध है तो उससे पूर्व का अवैध निरोध उसे जमानत पर छोड़ने का हकदार नहीं बनाएगा।

90. केरल राज्य बनाम प्रसाद और अन्य नि.प. 1985 केरल-51 के मामले में उच्च न्यायालय ने कहा कि यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त ने सीमा के भीतर ही आत्म-प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग किया है तो न्यायालय अभियोजन (वादी या मामला चलानेवाला) पक्ष द्वारा घटना के सही वृत्तांत प्रस्तुत करने के अभाव में अभियुक्त को संदेह का लाभ देते हुए दोष-मुक्त कर सकता है।

91. डॉ. प्रीति श्रीवास्तव बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1999, एस.सी. 2894 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि चिकित्सा शास्त्र एवं अभियांत्रिकी जैसे विशेष पाठ्यक्रमों में आरक्षण के आधार पर प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए।

92. जगत सिंह बनाम राज्य निर्णय पत्रिका 1985, दिल्ली-8 के मामले में न्यायालय ने कहा कि दाँत काटने का एक उपकरण है तथा दाँत से काटने का अपराध धारा 326 (आई.पी.सी.) के अधीन आता है।

आई.पी.सी. 326 के अनुसार, खतरनाक हथियार से किसी व्यक्ति को हानि पहुँचानेवाले व्यक्ति को आजीवन कारावास या दस वर्ष की कैद और जुरमाने से दंडित किए जाने का प्रावधान है। यह गैर-जमानती अपराध है।

93. देवनाथ मिश्र और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य नि.प. 1985, पटना 65 के मामले में कहा गया कि न्यायालय ऐसे किसी वाद को विधिमान्य रूप से खारिज कर सकता है, जो विहित अवधि के बाद फाइल किया गया हो, भले ही परिसीमा का अभिवाक् प्रतिरक्षा में साबित न किया गया हो।

94. एयर इंडिया बनाम नर्गिस मिर्जा एवं अन्य, ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 1830 के मामले में कहा गया कि कोई भी संस्था अपनी सेवा-शर्तों के द्वारा किसी महिला के माँ बनने के अधिकार का हनन नहीं कर सकती है।

95. ओमी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य नि.प. 1985, इलाहाबाद-1 के मामले में कहा गया कि विश्वसनीय मृत्युकालिक कथन (मृत्यु के समय कही गई बात) के आधार पर संपोषक साक्ष्य के अभाव में भी अभियुक्त का दोष सिद्ध किया जा सकता है।

96. महावीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य नि.प. 1985, इलाहाबाद-527 के मामले में कहा गया कि हत्या (धारा 302 आई.पी.सी.) के मामले में स्वतंत्र साक्षी को आकस्मिक साक्षी कहकर उसके साक्ष्य को संदिग्ध कहना और उसकी उपस्थिति को संदेहास्पद करार देना उचित नहीं है।

97. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव और अन्य (1985) 2 उम. नि.प. 121 के मामले में निर्णय दिया गया कि मिथ्या आरोप पर निर्दयतापूर्वक पिटाई करना और अभिलेख में यह दिखाना कि पुलिस अधिकारी वहाँ नहीं था, इस मामले को हत्या से भिन्न मामला नहीं माना गया; क्योंकि पिटाई का वास्तविक कारण सिपाही द्वारा रिश्वत की माँग थी। इसमें उस थाने का थानेदार और सिपाही दोषी माने गए।

98. ए.के. क्रेपक और अन्य बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 262 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता है।

99. राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम लक्ष्मण कुमार और अन्य (1986) 1 उम.नि.प. 783 के मामले में कहा गया कि वधू-दहन के अपराध में पड़ोसी साक्षियों (गवाहों) को इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जा सकता कि वे उसके दुश्मन हैं।

100. राय साहब और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (1993) 2 उम.नि.प. 195 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अपराह्न 5.15 बजे दुर्घटना होने पर रात्रि 9.45 बजे को एफ.आई.आर. दर्ज करवाना विलंब नहीं है, क्योंकि मृतक के परिवार के सदस्यों को सूचना देने तथा एक ट्रैक्टर को पुलिस थाने तक आने में समय लगा था [सीआर.पी.सी. धारा 154]।

□□□